शोधशौर्यम्

ISSN - 2581-6306



Peer Reviewed and Refereed International Scientific Research Journal



website: www.shisrrj.com

SHODHSHAURYAM INTERNATIONAL SCIENTIFIC REFEREED RESEARCH JOURNAL

Volume 5, Issue 1, January-February-2022

Email: editor@shisrrj.com, shisrrj@gmail.com



शोधशौर्यम्

Shodhshauryam

International Scientific Refereed Research Journal

[Frequency: Bimonthly]

ISSN: 2581-6306

Volume 5, Issue 1, January-February-2022

International Peer Reviewed, Open Access Journal Bimonthly Publication

Published By Technoscience Academy



Website URL: www.technoscienceacademy.com

Advisory / Editorial Board

Advisory Board

• Prof. Radhavallabh Tripathi

Ex-Vice Chancellor, Central Sanskrit University, New Delhi, India

• Prof. B. K. Dalai

Director and Head. (Ex) Centre of Advanced Study in Sanskrit. S P Pune University, Pune, Maharashtra, India

• Prof. Divakar Mohanty

Professor in Sanskrit, Centre of Advanced Study in Sanskrit (C. A. S. S.), Savitribai Phule Pune University, Ganeshkhind, Pune, Maharashtra, India

Prof. Ramakant Pandey

Director, Central Sanskrit University, Bhopal Campus. Madhya Pradesh, India

Prof. Parag B Joshi

Professor & OsD to VC, Department of Sanskrit Language & Literature, HoD, Modern Language Department, Coordinator, IQAC, Director, School of Shastric Learning, Coordinator, research Course, KKSU, Ramtek, Nagpur, India

• Prof. Sukanta Kumar Senapati

Director, C.S.U., Eklavya Campus, Agartala, Central Sanskrit University, Janakpuri, New Delhi, India

• Prof. Sadashiv Kumar Dwivedi

Professor, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Coordinator, Bharat adhyayan kendra, Banaras Hindu University, Varanasi Uttar Pradesh, India

Prof. Dinesh P Rasal

Professor, Department of Sanskrit and Prakrit, Savitribai Phule Pune University, Pune, Maharashtra, India

Prof. Kaushalendra Pandey

Head of Department, Department of Sahitya, Faculty of Sanskrit Vidya Dharma Vigyan, Banaras Hindu University, Varanasi, Uttar Pradesh, India

Prof. Manoj Mishra

Professor, Head of the Department, Department of Vedas, Central Sanskrit University, Ganganath Jha Campus, Azad Park, Prayagraj, Uttar Pradesh, India

• Prof. Ramnarayan Dwivedi

Head, Department of Vyakarana Faculty of Sanskrit Vidya Dharma Vigyan, BHU, Varanasi, Uttar Pradesh, India

• Prof. Ram Kishore Tripathi

Head, Department of Vedanta, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, Uttar Pradesh, India

• Dr. Pankaj Kumar Vyas

Associate Professor, Department- Vyakarana, National Sanskrit University (A central University), Tirupati, India

Editor-In-Chief

• Dr. Raj Kumar

SST, Palamu, Jharkhand, India

Email: editor@shisrrj.com

Associate Editor

• Prof. Dr. H. M. Srivastava

Department of Mathematics and Statistics, University of Victoria, Victoria, British Columbia, Canada

• Prof. Daya Shankar Tiwary

Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, India

• Prof. Satyapal Singh

Department of Sanskrit, Delhi University, Delhi, India

• Dr. Ashok Kumar Mishra

Assistant Professor (Vyakaran), S. D. Aadarsh Sanskrit College Ambala Cantt Haryana, India

• Dr. Somanath Dash

Assistant Professor, Department of Research and Publications, National Sanskrit University, Tirupati, Andhra Pradesh, India

• Dr. Raj Kumar Mishra

Assistant Professor, Department of Sahitya, Central Sanskrit University Vedavyas Campus Balahar Kangara Himachal Pradesh, India

Executive Editor

Dr. Sheshang D. Degadwala

Associate Professor & Head of Department, Department of Computer Engineering, Sigma University, Vadodara, Gujarat

Editors

• Dr. Ekkurti Venkateswarlu

Assistant Professor in Education, Sri Lal bahadur Sashtri National Sanskrit University, (Central University), New Delhi, India

• Rajesh Mondal

Department of Vyakarana, National Sanskrit University, Tirupati, Andhra Pradesh, India

Assistant Editors

• Dr. Virendra Kumar Maurya

Assistant Professor- Sanskrit, Government P.G. College Alapur, Ambedkarnagar, Uttar Pradesh, India

International Editorial Board

• Dr. Agus Purwanto, ST, MT

Assistant Professor, Pelita Harapan University Indonesia, Pelita Harapan University, Indonesia

• Dr. Morve Roshan K

Lecturer, Teacher, Tutor, Volunteer, Haiku Poetess, Editor, Writer, and Translator Honorary Research Associate, Bangor University, United Kingdom

Vaibhav Sundriyal

Research Scientist, Old Dominion University Research Foundation, USA

• Dr. Elsadig Gamaleldeen

Assistant Professor, Omdurman Ahlia University, Sudan

• Frank Angelo Pacala

Samar State University, Samahang Pisika ng Pilipinas

• Thabani Nyoni

Department of Economics Employers Confederation of Zimbabwe (EMCOZ) , University of Zimbabwe, Zimbabwe

• Md. Amir Hossain

IBAIS University/Uttara University, Dhaka, Bangladesh

• Mahasin Gad Alla Mohamed

Assistant Professor, Kingdom Saudi Arabia, Jazan University, Faculty of Education - Female Section, Sabya

CONTENT

SR. NO	ARTICLE/PAPER	PAGE NO
1	सुभाष चन्द्र कुशवाहा के कथा साहित्य में स्त्री अनुशीलन रेशमा त्रिपाठी	01-07
2	Skill Development Dr. Seema Kumari	08-13
3	नवीन विष्व व्यवस्था और भारतीय विदेष नीति मदन कुमार वर्मा	14-21
4	वैदिक साहित्य में मूल्य विवेचन की अवधारणा की प्रांसगिकता (आज के संदर्भ में) डॉ. रमेश चन्द्र टांक	22-31
5	A Study on Benefits and Limitations of E-Learning Uzma Mustafa, Mrs. Anu Sengal	32-35
6	Reforming The Un Security Council: Past and Future Lal Vineet Singh, Dr. D. K. Bajpai	36-40
7	वैदिक साहित्य में वर्णित ईश्वर का स्वरूप प्रो0 विनय कुमार विद्यालंकार, आरती चैधरी	41-44
8	वर्तमान व्यवहारिक जीवन में यम की उपादेयता दीपा आर्या	45-50
9	व्यक्तित्व विकास में यम-नियम की भूमिका का विवेचनात्मक अध्ययन डॉ. मलिक राजेन्द्र प्रताप, सूरज सिंह	51-56
10	सामयिक परिप्रेक्ष्य में विरष्ठ नागरिकों की स्थिति डॉ. शाहेदा सिद्दिकी	57-62
11	आखिर स्त्री-पुरूष असमानता कब तक डॉ. गीता सिंह	63-66
12	महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा में दहेज कुप्रथा की भूमिका डॉ. रचना श्रीवास्तव	67-72
13	Perception of Environmental Consciousness in Vedic Literature Dr. Amit Kumar Tiwari	73-78

14	अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति मयंकपाण्डेय	79-81
15	तत्त्वचिन्तामणौ न्यायलक्षणस्य तुलनात्मकमध्ययनम् राजेश्वर विश्वासशास्त्री देशम्ख	82-85
16	E- Commerce Business in India and Customer Liability's Dr. Neha Jaiswal	86-92
17	वैष्णवरामदासविरचितगोपालदासचरितकाव्ये लोकोपकाराणि सुभाषितानि। पातकोटिसुब्बाराव	93-96
18	India's New Education Policy: Impact and Challenges Dr. Malti Verma	97-107
19	आधुनिकसमाजे यागानां प्रासङ्गिकता डा.सुधांशुशेखरमहापात्रः	108-111
20	विचारधारा, आधुनिक हिन्दी कविता और निराला का शिल्प-सौन्दर्य प्रशांत कुमार	112-118
21	भक्तिरसविमर्शः राजश्री चट्टोपाध्याय	119-124
22	The Economic And Social Factors Causing The Migration Of Rural Labour to the Industrial Sector - Case Study of Large & Meduim Scale Industries Dr. Khalid Anwar	125-131
23	A Study on the Effect of Socio-Economic Status on Self- Harming Behavior among Adolescents Nivya Jain, Prof. Kalpana Jain	132-141
24	भारत में विदेशी संस्थागत निवेश को निर्धारित करने वाले कारक डॉ उमेश कुमार	142-158
25	भारत में शारीरिक शिक्षा का उद्भव एवं विकास डॉ. आरती शर्मा	159-163
26	साहित्य एवं मनोविज्ञान का अंतर्संबंध पुष्पा यादव	164-169

27	Indian Economic Planning Dr. Kamal Singh	170-178
28	How far is LGBT Correct Sonam Narayan	179-183
29	जल-प्रबंधन में जल-निकासी सुविधाओं का महत्वः प्रयागराज जनपद (उ.प्र.) का एक भौगोलिक अध्ययन देवेंद्र प्रताप सिंह	184-191



सुभाष चन्द्र कुशवाहा के कथा साहित्य में स्त्री अनुशीलन

रेशमा त्रिपाठी

शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्व विद्यायल, रीवा, मध्य-प्रदेश।

सारांश— कुशवाहा जी ने अपनी कहानियों में स्त्रियों को व्यक्तिगत स्तर पर, जातिगत स्तर पर स्वतंत्र नहीं माना है और यहीं प्रयास भी किया है कि स्त्रियों को व्यक्तिगत स्तर पर अब स्वतंत्र किया जाय।

मुख्य शब्द- सुभाषचन्द्र कुशवाहा, कथा, साहित्य, स्त्री, मूल्यबोध, विकास।

सामाजिक जीवन में स्त्री-पुरुष अलग-अलग हैं इनकी परंपराएं, मूल्यबोध संवेदनाएं और जीवन यथार्थ की लडाइयों के क्षेत्र भी अलग-अलग हूँ ऐतिहासिक विकास के क्रम में स्त्री की स्वतंत्र पहचान लोप हो गई हैं और पहचान के नाम पर सिर्फ शरीर भर रह गया जो उसका नहीं अपितृ पुरुष का हैं जीवन को संचालित करने वाले संस्थान, कला रूप विधान, नियम मूल्य और पैमाने सबके सब पुरुष केंद्रित हो गए। स्त्री हाशिए पर थी या निष्क्रिय थी यह कहना मुश्किल हैं क्योंकि जीवन जगत का पर्याय पुरुष था, स्त्री को तो प्रकृति का पर्याय बना दिया गया पुरुष सन्दर्भ में स्त्री का शोषण जब भी जिस रूप में हुआ स्त्री मातहत ही हुई इसी सन्दर्भ में कथाकार ने' रमा चंचल हो गई हैं में लिखते हैं कि" पैतीस साल के मुनेसर यादव को गांव वाले परधान कहते हैं परधान नहीं, परधान जी वैसे मुनेसर प्रधान नहीं हैं उनकी मेहरारु– हैं, परधानी सीट पिछड़े वर्ग की महिला के लिए आरक्षित हुई तो अपनी हाई स्कूल पास मेहरा-रमा यादव को प्रधान पद पर लड़ा दिया मुनेसर यादव ने रमा को पहली महिला प्रधान बनने का गौरव मिला और गांव वालों को परधानिन कहने का पर मूनेसर से लगता हैं कि-"औरत और हाथी पर अंकुश रखना जरूरी होता हैं।" पर रमा को यह सब नहीं भाता, वह रजिस्टर खोल कर मरद से सवाल करती हैं कि किसका-किसका नाम लिखें हैं? ई मेहरारु तो कभी घर से बाहर नहीं निकलती? फिर मजूरी कैसे करती होगी? मुनेसर अपनी समझदारी की धौस देकर गांव से निकल जाता हैं रमा झुंझलाकर रह जाती हैं 'यकीनन यही कारण हैं कि स्त्री स्वतंत्र छवि कभी उभरकर बाहर नहीं आ पाती हैं 'स्त्री अनुशीलन' का विषय बहुत ही गंभीर विषय हैं उस पर हमला करके चुप कराना सम्भव नहीं और न ही उपहास या उसकी सामाजिक भूमिका और स्वयं की जरूरतों से आंखें चुराई जा सकती हैं स्त्री अनुशीलन तो वर्तमान समाज के समूचे स्त्री समुदाय का अनुशीलन हैं इसी सन्दर्भ में' प्रजा रानी बनाम कउवांहकनी' कहानी में कुशवाहा जी लिखते हैं कि-'एक दिन राजा की तीनों रानियां राजघाट से स्नान कर लौट रही थी रास्ते में लगभग चार बरस का लड़का कहता

है-'माटी का घोड़ा ,माटी की लगाम, घोड़ा पानी पी गुड़-गुड़-गुड़...यह सुनकर चंचला रानी को हंसी आ गई थी पर रित रानी मारे गुस्से के बोल उठी 'अरे चांडालों! कहीं माटी का घोड़ा भी पानी पी सकता हैं? तभी लड़के ने तपाक से जवाब दिया 'जिस राज में औरत ईट-पत्थर जनम सकती हैं उस राज में माटी का घोड़ा पानी भी पी सकता हैं।'.. ईट -पत्थर सुनकर रानियां सोच में डूब गई इसका कारण भी था कि रानियों ने पहली रानी (यानि उसी लडके की मां) जब गर्भ से थी तो नवजात शिशू के जन्म पर अफवाह उड़ा दी और राजा से जाकर बोली पहली रानी ने ईट-पत्थर को जनमा हैं और राजा ने पहली रानी को जंगल में अलग–अलग बनाकर छोड आने का आदेश दे दिया नौकरों से यकीन नहीं होता कि राजा ऐसा भी होता हैं इससे तो स्पष्ट रूप से पता चलता हैं कि पुरुष का संघर्ष सदा स्वार्थी संघर्ष और प्रगतिशील रहा हैं जबिक स्त्री कभी भी स्वार्थी संघर्ष में हिस्सा नहीं लेती यही कारण है कि वर्तमान में राष्ट्रीय मानवाधिकार के तहत संपत्ति का अधिकार में पुत्रियों की हिस्सेदारी जो कागजी दस्तावेजों तक ही सीमित रहा हैं उसे संज्ञान में लेते हुए उच्च न्यायालय प्रयागराज ने पुत्रवध् को परिवार की श्रेणी में रखने का आदेश दिया और कहा बेटी से ज्यादा बहु का अधिकार होना चाहिए। इसका मुख्य कारण' 'स्त्री उपेक्षा' ही तो हैं यदि नहीं तो क्यों? विधवा-सधवा पर कोर्ट ऐसा क्यों निर्णय लेती निश्चित ही स्त्री अस्तित्व को बेटी से ज्यादा बहू रूप में सहज रूप समाज – परिवार स्वीकार्य नहीं करता हैं। गौरतलब कि जागरूक स्त्रियां यह समझ चुकी है तभी तो निरन्तर -दृढ़ संकल्प के साथ धेर्य पूर्वक वह आगे बढ़ने लगी है अंतर्विरोधों को मौलिक ढ़ंग से हल करने की उसकी विशिष्ट क्षमता ने उन्हें विपरीत परिस्थितियों में जीना ,स्वयं को बचाए रखना और निरन्तर आगे बढ़ते जाना कि दिशा में ठेला हैं स्त्री अनुशीलन का अध्ययन कर कुशवाहा जी ने चूप्पी और सिहण्णुता का भाव आर-पार जाकर झांकने की जरूरत को समझा हैं और साथ ही अंतरालों व द्वंदों पर भी नजर रखा तभी तो 'रमा चंचल हो गई है' कहानी में लिखते है कि-'पता हैं पता है तू पढ़ी लिखी हैं। अच्छे खानदान की हैं पर पूरे बीस जगह दस्तखत करने हैं समय लगेगा! समझी! अगूँठे के निशान पर कोई शक नहीं करता ... इधर दो अपना बायां अगूंठा। मैं फटाफट लगवा देता हूँ परधान मंजू का अगूंठा पकड़ कर पहले इंक पैड पर दबाते हैं, फिर रजिस्टर पर। उधर रामचरन –बो को पसीना आ रहा हैं। नई –नवेली बहू और नाजुक हाथ वह भी गैर मरद के हाथ में। यहां पर कुशवाहा जी ने प्रशासन की व्यवस्था के साथ -साथ स्त्री के मनोभावों और उनके भीतर उठ-रहें द्वंद्व को इस तरह उभारने का प्रयास किया है यकीनन यह गलत भी नहीं होगा कि लेखक ग्रामांचल के स्त्री मनोभावों के पारखी भी है समाज मानव सभ्यता को तो स्वीकारता है किन्तु मानवी सभ्यता को उपेक्षित छोड़ दिया है जहां स्त्रियां सांस तो लेती हैं कित् गले में फांस लेकर इसी सन्दर्भ में लेखक ने 'असली अपराधी' कहानी में सत्ता के आइस -पाइस के खेल में स्त्रियों के न्याय को लेकर किस तरह गंदी राजनीति का शिकार होती हैं स्त्रियाँ। कुशवाहा जी कहानी में लिखते है

कि-'अमेरी कस्बे की दलित लड़की लवंगियां के साथ बलात्कार की यह घटना ऐसे समय में प्रकाश में आई थी जब सरकार गिराने में और विपक्ष सत्ता पक्ष किसी भी तरह सरकार बचाने में मसगूल थी यानी कि राजधानी का मिजाज गर्म था धनबल और बाह्बल का अनैतिक प्रयोग जायज था, आरोप –प्रत्यारोप से आम जनता को गुमराह करने स्वयं को बह्मत में होने तथा दूसरे पर अनैतिक हथकंडे अपनाने का आरोप उफान पर था।' गंगाराम इसमें आबकारी विभाग चाहते थे जिसका फायदा उठाकर विपक्ष ने चुनावी मुद्दा बना दिया और राजनीतिक मुद्दा बना कर इतना उछाला कि –'मुख्यमंत्री ने आनन–फानन में घोषणा तक कर दी-बलात्कारी को हर हालत में सलाखों के अंदर डाला जाएगा' फिर क्या था ?समाचार पत्र, वक्तव्य, आईजी, डी आई जी की तत्परता ,पुलिसिया आक्रोश तब निर्दोष पर फूट पड़ा। मीडिया ने चिल्लाया पर कुछ हुआ नहीं इसलिए कि बलात्कार करने वाला विधायक का बेटा था और लवंगिया अपनी झोपड़ी के बाहर गुमसुम बैठी हुई, नीले आसमान में अपने भविष्य की धृंधली तस्वीर निहार रही थी। यह लवांगिया की दशा नहीं अपित् कुशवाहा जी ने प्रत्येक शोषित स्त्रियों की दशा पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है पता नहीं कितनी लवंगिया हर रोज अपनी धुंधली तस्वीर खोज रही हैं पर समाज का एक वर्ग आज भी इन मुद्दों पर खामोशी लिए बैठा है देश को अंग्रेजो से आजादी सन् 1947 में तो मिल गई पर क्या? स्त्रियों को पुरुषों की नगण्य मानसिक बीमारी से आजादी मिली। क्या समाज का प्रत्येक व्यक्ति उनके प्रेम सम्बन्धों को सहज रूप में स्वीकार करता हैं इसी सन्दर्भ में पुरुष की मानसिकता को उजागर करते हुए कुशवाहा जी अपनी कहानी प्यार दुकान और मचान' में लिखते है कि-'जिलाधिकारी महोदय! मै भारी मन से पापा को अकेला छोड़कर जा रही हूँ। पता नहीं वें कैसे खाएंगे-पिएंगे, कैसे इस कालोनी के लोगों के बीच अपनी जिंदगी गुजारेंगे मम्मी के गुजरने के बाद वे वैसे भी टूट चुके है परन्तु मेरे पास उन्हें अकेला छोड़कर जाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है मैं अब भी यह समझ नहीं पा रही हूँ कि मेरा गुनाह क्या है? मेरा आचरण कैसे तिवारीपुर के लिए कलंक की बात बन गया? दर असल कलंक की बात तो शम्भु और उनके साथियों के पिछले आचरण का होना चाहिए, परंतु तब कोई बवाल नहीं मचा था तब धर्म के ठेकेदारों की आंखों में शर्म नहीं दिखी थी आज लोग मेरे और इब्राहिम के प्यार पर हाय-तौबा मचा रहे है आज इनकी नैतिकता जाग गई हैं मेरे भविष्य का निर्धारण करने लगे हैं ये लोग ,जैसे कि मैं इनके हाथ की कठपुतली हूँ, महोदय, मैं इब्राहिम के साथ तिवारीपुर से दूर जा रही हूँ मेरे पापा और इब्राहिम के परिवार को परेशान न किया जाय। मैंने इस पत्र की एक प्रति सक्सेना अंकल को सौप दी हैं ...स्रेखा।"

इस पत्र को पढ़कर यह समझना मुश्किल नहीं कि अंतर्जातीय प्रेम विवाह स्त्रियों को किस कटघरे में लाकर खड़ा कर देती हैं 'स्वतंत्रता का मतलब तो स्त्री और पुरूष दोनों में समान रूप से स्वीकार्य हैं तब भी स्त्रियों के प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह पर पुरजोर विरोध क्यों? वहीं दूसरी ओर शहरी निम्नवर्ग और निम्न मध्यवर्ग की काम काजी स्त्रियों का स्वयं अपनी कमाई पर अधिकार नहीं है उसे खर्च करने का निर्णय उनके हाथ में नहीं है अधिकतर उनकी कमाई पिता, पित या परिवार के पुरुष सदस्य हथिया लेते हैं इस तरह घर और बाहर के दोहरे काम का बोध उठाते हुए वे दोहरे शोषण की शिकार होती हैं''(हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली पृष्ठ 387,स्त्री– विमर्श) इसी सन्दर्भ में कुशवाहा जी अपनी कहानी' रात के अंधियारें में', लिखते हैं कि-समाज की नजरों में सुंदर, मजबूत और आत्मबली फातिमा की जिंदगी के तमाम बजबजाते पक्ष है,जिनकी सफाई कर पाना उनके वश में नहीं । वैसे भी जिस जवान बेटी की मां वृद्ध हो, पिता की असमय मृत्यु हो चुकी हो आज के गंधाते गांव में उसके लिए खुली हवा में रह पाना सम्भव कहां? तभी तो बड़का बाबू यानी कि महेश तिवारी के सुपुत्र छोटका बाबू मतलब की रमन तिवारी रात के अंधेरे में गांव के बीच स्थित खलिहान किनारे बूढ़े बरगद के पीछे जब घेर कर कहते है-'तुम्हें तो महारानी होना चाहिए फातिमा' तो वह बड़ी आसानी से तिवारी के मन में उपजी हैवानियत के लिजलिजेपन को ताड़ लेती हैं' वह सब कुछ समझती थी फिर भी खामोश रहती क्योंकि वह मजदूरी कर अपना और अपनी मां का पेट भरना जानती थी। किन्तु सवाल यह उठता है कि क्या समाज ऐसी असहाय स्त्रियों की अस्मिता को बचाएं,बनाए रखने में मदद करता हैं? यकीनन नहीं फिर स्त्रियां ही क्यों कटघरे में खड़ी मिलती हैं। वर्तमान में स्त्रियों को अपनी तस्वीर बदलनी तो हैं लेकिन अब भी बहुत सी स्त्रियां धुंधलके में हैं। अक्सर देखने को मिलता कि स्त्रियों को स्त्री होने की कीमत बाहर और भीतर चुकानी पड़ती हैं इसमें अपवाद स्वरूप लोग उलाहना भी देते हैं किन्तु समाज को समझना चाहिए कि प्रकृति का नियम तो नहीं बदला जा सकता लेकिन स्त्रियों की अस्मिता, शिक्षा, परम्परा और पुरूष पराधीनता में सुधार जरूर किया जा सकता है। क्योंकि वर्तमान स्थिति भी महिलाओं यह है कि विश्व कि पूरी जमीन का केवल एक प्रतिशत भाग ही नाम है जबिक वें आधी आबादी है, विश्व के काम का साठ प्रतिशत महिलाएं ही करती हैं मगर आमदनी का केवल दस प्रतिशत हिस्सा ही उनकी निजी आमदनी मानी जाती हैं निरक्षर जनता का तीन चौथाई भाग महिलाओं का हैं भारत में लगभग पांच हजार महिलाएं प्रति वर्ष दहेज के लिए मार दी जाती है और एशिया साहित्य की दृष्टि से लगभग एक लाख महिलाएं प्रतिवर्ष वेश्यावृति में धकेल दी जाती हैं इसी सन्दर्भ में क्शवाहा जी अपनी कहानी-'तमाशा जारी है' में लिखते हैं कि-अंधविश्वास द्वारा किस तरह एक स्त्री की अस्मिता के साथ छल किया जाता हैं जमीदारों, रईसो द्वारा और वाद में उसे गांव से बाहर निकाल दिया जाता हैं इसका चित्रण बखूबी किया हुआ है साथ ही 'देवी' स्वरूप में उन्हें क्यों स्वीकार किया जाता हैं इस मिथक तथ्यों को भी उजागर करने का प्रयास किया है इस पर भगत उपाध्याय जी की टिप्पणी याद आती हैं कि-सात-आठ वर्ष की अवस्था से ही स्त्रियां भात पकाना शुरू कर देती हैं किन्तु भात कब पक गया, इसका वे ठीक निर्णय तब तक नहीं कर सकती जब तक दो-एक चावल हाथ से उठाकर वे अपनी दो

उंगलियों से देख नहीं लेती तब तक उनकी प्रज्ञा दो अंगुली-मात्र परिमित कही गई हैं।' (हिंदी साहित्य का आधा इतिहास पृष्ट 100) गौरतलब है कि कुशवाहा जी की कहानियों की स्त्रियां आधुनिक तो हैं किन्तु उनकी प्रज्ञा भी दो अंगुलि मात्र ही परिमित की गई हैं जो कि विचारणीय है। समाज में स्त्रियों के मनोविज्ञान का जैसा परिचय मिलता हैं वैसे ही पर्वत की विषय भूमि भी है। एक पुरुष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरुष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने पर उतारू हो जाता हैं और एक स्त्री के क्रुरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियां उसके अकारण दंड को अधिक भारी बनाए बिना नहीं रहती। इस तरह पग-पग पर पुरुष से सहायता की याचना ना करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी हैं वह जितनी ही पहुंच से बाहर होती हैं पुरुष उतना ही झुंझलाता हैं और प्रायः वह झुंझलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं यह स्वाभाविक भी है क्योंकि वह अप्राप्य हैं उसी को प्राप्त प्रामाणिक करके हमें संतोष होता हैं ,जो प्राप्त हैं उसे प्राप्त और प्रामाणिक करने की आवश्कता ही नहीं रहती। किन्तू खड़ा हुआ व्यक्ति यदि अपने गिरने कि घोषणा सुनते-सुनते खड़े होने के प्रयास को व्यर्थ समझने लगे तो आश्चर्य क्या? इसी कारण अब तक स्त्री स्वभाव से इतनी शक्ति शालिनी नहीं होती कि मिथ्या पराभव की घोषणा से विचलित न हो तब तक उसकी स्थित अनिश्चित ही रहती हैं। (स्त्री कथा –सुधा सिंह पृष्ट 153) यही पराभाव कुशवाहा जी की कहानियों के स्त्री पात्र में भी देखने को मिलता हैं इतिहास पर नजर डालें तो एंगेल्स ने तो यह भी लिखा है कि-"इतिहास का पहला वर्ग विरोध, एक निष्ठ विवाह के अन्तर्गत पुरुष और नारी के विरोध के साथ-साथ इतिहास में पहला वर्ग-उत्पीड़न पुरुषों द्वारा नारी के उत्पीड़न के साथ प्रकट होता हैं। ''मार्क्सवादियों के दृष्टिकोण से लिंगीय शोषण भी वर्गीय शोषण हैं, लिंगीय वैषम्य और असमानता से मुक्ति तभी सम्भव है जब लिंगीय एकवर्गीय अंतर्विरोधों का समाधान कर लिया जाय । एंगेल्स की राय थी कि-"स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी जाति फिर से सार्वजनिक उत्पादन में प्रवेश करें और इसके लिए आवश्यक हैं कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक गुण नष्ट कर दिया जाय साथ ही स्त्री और पुरूष कानून कि नजर में बिल्कुल समान मान लिए जाए।" आगे कहते हैं कि-'आधुनिक वैयक्तिक परिवार नारी की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है।" (स्त्री वादी साहित्य विमर्श-पृष्ठ 207) गांवों से लेकर महानगरों के मध्य 'स्त्री-श्रम'' व्यापार के क्षेत्र में इस्तेमाल किया जाता हैं वह व्यापार मशीनी उद्योग धंधों में अधिकांश प्रयोग किया जाता हैं वहीं ग्रामीण, दलित, शोषक वर्ग में शारीरिक, मानसिक और आर्थिक तीनों रूपों में व्यापार किया जाता हैं इसी सन्दर्भ में कुशवाहा जी अपनी कहानी में' बात थी उड़ती जा रही' में लिखते हैं कि-"दूधनाथ की बीवी के मुख से बाबू साहब का गुणगान स्न रामदेव वाल्मीकि की पतोहू सतर्क रहने लगी, दूधनाथ-बो कम छिनार नहीं है। का पता किसी दिन बंगला में साया उठाकर खड़ी हो गई हो? बाबू साहब ने हमको एक टुकड़ा जमीन नहीं दिया ? काहें उसी

पर मेहरबान हुए जा रहे हैं? सोचने लगी थी रामदेव वाल्मीकि की पतोहू । राम चरन ने भी इस घटना पर किस्से गढ़ लिए थे जो खेती-बारी में युवकों को सुना-सुना कर मनोरंजन करता रहता।" और अंत में पुरुष मानसिकता को उजागर करते हुए कुशवाहा जी अपनी बात इस तरह कहते कि-'जो तीर लक्ष्य न भेद सकें,उसे चलाने का मतलब अपना नुकसान।' वहीं पुरुष हुकूमत के विषय में' रात के अधियारे में' कहानी में लिखते है कि-"गांव का रिमोट कंट्रोल तो बड़का बाबू के पास था, वैसे भी परधान कोई भी हो, गांव में ऊंची जाति वालों की ही चलती हैं। नीच जाति वाले बिना हुकुम पाए काम करते हैं भला? गांव के गरीबों की बहू – बेटियां तो बबुआन की रखैल होती हैं।" इस बात को कथाकार ने कहानी के अंत में स्पष्ट किया–' तब तक पंचायत को यह भी फैसला करना होगा कि इस गांव में कौन -कौन इश्क फरमाते रहे है फातिमा अपने असल बाप की पहचान कराएगी जांच की मांग करेंगी। डीएनए टेस्ट से अब सब कुछ पता चल जाता है। डीएनए टेस्ट से पता चल जाएगा कि फातिमा उस्मान की औलाद थी कि में....स्धाकर मे बोलते –बोलते बात गटक ली थी।" यकीनन सुधाकर ने बाबू साहब के मन मस्तिष्क के अत्यंत संवेदनशील तंतु को हिला दिया था उस राज की कलाई उतार दी थी जो अब तक सात पर्दों में थी वह जितनी तेजी से आया था उतनी तेजी से चला भी गया। आज भी समाज के ग्रामीण ,दलित, शोषित वर्ग के बीच स्त्रियों के आंचल में बड़े-बड़े राज दफन हैं यदि डीएनए टेस्ट कराया जाय तो पचास फीसदी दलित सवर्णों की श्रेणी में आ जाएंगे। इतिहास गवाह है स्त्री देह पर संकट अंग्रेजो से ही नहीं था अपितु मध्ययुगीन समाज में भी देखने को मिलता हैं उदाहरण के रूप में-'लाची पूर्वांचल की एक ऐसी ही नायिका हैं। श्री रामनरेश त्रिपाठी ने लाची से सम्बन्धित दो कथात्मक गीतों का संकलन किया है लाची बारह वर्ष की सुंदरी थी और खिड़की पर बैठी हवा खा रही थी कि घोड़े पर बैठे राजपूत की नजर उस पर पड़ी। राजा कुटिया के पास पहुंचा और उसे मुहरे दी कि वह किसी तरह लाची को बहलाकर ला सके। कुटनी कहती हैं लाची स्वामी की गोद में सोती हैं ,उसे किस प्रकार लाया जा सकता है? राजा ने कहा-' हाथ में उपलें लो और आग लाने के बहाने लाची को ले आओं।" इसी तरह भारतीय इतिहास का आदिकाल और मध्यकाल स्त्री शोषण के साथ भरा पड़ा है जिस पर जितना भी प्रकाश डालों वह उतना ही अधूरा सा प्रतीत होता हैं। हालांकि उद्योग जगत और टेलीविजन की कुछ स्त्रियां अलग– अलग क्षेत्रों में भारतीय परम्पराओं, लोकोक्तियों और मिथकों को तोड़ने का सिलसिला आरम्भ कर दिया है जिसमें अभिनेत्री प्रियंका चोपड़ा अपने से, 10वर्षीय छोटे पुरुष से विवाह कर' कन्या से वर दून' जैसी लोकोक्ति पर प्रहार करती हैं, वहीं हाल ही में अभिनेत्री कैटरीना कैफ ने विक्की कौशल से विवाह कर 'राजा के घर पैदा होने से नहीं, राजा के घर ब्याह करने से लड़कियां रानी होती हैं' जैसे सामाजिक कुप्रथाओं की उक्तियों पर प्रहार करती हैं। वहीं अवनी मेखला, पीबी सिंध्, मिताली राज अलग–अलग क्षेत्रों में अपना लोहा मनवा चुकी हैं जातिगत भेदभाव भी दस फीसदी तक कम हो गया

है किन्तु कुशवाहा जी की कहानियों के अनुसार आज भी भारत की नब्बे फीसदी दलित स्त्रियां रईसों के रात की चादर की सिलवट होती है और दिन में अछूत की शिकायत। वर्तमान समाज इन्हीं जातिगत समीकरण की गंदगी में लिप्त है। कुशवाहा जी ने अपनी कहानियों में स्त्रियों के इन्हीं समस्याओं को उजागर करने का प्रयास कर कई सवाल मन में उजागर किया जैसे कि—अगर विवाह के विज्ञापन में दूल्हे से गृहकार्य की शिक्षा के बारे में पूछा जाय तो कैसा रहेगा?, महिलाओं का सम्मान कोई चीज है क्या?, उस शिक्षा का क्या काम जो उत्साह को सही करने की निडरता को आपके अन्तस्थ में न बिडाए ? इत्यादि अनेक कहानियों में कुशवाहा जी ने दलित स्त्री समस्या, स्त्री अनुशीलन को बताने का प्रयास किया है क्योंकि इनकी कहानियों उत्तर—प्रदेश जोगिया पट्टी कुशीनगर के दलित स्त्रियों की कहानियां मात्र नहीं हैं अपितु समूचे भारत की दिलत, शोषित, पीड़ित स्त्रियों के मनोभावों की मनोदशा और अनुभूति और पीड़ा को समझने का और जागरूक करने अथक प्रयास किया है। परिवर्तन जैसे प्रकृति का शाश्वत नियम उसी क्रम में समाज में निरन्तर बदलाव हो रहें किन्तु स्त्री पक्ष आज भी राष्ट्रकि मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों में सिमटा हुआ सा प्रतीत होता हैं—

"अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी। आंचल में हैं दूध और आंखों में हैं पानी"।।

यह कहना गलत नहीं होगा कि कुशवाहा जी ने अपनी कहानियों में स्त्रियों को व्यक्तिगत स्तर पर जातिगत स्तर पर स्वतंत्र नहीं माना है और यह यहीं प्रयास भी किया है कि स्त्रियों को व्यक्तिगत स्तर पर अब स्वतंत्र किया जाय।

सन्दर्भ सूची-

- 1. हिंदी साहित्य का आधा इतिहास-सुमन राजे
- 2. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श-जगदीश चतुर्वेदी
- 3. स्त्री कथा–सुधा सिंह
- 4. लाला हरपाल के जूते व अन्य कहानियां सुभाष चन्द्र कुशवाहा
- 5. बूचड़खाना कहानी संग्रह— सुभाष चन्द्र कुशवाहा
- 6. होशियारी खटक रही है कहानी संग्रह- सुभाष चन्द्र कुशवाहा
- 7. हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली—डॉ अमरनाथ



Skill Development

Dr. Seema Kumari

Assistant professor Department of Home Science, Govt. P. G. College, Kotdwar, Uttarakhand, India

ABSTRACT

Skill is a term that encompasses the knowledge, competencies and abilities to perform operational tasks. Skills are developed through life and work experiences and they can also be learned through study. There are different types of skills and some may be easier to access for some people than others, based on things like dexterity, physical abilities and intelligence.

Skills can also be measured, and levels determined by skill tests. Most jobs require multiple skills, and likewise, some skills will be more useful for certain professions than others.

Skill development refers to the identification of skill gaps and developing the existing skills to enable a person to achieve his/her goals. The current generation lacks the necessary skills and there is a humongous gap between the skills existing in a person and the skills demanded by the industry.

- 1) Skill development is important in the overall development of a student.
- 2) For opportunities better- There are a few students who may not be academically strong. Introducing skill training and encouraging the weak students will help in providing equal opportunities. An idea of different career prospects Introducing skill development initiatives for the school students will help them to get an understanding of different career options. This will help them to plan their future accordingly.
- 3) Preparing for future- The process of skill development introduces the students to employability-skills at a very young age. This ensures the right development of the students.
- 4) Personal development- Learning skills will not only increase the opportunities but will also empower an individual.
- 5) Skills like networking and communication go a long way in aiding the overall development of a person.
- 6) Nurturing talents- Skill development helps to identify, develop and nurture talents/skills in a given field.

What is Skills Development?

Skills development is the process of (1) identifying your skill gaps, and (2) developing and honing these skills. It is important because your skills determine your ability to execute your plans with success.

Imagine a carpenter trying to build a house. He has the raw materials but lacks good wood working tools. He has, however, a flimsy hammer and a small screwdriver.

Without the right tools like a hand saw, he can't turn these raw materials into house building pieces.

It's the same with goal achievement. In goal achievement, your skills are your tools. The house is your goal. Just as you need the right tools to build a house, you need the right skills to build your goal. Without the right skills, you will only frustrate yourself, waste your time, and spend a lot of time dealing with rudimentary issues caused by the lack of knowledge or lack of skills, as opposed to progressing in your goal. While difficulty and struggle is part and parcel of any goal pursuit, without the right skills, you find yourself struggling more than necessary. Worse still, this struggle is unconstructive and doesn't help you move forward.

Why Skills Development is Neglected Yet, why is skills development neglected?

There are 2 big reasons:

Firstly, people are often impressed by what others have accomplished without realizing what they went through to get there. We see their accolades and victories, and make gross assumptions about what it takes to succeed. Then we become disappointed when we attempt the goal, only to find out that it's not as easy as it seems.

This is very common in blogging. People see big name internet "gurus" making 6–7 figure income from blogging. Thinking that it's easy, and perhaps perpetuated by the claims of said gurus who happen to sell you courses claiming to help you do the same, these folks start blogging as well, expecting to achieve the same results in a short period of time. They become rudely awakened when they don't even get a trickle of traffic after a few months, much less earn an income. Some press on; many give up.

Secondly, some of us can be heavily self-critical. We look at how successful others are — the top coaches, internet gurus, award-winning performers, winners of the society — and conclude that we can never achieve the same. We feel that these people are somehow blessed with some special power that we don't have. I often have clients who say they want to achieve XYZ goal, but after seeing very established folks in the field, feel unconfident about their abilities. They then wonder, "What makes me think that I can succeed? I should just give up because these people are already so good and experienced. Who am I to compete?"

Yet, it's about skills development. When we see others' successes, what we don't see are the countless hours they spent behind the scenes, honing their craft, and building their skills. What we see as "talent" in others is the result of their 10,000 hours of hard work where raw passion and human potential are turned into hard skills. Skills development is where we turn from beginner to novice, to intermediate, to senior, to expert. And henceforth, having the ability to conquer our goal.

Your Skills Development: Hard and Soft Skills In developing your skills, I'd like you to consider 2 groups of skills:

Hard skills: Skills relating to any specific task; they are usually easily quantifiable. They tend to be knowledge- based, such as proficiency in a subject, certification, and technical skills. Fluency in Spanish, skills in XYZ software, graphic design, and programming are all hard skills.

Soft skills: Skills relating to personality and tend to be transferable, such as communication, leadership, time management, stress management, decision making, adaptability, ability to deal with adversity, and networking.

It's obvious why hard skills are important. You need domain-level knowledge to thrive in a goal. To be a successful YouTuber, you should at least have some video editing skills. To be a good blogger, you should have good writing skills and a good command of the language. To be a good software engineer, you need to know programming.

But many people miss out on soft skills. For example, a writer may insist he is great at writing but get 0 book sales. Assuming his writing skills are top-notch, perhaps he lacks certain soft skills necessary for success, like networking, pitching, and self-marketing. After all, writing a successful book isn't just about having good writing skills:

- You need to pitch to publishers/collaborators.
- You need to market yourself to people.
- You need insightfulness that helps you understand what people want and how to write stories that resonate with people.
- Many best-selling authors today aren't necessary good writers but are either personalities with a large following (some of these folks don't even write their own books but use a ghost writer) or everyday people with a story that resonates with an audience

That's not to say you focus on soft skills over knowledge. Both hard and soft skills are important. When you succeed based on only soft skills but with no hard skills, you lack the foundation to create new wins. It's a matter of time before people call you out on your bullshit. When you have only hard but no soft skills, you lack the savviness to hustle and showcase your talent to a bigger crowd out there. Both skills are equally important and complementary to each other.

How to Start Developing Skills

1) Start with the core skills

If you're starting from ground zero, such as learning programming when you don't know anything about coding, it can be intimidating as there are a multitude of things to learn. Start with core skills first.

Core skills are skills you absolutely need to succeed in your goal. They have a direct impact on your success.

Secondary skills are of lower importance vs. the core skills. While they accentuate your success, your expertise in them do not make or break your goal.

For example, when I started my business, there were many skills I had to pick up. I started with the core skills that I felt would be instrumental to my success: writing, coaching, training, and web marketing. These skills had a make-or-break effect on my goal. On the other hand, Pinterest, Facebook marketing, Twitter, and fancy web design, while helpful, were not instrumental to my success. These were consequently my secondary skills. While I took some time to learn the secondary skills, I dedicated the bulk of my time to mastering my core skills.

What determines a core or secondary skill? It depends on your goal. As long as the skill has a critical impact on your goal, it is considered a core skill. If your goal is to be a life coach with a team of sub-coaches, then life coaching, leadership, team management, and training will be your core skills. If your goal is to be a life coach with an online setup, then life coaching, web marketing, content writing, and good technical skills will be your core skills.

In times when it's not effective to learn certain skills, I recommend to outsource instead. Read my outsourcing guide here.

2) Break into little steps

With each skill, break the learning into small steps.

Back when I was learning life coaching, Iidentified the sub-skills that would make a good coach, including listening skills, questioning skills, empathy, and patience. I subsequently gave myself a rating of 1–10 on each skill and worked on these skills by giving free sessions, taking a coaching workshop, reading books, and most importantly, working with people. I also developed my own coaching guidebook, which is my repository of coaching concepts and frameworks to coach people. I would collect feedback and review my performance after each coaching session, including identifying things that I did and didn't do well in, so I could improve. Doing these steps helped me become proficient quickly. I moved from coaching 1 person, to 2, to 4, to 8, to 10 people within a few months. Soon I was coaching my 20th client, and then my 50th, and then my 100th. Before long I was seeing clear trends in my clients' aspirations and problems and could help them in a pinpointed manner. I also became proficient where I was able to accurately analyze each client's problems with a brief background and simple questions, and subsequently guide them out of their mental blocks. Developing a skill can be a lofty project, so break it up into little chunks. Don't expect to reach "master" status right away but focus on conquering each section, one bit at a time. For seemingly unquantifiable soft skills, assign quantifiable milestones to guide you. For example, if you want to cultivate networking skills, you can start by going to X new events and reaching out to X new people each week, and subsequently practice how you introduce yourself and pitch your ideas to others, iterate accordingly, and so on.

3) Learn from the best

One of the best ways to learn is to learn from the best. That's because you can understand from someone who's "been there done that" and get their wisdom rather than proceed unguided. Here are some tips:

Who are the people you know, who have experience in this area? Approach them for advice. Ask them: How should you build your skill in this area? Do they have any tips for you? What should you watch out on? Engage a coach. Getting a coach isn't cheap, but if you have the financial resources and you get the right coach, you can shave hundreds of hours off your learning curve. My clients, through our sessions together, have saved hundreds of hours and sped ahead in their goals, compared to if they had struggled and dealt with these issues alone.

Get a mentor. Is there a senior in your company or your network of contacts who would be willing to mentor you?

Study experts in the industry. Who are the experts in your field? Study them and understand what makes them so good at what they do. Model their behavior, while adapting it to fit you.

4) Research

Research to gather different insights and perspectives. The internet has made information more accessible than ever. Research via these tools:

Blogs. Blogs have become the primary way we receive information. Use Google to find new blogs. Bookmark the blogs that look promising.

Podcasts. In our modern world where most of our time is spent at computers, I find audio a refreshing way to learn. iTunes and Stitcher are podcast directories with tons of free podcasts, while Audible is an audio book portal (it's a premium service, though your first audio book is free). PE Podcast is listed on iTunes and Stitcher.

Books. Books are great sources of information as they are essentially very structured forms of content, usually a collection of the author's best wisdom on the topic. Is there a library where you live? If so, head to the library and borrow books related to the subject. If not, hit the bookstores and check out their recommended books.

Free online courses. Online courses has become a huge thing in recent years. Here are some free course portals, including from renowned universities:

Coursera edX

Harvard online courses Stanford online courses Academic Earth

5) Attend trainings

Courses and workshops are great ways to quickly develop skills. Think of it as a concentrated source of information that has been organized into a

structured program for your learning. Depending on the workshop, some workshops with a lot of activities allow for experiential learning, which means you get hands-on practice rather than learning through theory via reading. When you attend a training, you are in the company of like-minds, which gives you added motivation and social support in your goal.

When looking for a training, be careful to look for one with actual content and taught by a credible trainer. Ask for a breakdown of the course curriculum. There are many courses today that are filled with fluff and taught by people who are more interested in profits than in the teaching, and you want to stay away from these.

6) Take action

With all that said and done, it comes down to doing. Like I share in this article, doing helps you learn faster than simply reading.

Earlier in the article, I shared that I built my coaching skills by reading up, taking a workshop, and working with people. The latter was the most crucial part of my learning process, for if I had never practiced by working with real people, I would never have known what are the things people need help in, how to best help them, and whether my methods work. This is something I mentioned in Are Coaching Courses Necessary To Be a Coach? — ultimately, what builds expertise isn't theory, but practice. This is especially so if your skill has a actionable component. That's when you know how good you are, your blind spots, the gap between hypothesis and reality, and your areas for improvement.

What Skills Do You Need to Develop? What is a goal you're working on now?

What are the hard and soft skills needed to pursue this goal?

Out of these skills, which are the core skills and which are the secondary skills?

For your core skills, how can you start developing them? How can you apply the above tips?

When can you start taking action on these steps?

Start developing your skills and soon enough, you will see the rewards of your labor.

Conclusion

Skill development is very important for every human. it is help in personal development of a human being. It help's to build up our confidence

Reference

- · Times of India
- · India Today
- Google



नवीन विश्व व्यवस्था और भारतीय विदेश नीति मदन कुमार वर्मा एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र, उपाधि (पी.जी.) महाविद्यालय, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश।

सारांश— भारत ने अब विचारधारा को छोड़कर राष्ट्रीय हित के आधार पर विदेश नीति के निर्धारण का संकल्प लिया है। भारत द्वारा 1998 में किया गया परमाणु विस्फोट इसी नीति का परिचायक है। इसके साथ—साथ भारत द्वारा U.N.O. के लोकतंत्रीकरण की मांग भारत के राष्ट्रीय हित के साथ—साथ विश्वहित से भी प्रेरित है। भारत ने अपने राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर उत्तर से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। उक्त सभी तथ्यों की प्राप्ति हेतु नवीन विश्व व्यवस्था में भारत ने देश के अंदर राष्ट्रीय सहमति के माध्यम से पाने का प्रयास किया है। संक्षेप में हम कह सकते है कि नई विश्व व्यवस्था में भारतीय विदेश नीति अधिकाधिक वैश्विक स्तर पर स्वावलम्बी बनने का प्रयास कर रही है। मुख्य शब्द — नवीन विश्व, व्यवस्था, भारतीय, विदेश नीति।

सन् 1991 में पूर्व सोवियत संघ के विखंडन के साथ उस शीत—युद्ध का अंत हो गया जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व द्वि—ध्रुवीय विश्व—व्यवस्था में बँट गया था। अब शीतयुद्ध के अंत से अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में परिवर्तन आ गया। अब अमेरिका के नेतृत्व में उदारवादी मूल्य सम्पूर्ण विश्व में प्रभावी हो गये। जिसके परिणामस्वरूप धीरे—धीरे सभी विकासशील देश अपनी वैदेशिक नीति को G-7 के देशों और एकमात्र महाशक्ति अमेरिका के पक्ष में मोड़ने को बाध्य हुए हैं। भारतीय वैदेशिक नीति उक्त बदले वैश्विक परिदृश्य में अपवाद नहीं हो सकती।

अतः भारत ने अपनी वैदेशिक नीति को पुर्नसृजित करने का प्रयास किया है क्योंकि द्वि—ध्रुवीयता के अंत से गुटिनरपेक्षता आप्रासंगिक हो गयी। इस पुर्नसूत्रण के युग में भारतीय वैदेशिक नीति को किठन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। P.N. धर ने ठीक ही लिखा है कि 'चुनौती जिसका सामना आज भारत कर रहा है नेहरू द्वारा 1947 में सामना की गयी चुनौती के समान है' (1) 20 दिसम्बर 1991 को संसद में बोलते हुए प्रधानमंत्री नरिसंहाराव ने कहा था कि 'उनकी सरकार बदलते हुए पर्यावरण में स्यंत्र को अनुकूलित करने को तैयार है और क्षेत्रीय संरचना की आवश्यकता के सम्बन्ध में सचेत है और सामंजस्य पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और शांति के लिए उत्सुक है'

वास्तव में वैदेशिक नीति के पुर्नअभिमुखीकरण के प्रकाश में, हमें नये पहल करन होंगे, पुराने विश्वास व मिथकों को निकाल देना होगा। और दूसरे देशों के साथ सम्बन्धों को पुर्नरीक्षित व संशोधित करना होगा। अतः भारत ने नई विश्व व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अपनी वैदेशिक नीति के परम्परागत आधारों में परिवर्तन के साथ उसमें नये तथ्यों व मूल्यों का समावेश किया है जिसका विवरण निम्न है।

1. गुट निरपेक्षता :- गुट निरपेक्षता का जन्म सन् 1961 में बेलग्रड में द्वि-ध्रुवीय विश्व-व्यवस्था में समान दूरी के सिद्वांत के आधार पर हुआ। जिसके दो प्रमुख उद्देश्य था। प्रथम दोनों गुटों से समान दूरी के सिद्वांत के आधार पर आर्थिक सहायता लेना और द्वितीय विश्व से उपनिवेशवाद, जातिवाद एवं रंगभेद को खत्म करने हेतु तृतीय विश्व को एकजुट करना एवं इसका विरोध करना।

वास्तव में सम्पूर्ण विश्व से उक्त दोनों चीजों का अस्तित्व मिट चुका है। ऐसी स्थिति में गुट निरपेक्षता आप्रसंगिक हो गयी है। गुट-निरपेक्षता की आप्रासंगिकता उस समय प्रत्यक्ष देखी गयी। जब गुटनिरपेक्ष देशों के 15 विदेश मंत्रियों का सम्मेलन 12 फरवरी 1991 को वेलग्रेड में हुआ, कि खाडी संकट से कैसे निपटा जाय इस सम्मेलन पर टिप्पणी करते हुए G.N. जेनसन ने लिखा था कि' बेलग्रड वह स्थान था, जहाँ औपचारिक रूप से गुट-निरपेक्षता सितम्बर 1961 में अस्तित्व में आयी थी और जहाँ 12 फरवरी 1991 के बुद्धवार के दिन इसका औपचारिक अंत हो गया।

एक अन्य तथ्य यह भी है कि इस्लामिक कट्टरता, मानवाधिकार, आतंकवाद, परिस्थितकीय पर्यावरण जैसे वर्तमान विश्व स्तरीय मुद्दे को संचालित करने के लिए उपयुक्त मंच गुट-निरपेक्षता नहीं अपितु U.N.O. है। आज प्रयास दक्षिण-दक्षिण सहयोग और उत्तर-दक्षिण के मध्य संवाद के माध्यम से परमाणु अस्त्र नियंत्रण और निरस्तीकरण, पर्यावरण, पारिस्थितिकी और नई विश्व व्यवस्था से आर्थिक मुद्दो पर बल दिया जा रहा है। यह संदेह कि ऐसे मुद्दों को संचालित करने के लिए उचित यंत्र गुटनिरपेक्षता के पास है।

उक्त सभी तत्व यह सलाह देते हैं कि भारत को अपनी वैदेशिक नीति से गुट—िनरपेक्षता के लक्षणों को निकाल देना चाहिये। और गुट—िनरपेक्षता से स्वतन्त्र होकर अपने सम्बन्धों को नया आयाम दें। द्वि—पक्षीय और बहु—पक्षीय आधार पर पुनः अन्य देशों में सम्बन्ध बनाये। तािक अपने राष्ट्रीय हित को बदलते वैश्विक पर्यावरण में पा सके।

- 2. सुरक्षा और प्रादेशिक अखंडता :— चर्चिल ने कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में 'न स्थायी शत्रु होते हैं और न स्थायी मित्र।' लेकिन यह उक्ति भारत—पाक के सम्बन्धों में अपवाद है। इसके दो कारण हैं —
- 1. काश्मीर विवाद एवं
- 2. भारत में विद्यमान मुस्लिम अल्पसंख्यक

भारत-पाक के मध्य विद्यमान उक्त दो विवादों के कारण जहाँ भारत-पाकिस्तान के मध्य कई युद्ध हो चुके है, तो वही दूसरी तरफ पाकिस्तान जम्मू-काश्मीर सहित देश के सम्पूर्ण भाग में आतंकवाद को बढ़ावा देने के साथ भारत में अलगाव विराधी गतिविधियों को भी बढ़ावा दे रहे हैं। पाकिस्तान के साथ भारत का सम्बन्ध दृढ़ता पूर्वक पारस्परिकता पर आधारित होना चाहिए। भारत—पाकिस्तान के मध्य कोई वार्ता मात्र इस विषय पर हो, कि पाकिस्तान कब हमें पाक अधिकृत काश्मीर वापिस कर रहा है, तभी समस्या का व्यवहारिक समाधान सम्भव है। पंजाब के तरफ की सीमा बंद होनी चाहिए। भारत को पाक आधारित आतंकवादी कैम्पों पर बम वषा कर देना चाहिए, तभी आतंकवाद रूकेगा। भारतीय कूटनीति का यह कार्य होना चाहिए कि वास्तविक नियन्त्रण रेखा के समानान्तर व्यवस्था पर सहमित हेतु पाश्चात्य शिक्तयों की मदद ले,इसका तात्पर्य पाक अधिकृत काश्मीर को खोना, लेकिन वर्तमान युग में परमाणु आयुध से सम्पन्न दोनों देशों क मध्य समस्या का व्यवहारिक समाधान यही है।

वास्तव में काश्मीर भारत और पाश्चात्य शक्तियों के मध्य भविष्य में बड़े समझौते का एकमात्र विषय है। जिसमें इस्लामी चरमपंथियों के प्रत्येक मुद्दे को समाविष्ट करना चाहिये। सीनेटरलैरी प्रेसलर ने 1992 में कहा था कि '90 के दशक के नाभकीय क्षमता के साथ दक्षिण-पश्चिम एशिया और केन्द्रीय एशिया के इस्लामी देशों में इस्लामिक चरमपंथियों के संघ के उदय ने भारत और विश्व पर गम्भीर सरक्षा संकट का भय थोप दिया है। इसमें भौगोलिक रूप से 9 जुड़े हुए इस्लामी देश है जिसमें पाकिस्तान शामिल है ये मिलकर कार्य कर सकते है। और भारत व विश्व के लिए खतरा बन सकते है। इसमें पाक, टर्की, इरान, अफगानिस्तान और सोवियत संघ से मुक्त हुए पांच केन्द्रीय ऐशियन देश कजाकिस्तान, उजबेगिस्तान किग्रिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और तजाकिस्तान शामिल है। जिनके पास परमाणु क्षमता भी है। जिसने भारत ही नही अमेरिका की चिंता को भी बढ़ा दिया है। उभरते तथ्य यह सलाह दे रहे है कि भारत के विरूद्ध कोई 'रणनीतिक संरचना' सम्भव है। ताशकंद में पांचों केन्द्रीय ऐशियन गणराज्यों ने एक सम्मेलन आयोजित कर 'अर्न्तगणराज्य सहयोग परिषद का गठन' किया है। ताशकंद के बाद 1992 में अस्काबाद में एक सम्मेलन आयोजित किया गया, इसमें काश्मीर मुद्दे पर पाक का समर्थन किया गया। परिणाम यह हुआ कि कि पाक द्वारा सम्मेलन में उपस्थिति दर्ज कराया गया। जैसा कि रसियन सरकार के दैनिक पत्र रोसिल्या गजट ने लिखा था कि 'पाक ने केन्द्रीय ऐशियन गणराज्यों की मदद से भारत विरोधी गठ-जोड़ स्थापित करने का प्रयास किया है।' वास्तव में यह एक 'इस्लामिक ध्रुव' की उत्पत्ति है जिसके द्वारा भविष्य में भारत के विरूद्ध कोई भी 'रणनीतिक संरचना' सम्भव है। पाकिस्तान के स्तम्भकार मुशाहिद हुसैन इसे 'इस्लामिक धूव' की उत्पत्ति के रूप में देख रहे है और जो पश्चिमी आधिपत्य के समान्तर खडा हो सकेगा।

उक्त विकासों पर भारत को गम्भीर होना चाहिये और अपने वैदेशिक नीति की कार्य—सूची में इसे उच्च स्थान देना चाहिये विशेष रूप से इस्लामी परिसंघ के विरूद्ध एक मंच तैयार करना चाहिये जो विश्वस्तरीय हितों के अनुरूप होना चाहिये। क्योंकि इस्लामी चरमपंथी उदारवादी लोकतन्त्र के आधारभूत मानकों एवं मूल्यों को प्रत्यक्ष भय पैदा करते है, यही कारण था, कि परिश्च साम्यवाद के विरूद्ध था अतः अब एक दिन पश्चिम को इस्लामिक चरमपंथियों क विरूद्ध लौटना होगा। यही हमारी कूटनीति का महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिये।

उक्त कार्य में भारत अमेरिका के साथ—साथ इजरायल को भी प्राकृतिक रूप से सहयोगी पायेगा। क्यों कि इस्लामिक चरमपंथी मानवाधिकार के सिद्धान्तों का विरोध करते हैं लोकतन्त्र के विरूद्ध है, धार्मिक सिहण्णुता का विरोध करते हैं। इजरायल को अरबों द्वारा लगातार धमकाया जाता है और उसके विकास में बाधा पैदा की जाती है। इजरायल ने दृढ़तापूर्वक प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया है।

अतः पाकिसतान व उसके द्वारा तैयार किये जा रहे 'इस्लामिक ध्रुव' के प्रतिउत्तर में हमारी वैदेशिक नीति को अमेरिका व इजरायल को साथ लेकर इस उभरते इस्लामिक ध्रुव का प्रतिउत्तर देना होगा। यही कारण है, कि भारत ने इजरायल के साथ 1992 में पूर्ण कूटनीतिक सम्बन्ध बना लिये है। और उस तेल कूटनीति का समाधान भी हमें खोजना होगा जिसका समय—समय पर प्रयोग अरब देश गैर—मुस्लिम शत्रु देश के विरुद्ध करते रहे हैं। एक बार चीन के प्रीमियर चाऊ—एन—लाई ने चीन ने भारतीय राजदूत R.K.नेहरू ने कहा था, कि जबिक चीन व भारत के मध्य विभिन्नताएं अस्थायी प्रकृति की है लेकिन भारत—पाक के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि काश्मीर विवाद हल कर लिया जाय तो भी भारत में विद्यमान मुस्लिम अल्पसंख्यकों के कारण पाक भारत के लिए सदैव उत्तेजक बना रहेगा।

3. <u>द्वि—ध्रुवीयता का अंत</u> :— ग्लास्नोस्त और पेरोस्त्रोइका के नाम पर पूर्व U.S.S.R.के विस्मयकारी विकास के सन्दर्भ में विकासशील देश के जनमत में एक भ्रम था। यह भ्रम विकासशील देशों का उस समय दूर हुआ, जब 1991 में सोवियत संघ का विखंडन होते ही शीत युद्ध का अंत हो गया। और यह घटना उस समय घटी जब U.S.A. के प्रभाव का विश्व में पतन हो रहा था, पर अमेरिका के भाग्य ने उसे शीतयुद्ध में विजय दिला दी। जिससे अमेरिका के नेतृत्व में पाश्चात्य मूल्य पूरे विश्व में प्रभावी हो गये।

लेकिन शीतयुद्ध का अंत सहसा हुआ, जिसके लिए दक्षिण के देश अर्द्धरूप से ही तैयार थे। इसीलिए यह कहा जाता है कि शीत युद्ध का अंत दिक्षण के देशों के लिए धक्का है क्योंकि अधिकांश दिक्षण के देश या तो समाजवादी मूल्यों के पोषक थे या फिर उदारवादी व समाजवादी दोनों के मिश्रित मूल्यों के पोषक थे। अतः भारत सिहत प्रत्येक दिक्षण के देश को अपनी वैदेशिक नीति को शीत युद्ध के खात्मे में परिप्रेक्ष्य में पुनः परिभाषित करना पड़ रहा है। जिसमें उत्तर के देशबाधाएं खड़ी कर रहे है, अतः दिक्षण के देशों को पुनः इस खतरे से निपटने क लिए एकजुट होना होगा। दूसरी तरफ उत्तर के देशों ने शीतयुद्ध के अंत की स्थिति का लाभ लेते हुए सोवियत संघ के विखण्डन में रूचि लिया।

4. उत्तर से सामंजस्य :— भारत सहित सभी दक्षिण के देश नई विश्व व्यवस्था (जिसे कई विद्वानों ने एक ध्रुवीय या कई ने बहुध्रुवीय कहाँ हैं) में उत्तर के देश अर्थात् विकसित देशों के साथ सामंजस्य स्थापित करने में लगे। पर यह आसान नही है, क्योंकि इस सामंजस्य के मार्ग में U.S.A के नेतृत्व में उत्तर के देश बाधाएं खड़ी कर रहे है।

U.N.O. पूरी तरह उत्तर के नेतृत्व में दक्षिण को नियंत्रित करने का यंत्र बन गया है। U.N.O. के नेतृत्व में जब काई युद्ध लड़ते है, तो वह उनके लिए एक उपयोगी व्यापार सिद्ध हुआ। उदाहरण के लिए खाड़ी युद्ध में U.S.A.को विशुद्ध रूप से 18 विलियन डालर का लाभ हुआ। इसी तरह से अनेकों उदाहरण है, वास्तव में उत्तर के देश 'बाँटो और राज्य करो' की नीति का अनुसरण करते हुए दक्षिण के देशों को बाल्केनाइज करने का प्रयास किया है। चाहे वह काश्मीर का मुद्दा हो या नाभकीय मुद्दा हो। भारत व रूस के मध्य क्रोयोजनिक प्रोद्योगिकी का समझौता U.S.A. के कारण रूक गया।

विवेचना से स्पष्ट है कि U.S.A.नेतृत्व में उभरी नवीन विश्व—व्यवस्था में विद्यमान आर्थिक, राजनैतिक एवं अन्य संघर्षों में दक्षिण के देश हानिकारक स्थिति में है। इसलिए दक्षिण के देशों द्वारा नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की माँग की गयी है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर मैराथन नियमों में समानता की मांग है। वास्तव में मात्र रूस, चीन व भारत का समन्यव ही पैक्स अमेरिकाना को चुनौती दे सकता है। इस हेतु भारत को नई विश्व व्यवस्था के अनुरूप दृढ़ वैदेशिक नीति अपनानी होगी। ताकि भारत को कम से कम उत्तर में सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

5. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था व घरेलू स्थितियों में सम्बन्ध :— इस भूमंडलीकरण के युग में घरेलू व्यवस्था और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था में घनिष्ट सम्बन्ध है। एक विद्वान जेम्स राजनाऊ का अध्ययन इसी पर आधारित है। पर भारतीय वैदेशिक नीति का सर्वेक्षण यह प्रकट करता है, कि यहाँ घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की अनदेखी की गयी है। यही कारण है कि हमारी विदेश नीति पिछले कुछ दशकों से दिशाहीन हो गयी, विशेषकर केन्द्र में निरंतर संविद सरकारों के आने से। और दूसरी तरफ 1990 के दशक में अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और घरेलू राजनीतिक व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन हो गये। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूर्व U.S.S.R.का विखंडन, शीतयुद्ध का अंत, जर्मन एकीकरण जैसी महत्वपूर्ण घटनाए घटी तो भारत में घरेलू स्तर पर निरंतर संविद सरकारों का आना, अयोध्या कांड, साम्प्रदायिक दंगे, बैक घोटाला, म्रष्टाचार जैसी घटनाएं घटी। इस घरेलू स्तर की हमारी स्थिति ने हमारी वैदेशिक नीति को कमजोर किया है। अतः भारतीय वैदेशिक नीति का प्रदर्शक खाड़ी युद्ध, क्रायोजनिक समझौता, भारत—अमेरिका सम्बन्ध पर संतोषजनक नहीं प्रतीत होता है। इसलिए एक सर्वेक्षक ने टिप्पणी की है कि 'भारत एक आवाजविहीन राष्ट्र बन गया है उसने अपनी वैदेशिक नीति की दिशा को खो दिया है।'

वास्तव में बदले वैश्विक वातावरण में हमें उक्त सामाजिक व्यवहार की घटनाओं को अपनी वैदेशिक नीति से निकालना होगा और अपने राष्ट्रीय हित के आधार पर अपनी वैदेशिक नीति को पुर्नसूत्रित करना होगा। ताकि बदले वैश्विक परिदृश्य में हम दृढ़ वैदेशिक नीति अपना सके। 6. भारतीय अर्थ—व्यवस्था की स्थिति :— 4 दिसम्बर 1947 को संविधान सभा में नेहरू ने कहा था कि 'अन्तोगत्वा विदेश नीति आर्थिक नीति परिणाम है और जब तक भारत अपनी आर्थिक नीति उचित रूप से विकसित नहीं करता उसकी विदेश नीति अस्पष्ट होगी' 1990 के दशक में जहाँ एक तरफ U.S.A.के नेतृत्व में नई विश्व—व्यवस्था उभर रही थी, वहीं दूसरी तरफ भारतीय अर्थ—व्यवस्था की स्थिति बद से बदतर होती जा रही थीं परिणाम यह हुआ कि 1991—92 में बजट का प्रस्तुतीकरण टालना पड़ा, हमारी अर्थव्यवस्था के सामने वैदेशिक भुगतान का संकट खड़ा हो गया। जिसने भारतीय अर्थ—व्यवस्था क पूरे ढाँचे को पुर्नसंरचना हेतु बाध्य किया। ऐसी स्थिति में हमने बदले वैश्विक पर्यावरण के अनुसार अपनी विदेश नीति को पुर्नसूत्रित करने का प्रयास आर्थिक क्षेत्र में किया। इस हेतु हमने पूर्वोन्नमुखी नीति अपनायी। और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण पर बल दिया।

हमने विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेश को आमंत्रित किया और अपनी विदेश नीति को। M.F. & W.F. के पक्ष में मोड़ा। बहुत से क्षेत्रों का निजीकरण किया। इसके दो लाभ होंगे प्रथम उत्तर से सामंजस्य स्थापित होगा द्वितीय हमारी अर्थव्यवस्था धीरे—धीरे फैल रही वैश्विक आर्थिक नीति से जुड़ जायेगी।

- 7. राजनैतिक अस्थिरता :— हमारी संवैधानिक व्यवस्था जैसे—2 इस नई विश्व व्यवस्था के अनुरूप समाजवादी लोकतन्त्र से उदारवादी लोकतन्त्र की तरफ मुड रही है। वर्ष दर वर्ष प्रदेश सरकार व केन्द्रीय सरकार में राजनैतिक अस्थिरता बढ़ी है। क्षेत्रीय स्तर पर छोटे—छोटे दलों के उदय ने राष्ट्रीय मुद्दों को गौड़ बना दिया है, जिससे हमारे राष्ट्रीय हित पर चोट पहुँच रही है। जिससे प्रभावी विदेश नीति के संचालन में बाधा आ रही है। इसके लिए निम्न तत्व उत्तरदायी है।
 - 1. क्षेत्रीय दलों का उदय।
 - 2. कांग्रेस का निरंतर पतन होना।
 - वंश परम्परावाद की राजनीति को बढावा देना।
 - 4. केन्द्र में संविद सरकारों का निरन्तर आना।
 - 5. राजनीति का व्यवसायीकरण एवं।
 - राजनीति का अपराधीकरण।

उक्त सभी तत्वों का मिला—जुला असर यह है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ने वैदेशिक नीति के क्षेत्र में 1990 के दशक अपनी दिशा को खो दिया। अब वैदेशिक क्षत्र का कमजोर एवं गुणहीन लोगों ने नेतृत्व किया, फलतः बदलते वैश्विक पर्यावरण में हमारी विदेश नीति नयी चुनौतियों का सामना करने में अक्षम सिद्ध हुई। जिसका परिणाम यह है कि कभी—कभी हमारे विदेश निर्माताओं ने राष्ट्रीय हित के वैदेशिक मुद्दों के बजाय घरेलू राजनीति की चुनौतियों को ज्यादा महत्व दिया है। विशेषकर अल्पसंख्यकों के मुद्दे पर हमने सदैव वैश्विक स्तर वैदेशिक नीति के क्षेत्र में सही नीति का अनुसरण

नहीं किया। अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुट निरपेक्षता आप्रासंगिक हो गयी, इससे भी हमारी विदेश नीति कमजोर हुई।

भारत विभिन्न धर्मो एवं जातियों में सम्पन्न देश है अब धीरे—धीरे सभी लोगों में जागरूकता आ रही है और सभी वर्ग के लोग विधायिका में प्रतिनिधित्व चाह रहे है। यही कारण है, कि बहुदलीय सरकार अस्तित्व में आ रही है जो अब भविष्य में भी आती रहेगी। अतः अब हमारे नीति—निर्माताओं को विद्यमान घरेलू परिस्थिति को ध्यान में रखकर वैदेशिक नीति अपनानी होगी। ताकि राष्ट्रीय हित के मार्ग में बाधा न आये। जनतादल, राष्ट्रीय मोर्चा आदि के केन्द्र सरकारों ने हमारी वैदेशिक नीति को कमजोर बनाया है। लेकिन समय के साथ—साथ केन्द्र स्तर U.P.A. और N.D.A. के रूप में दो मजबूत गठबंधन उभरे है जिसने बदलने वैश्विक पर्यावरण के अनुरूप प्रभावी वैदेशिक नीति अपनाने का प्रयास किया है। जिसके निम्न उदाहरण है —

- 1. हमने 1998 में पुनः भूमिगत परमाणु परीक्षण किया।
- 2. C.T.B.T. & N.P.T. पर हस्ताक्षर से इन्कार कर दिया।

आज भारतीय वैदेशिक नीति को नई विश्व व्यवस्था में दो तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। पांच केन्द्रीय एशियन गणराज्यों सिहत मुस्लिम देशों का उभरता पिरसंघ जिसमें उभरते इस्लामिक पिरसंघ का नाम दे सकते है। इस इस्लामिक पिरसंघ द्वारा भारत के विरुद्ध काश्मीर को लेकर कोई 'रणनीतिक संरचना' सम्भव है। अतः भारतीय वैदेशिक नीति का यह कार्य होना चाहिये, चूँिक इस्लामी देश उदारवादी मूल्यों व मानवाधिकारों का उल्लंघन करते है। जिसके कारण पिश्चम साम्यवाद के विरुद्ध था। अतः इस तर्क की दुहाई देकर हमें U.S.A. के नेतृत्व में पिश्चम देशों से गठजोड़ करना चाहिये, तािक इस उभरते इस्लामिक धुव का जबाव दिया जा सके। भारत को अपने वैदेशिक नीति घरेलू मुस्लिमों के दबाव का पिरत्याग कम से कम वैदेशिक नीति के क्षेत्र में कर देना चाहिये। भारत को चीन से भी नाभकीय भय है, इस हेतु भारतीय वैदेशिक नीति को वैश्विक स्तर नाभकीय निरस्तीकरण का प्रयास करना चाहिये। चीनी भय को नियंत्रित करने हेतु हमें अपने प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों के आधार पर एक तरफ चीन से सम्बन्ध सुधारने का प्रयास करना चाहिये, तो दूसरी तरफ अमेरिका—इजरायल जापान व वियतनाम से मजबूत सैन्य सम्बन्धों बनाना चाहिये। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर भारतीय वैदेशिक नीति को पुरक्षित कर पायेगा।

वास्तव में नई विश्वव्यवस्था में भारतीय संसद में विभिन्न प्रस्तावों को व्यक्त करने में राष्ट्रीय सहमित है। आतंकवाद, वित्तीय मुद्दे, महिला आरक्षण, नाभकीय अस्त्रों के प्रश्न पर संसद के अंदर व बाहर राष्ट्रीय सहमित है। दुर्भाग्यवश इनका क्रियान्वयन सही ढंग से नहीं किया जा रहा है, अतः भारतीय नीति ऐसी होनी चाहिये कि इसका सही ढंग से क्रियान्वयन हो।

निष्कष :- विवेचना से स्पष्ट है कि भारत ने नई विश्व व्यवस्था के अनुरूप अपनी वैदेशिक नीति को मोडने का प्रयास किया है। और इसी परिप्रेक्ष्य में अमेरिका-इजरायल, जापान, वियतनाम आदि देशों एवं क्षेत्रीय संगठनों से अपने सम्बन्धों को पूर्न परिभाषित करने का प्रयास किया है। भारत ने गुट-निरपेक्षता के आप्रासंगिक होने के बाद अपनी विदेशी नीति का पुनरीक्षण किया है। जिसका एक उदाहरण भारत द्वारा अपनायी गयी पूर्वोन्मुखी नीति है। नई विश्व-व्यवस्था जो शक्ति-संरचना में एक ध्रुवीय (कई विद्वानों ने बहुध्वीय कहा है) और वैचारिक दृष्टि स उदार लोकतन्त्र एवं पूंजीवाद का पोषक है। इसके अनुरूप भारत ने अपनी विदेश नीति को पूर्नपरिभाषित करने का प्रयास किया है और अपनी नई आर्थिक नीति के माध्यम से भूमंडलीकण की प्रक्रिया से जुड़ने का प्रयास किया है। चीन, अमेरिका और इजरायल के सम्बन्धों में सकारात्मक प्रगति हुई है। भारत ने अब विचारधारा को छोड़कर राष्ट्रीय हित के आधार पर विदेश नीति के निर्धारण का संकल्प लिया है। भारत द्वारा 1998 में किया गया परमाणु विस्फोट इसी नीति का परिचायक है। इसके साथ-साथ भारत द्वारा U.N.O. के लोकतंत्रीकरण की मांग भारत के राष्ट्रीय हित के साथ–साथ विश्वहित से भी प्रेरित हैं। भारत ने अपने राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर उत्तर से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। उक्त सभी तथ्यों की प्राप्ति हेतू नवीन विश्व व्यवस्था में भारत ने देश के अंदर राष्ट्रीय सहमति के माध्यम से पाने का प्रयास किया है। संक्षेप में हम कह सकते है कि नई विश्व व्यवस्था में भारतीय विदेश नीति अधिकाधिक वैश्विक स्तर पर स्वावलम्बी बनने का प्रयास कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

- नौटियाल अन्नपूर्णा / भारत और नई विश्व व्यवस्था / साउथ ऐशियन प्रकाशन, नई दिल्ली / वर्ष 1996 / पष्ठ सं0 10–11 ।
- 2. द हिन्दू 12 मई 1992।
- 3. के0 नटवर सिंह / एन्वाइस—लेस—नेशन / इंडियन एक्सप्रेस / 10 अगस्त 1993 ।
- 4. उद्वरित/फारेन पालिसी आफ इंडिया/नई—दिल्ली/लोकसभा सचिवालय/1987/ पृष्ठ संख्या 5।
- 5. अन्य स्व अध्ययन पर आधारित विचार।



वैदिक साहित्य में मूल्य विवेचन की अवधारणा की प्रांसिंगकता (आज के संदर्भ में) डॉ. रमेश चन्द्र टांक

शोधार्थी, सीनियर रिसर्च फेलो , ICSSR संस्थान

सारांश- वैदिक साहित्य संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है यह अत्यन्त प्राचीन है वैदिक ज्ञान को अनके ऋषियों ने संजोया है प्रत्येक वेद में समस्त वैदिक वाङ्ग्मय में जीवन के नैतिक मूल्यों की व्याख्या की गई है। वेदों में वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना का वर्णन किया गया है। वेदों में प्राचीन कालीन संस्कृति तथा धार्मिक, सामाजिक ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन से सम्बन्धित मूल्यों का समावेश है यह सभी जीवन मुल्य मनुष्य के कल्याणकारी मार्ग को प्रशस्त करते है। मुख्य शब्द- वैदिक, साहित्य, संस्कृत, धार्मिक, सामाजिक ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक, मूल्य।

(1) वैदिक साहित्य में मूल्य-विवेचन-साहित्यिक ग्रन्थों में मूल्यों की व्याख्या तथा मूल्यों की अभिव्यक्ति प्राचीन काल के उपलब्ध ग्रन्थ वेद से लेकर आज तक उपलब्ध नवीन साहित्य में भी उपलब्ध है साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं की स्तुतियों से सम्बन्धित मन्त्रों, में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक धारणाओं की अभिव्यक्ति हुई है यही धारणाएं जो सामाजिक जीवन से सम्बन्धित थीं वही मूल्यों की प्रारम्भिक अवस्था थी। वैदिक साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। वेद ज्ञान को अनेक ऋषियों ने संजोया है। प्रत्येक वेद में समस्त वैदिक वाङ्मय में यत्र-तत्र जीवन की सामान्य पद्धित से सम्बद्ध अनेक विचार गुम्फित हैं। ये ही जीवन के मूल्य हैं। वेदों में जहाँ आध्यात्मिक ज्ञान छिपा है वहीं ज्ञान के पुंज ये वेद जीवन के नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन कर जीवन को सुन्दर बना सुख पूर्वक जीने की कला भी सिखाते हैं। जहाँ जीवन है वहाँ वेदों की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है वैदिक मन्त्र सर्वत्र मनुष्य परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं। वेदों में अधिकांश प्रार्थनाएँ समूह रूप में की गई हैं तथा समूह के लिए ही कल्याण की कामना की गई है इसलिए सर्वत्र "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना परिलक्षित होती है। कल्याण प्राप्ति के लिए ही वेदों की महत्ता बताते हुए मनुस्मृति में कहा गया है कि-

यः स्वाध्यायमधीतेऽबदं विधिना नियतः शुचिः । तस्य नित्यम् क्षरत्येष पयो दिध धृतं मधु॥

अर्थात् जो मनुष्य एक वर्ष तक यथाविधि नियमपूर्वक वेद का स्वाध्याय करता है उसे वेद कामधेनु की भाँति दूध, दहीं, घी आदि देते हैं अर्थात् वेद उस व्यक्ति के नैतिक मूल्यों का पल्लवन कर उसकी भौतिक शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करते हैं।

वरुण देव को वेदों में नैतिक देवता के रूप में स्वीकार किया गया है वरुण देव व्यक्ति के सत्य और असत्य दोनों को जानने वाले हैं- यासां राजा वरुणो याति यन्नमध्ये सत्यानृते-अवपश्यन्जनानाम्।'²

वेदों में प्राचीन कालीन संस्कृति तथा धार्मिक सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन से सम्बन्धित मूल्यों का समावेश है। वेदों में जीवन मूल्यों को ढूँढना और उनको किसी भी प्रकार की कसौटी पर कसना हमारा बोद्धिक व्यायाम मात्र है। क्योंकि वेदों के सभी मन्त्र जीवन मूल्यों का ही प्रतिपादन करते हैं। जहाँ तक उनकी उपयोगिता की बात है तो कहा जा सकता है कि जीवन मूल्य एक रोगी के औषधी सेवन की तरह हैं, यदि रोगी औषधी का सेवन करेगा तो लाभ होगा और यदि

वह केवल औषधियों का संकलन करेगा, उसका नाम पढ़ता रहेगा, गुणधर्म की आलोचना और विश्लेषण मात्र करता रहेगा तो इससे औषधियों का कोई दोष या अनुपयोगिता सिद्ध नहीं होगी, बिल्क रोगी की मूर्खता मात्र प्रकट ही होगी। फिर आज मनुष्य जिनकों जीवन मूल्य समझता है वे स्थूल विचार भी वेदों में कम नहीं है। चारों वेद मानवीय मूल्यों के निर्णायक ग्रन्थ हैं। चारों वेद योग के यम नियमों, धर्म के दसों लक्षणोंऔर चारों पुरुषार्थों के जीवन्त उदाहरण हैं। अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपिरग्रह³ तथा शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान¹⁴ ये यम, नियम, धैर्य, क्षमा–दमन अस्तेय शौच इन्द्रिय निग्रह बुद्धि विधा सत्य, अक्रोध–धर्म के ये दस लक्षण हैं।¹5 चारों पुरुषार्थ भी मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इनको सप्तमर्यादा . के रूप में गणना करते हुए लिखा है कि हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ असत्यभाषण और इन पापों को करने वाले दुष्टों के सहयोग का नाम सप्त मर्यादा है इनमें से जो एक भी मर्यादा का उल्लंघन करता है वह पापी है।6

सामाजिक मूल्य-परस्पर व्यवहार से संयोजित व्यक्तियों का समुदाय समाज कहलाता है। समाज को कैसे उन्नत बनाया जा सकता है इस सम्बन्ध में अनेक निर्देश एवं मूल्य वेदों में उपलब्ध होते हैं जैसे-

पारिवारिक समरसता के मूल्य- व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध उसके परिवार से होकर जाता है। अत: परिवार समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। पारिवारिक सम्बन्धों में मिठास व मधुरता लाने के लिए वेदों में विभिन्न प्रकार के मूल्यों को गुम्फित किया गया है जो आज के टूटते एवं बिखरते परिवारों के लिए जोड़ने वाले एक सेतु का काम कर सकते हैं- परिवार के सभी सदस्यों को मिलकर चलने तथा परस्पर मीठी वाणी बोलने का निर्देश देते हुए वेद में कहा गया है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु समनाः, जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवान्॥'

अर्थात् पुत्र पिता के अनुकूल कर्म करे और माता के साथ मन के शुभ भाव से व्यवहार करे। पत्नी पित के साथ सदा मधुर भाषण करती रहे।

> मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमृत स्वसा। सम्यंच: सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

अर्थात् - भाई-भाई से द्वेष न करे, बिहन-बिहन के साथ न लड़े। एक मत से एक कर्म करने वाले होकर परस्पर निष्कपटता से भाषण करो।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी भव अधि देवृषु॥⁹

माता-पिता को चाहिए कि वे अपनी पुत्रवधू को इतना स्नेह एवं सम्मान दे कि वह ससुराल में ससुर, सास ननद देवर सब के दिलों पर राज्य करे. ससुराल में महारानी की शोभा को प्राप्त करे।

सामाजिक समरसता के मूल्य-समाज में परस्पर सहभाव को अनिवार्य समझते हए वेद ने सहभाव और समानता के मूल्य को इस प्रकार अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि – सब मिलकर चले, सबकी विचारधारा एक जैसी हो, सबके मन आपस में मिलते हों, मन में किसी के प्रति द्वेष न रखें। '10

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासित॥

अर्थात् हे मनुष्यों ! तुम्हारा सब पुरुषार्थ जीवों के सुख के लिए सदा हो, तुम्हारे विचार तुम्हारे हृदय तथा तुम्हारे मन सदा प्रेम सिहत तथा विरोध से रहित हों।

सहृदयं सामनस्यमिवद्वेषं कृणोमि वः । अन्योऽन्यभिहर्यत वत्सं जातमिवान्या॥'¹²

अर्थात् प्रेमपूर्ण हृदय के भाव, मन के शुभ विचार और आपस की निवैरता आप अपने घर में स्थिर कीजिए, हर एक मनुष्य एक दूसरे मनुष्य के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करे।

संसाधनों का समान बँटवारा-समानता के मूल्य की अभिव्यक्ति करते हुए वेद कहता है कि समाज में कोई दूसरों के अधिकारों का हनन न करे! वेद में निर्देश है कि प्राकृतिक संसाधनों पर किसी का विशेष आधिपत्य नहीं, अपितु उनका समान बँटवारा होना चाहिए –

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । सम्यंचोऽग्निं सपर्यतारानाभिवाभितः।¹³

अर्थात् पानी तथा अन्न के भण्डारों को सब बराबर बाँटकर मिलकर उपयोग करें। इसी प्रकार अनेकता में एकता के मूल्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की गई है

गोमायुरेको अजमायुरेकः प्रश्लिरेको हरित एक एषाम्। समानं नाम बिभ्रतो विरूपा पुरत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः॥14

अर्थात् किसी भी समाज में विभिन्न जातियाँ, कबीले भाषायें आदि हो सकते हैं। वेद में कहा गया है कि ऐसी अनेकता विवाद के बीज न बोये। इस अनेकता में भी एकता देखनी चाहिए, जैसे कि एक जलाशय में मेंढ़क होते हैं, उनके बोल भी अलग-अलग होते हैं, परन्तु रंग तथा बोल अलग-अलग होने पर भी वे एक ही जलाशय के मेढक होते हैं। रंग तथा बोल में अन्तर के आधार पर उनमें कोई भेद नहीं हो सकता।

जिस प्रकार गाय समान भाव से सबको हजारों धाराओं में दूध देती है, उसीप्रकार समाज में पृथक्-पृथक् भाषाएँ तथा पृथक-पृथक् आराध्य होने पर भी एकता का ही संचार होना चाहिए-

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं, नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम सहस्र धारा द्रविणस्य में दुहां, ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥'¹⁵

वेद अपनी दृष्टि को और अधिक व्यापक बनाते हुए कहता है कि सब दिशाओं में मनुष्य की जो विभिन्न जातियाँ हैं, उनका समान विकास होना चाहिए, जैसे वर्षा होने पर सब निदयाँ एक समान जल से भर जाती हैं

इमा याः पंच प्रदिशो मानवीः पंचकृष्टयः वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान्॥¹⁶

सामाजिक भाईचारा- वेदों में सामाजिक भाई चारे के मूल्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है कि समाज में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना नहीं होनी चाहिए। सब भ्रातृभाव से रहें। विकास के अवसर सबको समान रूप से प्राप्त हों-

ते अज्येष्ठा अकिनष्ठास उद्धिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः । सुजातासो जनुषा पृश्चिमातरो दिवोमर्या आ नो अच्छा जिगातन।।¹⁷ अज्येष्ठासो अकिनष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।¹⁸

राजनीतिक मूल्य- लोक कल्याण की इच्छा से ऋषियों ने दीक्षा लेकर तप किया उससे राष्ट्र की उत्पत्ति हुई अतः इस राष्ट्र की भिक्त करें, ऐसा उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।

भ्रदिमच्छन्तं ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्र बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसं नमन्तु ॥'19

मनुस्मृति के अनुसार क्षत्रिय राजा ब्राह्मणसंस्कारों को यथाविधि प्राप्त कर इस सारे राज्य की रक्षा न्याय पूर्वक करें।^{'20}

अहिंसा- मानव जीवन के साथ ही श्रेय और प्रेय प्राप्ति के लिए संघर्ष आरम्भ से ही चला आ रहा है। इस जीवन संघर्ष में विविध क्लेश मनुष्य को काम क्रोध लोभ मोह आदि अनेक रूपों में आक्रान्त करते है। इनके वशीभृत होकर जब मनुष्य अन्य प्राणियों को कष्ट देने के लिए सन्नद्ध हो जाता है तो उस वृत्ति का नाम हिंसा है। वेदों में स्थान-स्थान पर हिंसक के प्रति घृणा के भाव लिक्षित होते हैं, वेदों में कहा गया है कि जो व्यक्ति बुरे विचार से हिंसा के लिए अस्त्र चमकाता है, उससे और पाप से हमारी रक्षा करें। '21 अहिंसा का अनुमोदन करते हुए कहा गया है कि अहिंसा से युक्त व्यक्ति वृद्धि को प्राप्त होता है। 22 अस्तेय- अस्तेय का अर्थ है स्वामी की आज्ञा के बिना अनिधकृत पदार्थ को ग्रहण कर लेना तथा मन वचन कर्म से इस प्रवृत्ति का त्याग करना अस्तेय है। वेदों में अस्तेय नामक मानवीय मूल्य बहुश: प्रतिष्ठित: हैं। वहाँ अपने कुल की उन्नति के विचार से चौर्य कर्म को त्यागने तथा परिश्रम करने का संकल्प विद्यमान है। 23

ईश्वर- नैतिक मूल्यों की अवधारणा के सन्दर्भ में यह समझने की बात है कि हमारा बहुत कुछ पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, कर्म, अकर्म, कर्मफल, सबुद्धि आदि की धारणायें ईश्वर से सम्बद्ध हैं। ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करना, उस पर श्रद्धा रखना, उसके प्रति समर्पण की भावना आदि कुछ ऐसे मूल्य हैं जो विश्व के सभी समाजों में आदिकाल से अधावधि पाये जाते हैं। इससे हमारे चिन्तन, कर्म औरसंस्कार प्रभावित होते हैं। इसलिए ईश्वर को उपेक्षित कर जीवन मूल्य निर्धारित नहीं किये जा सकते। रूद्र रूप परमात्मा की प्रार्थना व उपासना से प्राणियों को श्रेष्ठवास, जीवन में श्रेष्ठता तथा स्थिरता की प्राप्ति होती है! ईश्वर के प्रति समर्पित लोगों के हृदय में ईश्वर श्रेष्ठकर्मों को स्थापित करता है। जो व्यक्ति ईश्वरीय व्यवस्था में रहकर धरती का पालन या संरक्षण करता है वह ईश्वर का कल्याणकारी बन्धु है। दुष्ट व्यक्ति ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों को दबा नहीं सकते। ईश्वर भक्त श्रेष्ठजन दुष्टों को बाज की तरह झपटकर नष्ट कर देते हैं। उप

हम परमात्मा के व्रत सें कभी विचलित न होंवे हम उसकी स्तुति करते हुए सुखी रहें। ईश्वर के प्रति जागरूक होकर स्तुति करने वाले बुद्धिमान लोग ही संसार में सही तरीके से प्रकाशित होते हैं तथा अपने को प्रकाशित करते हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन में प्रकाश का संचार करते हैं।²⁵ हम ईश्वर की व्यवस्था और उसके वैशिष्ट्य को देखें और उसके अनुशासन में रहे और उसका सायुज्य प्राप्त करें।²⁶ इसलिए सर्वत्र उसी को व्याप्त जानकर तथा सब कुछ उसी का दिया हुआ है, ऐसा मानकर संसार में भोग करें, इसमें सामाजिक शान्ति और व्यक्तिगत मुक्ति निहित है, जो व्यक्ति उस परमात्मा की व्यवस्था में नहीं रहता उसकी आवाज को नहीं सुनता, वह अन्तत: गहन अन्धकार में दुब जाता है।²⁷

पुरुषार्थ- पुरुषार्थ रूपी जीवन मूल्य के बारे में ऋग्वेद में कहा गया है कि अयन अर्थान कृण्वन् अपांसि।'²⁸ अर्थात् कर्म करने वाले को अभीष्ट की प्राप्ति होती है। उत्तिष्ठत प्र तरता सखायं²⁹ अर्थात् हे मित्रो ! पुरुषार्थ करो और संसार रूपी नदी को पार करो। न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवा:।'³⁰ अर्थात् देवता अथक परिश्रमी से ही मित्रता करते हैं। यन अहवानपवृम्ते चिरित्रै:।³¹

अर्थात् - पैर से चलने पर ही मार्ग तय होता है।

भूरी ज्योतिषि सुम्वत:132

अर्थात् कर्मठ को बहुत ज्ञान का प्रकाश मिलता है।

ब्रह्मचर्य- सामवेद में ब्रह्मचर्य के लाभ को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि ब्रह्मचर्य सेवन से चेहरे पर ओज कान्ति तथा ब्रह्मतेज होता है।³³ ब्रह्मचर्य के पालन से मृत्यु पर भी विजय पायी जा सकती है'³⁴ योगदर्शन में भी ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां **वीर्य लाभ**: कहकर इसका समर्थन किया है।³⁵ अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड का पांचवा सूक्त जिसमें छब्बीस मन्त्र है में पूर्णत: ब्रह्मचर्य के गुण, महत्त्व व लाभ इत्यादि का वर्णन किया गया है।

सौमनस्य- ऋग्वेद के 10 वें मण्डल का अन्तिम सूक्त सौमनस्य सूक्त है। यहाँ पर सौमनस्य से तात्पर्य समानता तथा मानसिक और बौधिक एकता है। समभाव की प्रेरणा देने वाले इस सूक्त में सबकी गित, विचार और मन बुद्धि में सामंजस्य की प्रेरणा दी गयी है। '36 सौमनस्य से भी समानता रखता हुआ अथर्ववेदीय संज्ञान सूक्त है। यह सूक्त सामान्य शिष्टाचार और जीवन के मूल सिद्धान्तों को निरूपित करता है। सभी लोगों के बीच समभाव तथा परस्पर सौहार्द्र उत्पन्न हो, यह भावना इसमें व्यक्त की गयी है। आज आधुनिक भौतिकवादी युग पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि मनुष्य झूठी आधुनिकता की दौड़ में अपने सच्चे जीवन मूल्यों को विस्मृत कर परम सत्य के सुख से वंचित हो चला है, ऐसी स्थिति में जब उसकी आकांक्षाओं का कोई अन्त नहीं तब वह न तो भौतिक सुखों से सन्तुष्ट है तथा आत्मिक व आध्यात्मिक सुख उसके पास है नहीं तब उसकी दशा इस प्रकार की है कि– दोनों जहाँ से गये हम, न माया मिली न राम।

सन्तोष- केवल प्राण धारण योग्य उपलब्ध साधन से अधिक साधन के ग्रहण में इच्छा शून्यता सन्तोष है।³⁷ वेदों में इस मूल्य को अपनाने के लिए बार-बार कहा गया है। सन्तोष बुद्धि उत्पन्न करने के लिए त्याग पूर्वक भोग करो, किसी के धन की लालसा मत करो।'³⁸ अथर्ववेद में सदैव सन्तुष्ट रहने की कामना की गई है।³⁹

दान- उपनिषद् काल की तरह वेद के युग में भी दानशीलता का मानवीय मूल्यों में विशेष स्थान था। वेद का ऋषि कहता है कि सैकड़ों हाथों से अर्जन करो और सहस्त्रों हाथों से दान करो। 40

अतिथि-सत्कार- कठोपनिषद् में कहा गया है कि-

"आशा प्रतीक्षे संगतं सूनृता च इष्टापूर्ति पुत्रपशूश्च सर्वान्। एतद् वृऽस्ते पुरुषास्याल्पमेघसो यस्यानश्चन्वसति ब्राह्मणो-गृहे ॥"41

अर्थात् जिसके घर में अतिथि ब्राह्मण भूखा रहता है, उस न्यून बुद्धि वाले मनुष्य की प्रतीक्षा और उससे मिलने वाले सुख, श्रेष्ठ वाणी, कामना, पूर्ति, पशु आदि वैभव सबको ही क्षुधातुर अतिथि नष्ट कर डालता है।

त्याग- भारतीय संस्कृति में परमात्मा की प्राप्ति के लिए त्याग एवं तपोमय जीवन का निर्देष दिया गया है।

"नकर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥⁴²

अर्थात् कर्म से नहीं प्रजा से नहीं, धन से नहीं अपितु त्याग से कोई अमृतत्व को प्राप्त होते है। वैदिक धर्म की आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य भी त्याग करने की शिक्षा देना है। त्याग की भावना अन्तः करण से होनी चाहिए। बाह्य त्याग दिखावा और दम्भ का कारक है, अन्तः करण के त्याग से ही व्यष्टि एवं समष्टिगत कल्याण होता है।

आध्यात्मिक मूल्य- आध्यात्मिक मूल्यों के बारे में वैदिक साहित्य में इस प्रकार विवेचन हुआ है यथा- इदं ज्योतिरमृतं मर्येषु ।⁴³

अर्थात् यह आत्मा मनुष्यों में अमर ज्योति के रूप में हैं।

इसी प्रकार - **इदं सर्व यदयमात्मा।** अर्थात् - यह सब आत्मा ही है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥⁴⁵

अर्थात् जो सब प्राणियों को अपनी आत्मा में देखता है, ऐसा मुमक्षु पुरुष किसी से भी घृणा नहीं करता। इस प्रकार समस्त वैदिक साहित्य आध्यात्मिक मूल्यों से समृद्ध है, जो विश्व कल्याणार्थ उन्नत जीवन दर्शन देता है।

सत्य- यजुर्वेद में सुखी जीवन के लिए सत्य एवं ऋत को बहुत महत्त्व दिया गया है। जीवन को जीना एक संकल्प है, एक व्रत है। इसके लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को जीवन में सत्यता को धारण करना नितान्त अपेक्षित है। सुदृढ़ नींव पर भी भवन दृढ़ता से स्थिर रह सकता है। जीवन रूपी भवन की नींव सत्य है, असत्य कमजोर नींव की तरह है। कभी भी धाराशायी हो सकता है। इसलिए वेद का सन्देश है कि हम असत्य से दूर होकर सत्य को अपनायें। '46 हमारी इच्छाएँ भावनाएँ सत्य हों शाश्वत हों। '47 ऋत या सत्य के रास्ते पर चलकर ही हम मानव धर्म को प्राप्त कर सकते हैं। यजुर्वेद में ऋषि ने प्रार्थना की है कि असत्य के प्रति हमारे मन में अश्रद्धा होनी चाहिए तथा सत्य के प्रति ही श्रद्धा होनी चाहिए। 48

आज ऋत का स्थान अनृत ने, सत्य का असत्य ने, संयम का असंयम ने, धर्म का अधर्म ने, सन्तोष का असन्तोष ने कर्त्तव्य निष्ठा का कर्त्तव्यहीनता ने और शीलता का अश्लीलता ने ले लिया है। आज की भाँति वेदकालीन युग में मानव के पास कोठी, बंगले, गाड़ी दूरदर्शन आदि भोग ऐश्वर्य के साथन नहीं थे। वे तो अन्न, धन, गौओं, पशुओं कीर्ति प्रजा पुत्र, पुत्री, पौत्र-पौत्री आदि को ही ऐश्वर्य समझकर इनकी याचना करते थे। किन्तु आज का युग परिवार नियोजन का युग है। संयुक्त परिवारों का स्थान छोटे परिवारों ने ले लिया है।

ऋग्वेद का ऋषि कहता है कि वहीं स्त्री श्रेष्ठ है जो ब्रह्मचर्य धारण कर वीर पुत्रों को जन्म देने वाली और सहनशील स्वभाव वाली है। ⁵⁰ स्थिर स्वभाव वाली एवं ओजस्विनी नारियाँ वेद के युग की शोभा थी। उस काल में नारियों को यह आदेश भी था कि उनके ओष्ठ प्रान्त और किट का निम्न भाग भी न दिख सके। ⁵¹ लेकिन आज घटते मूल्यों के स्तर के फलस्वरूप पाश्चात्य संस्कृति से प्रेरित आज की स्वच्छन्द चारिणी मिल्लिका–शेरावत जैसी नारियाँ। लोपामुद्रा, गार्गी जैसी नारियों सेगौरवान्ति था वह वेद का युग, जहाँ नारी आदर्श बहन, आदर्शपत्नी व आदर्श माता थी। वैदिक युग का वह सुदृढ़ समाज ऐसे पारेवार की कल्पना करता था, जहाँ माता–पिता सन्तान के कल्याण की कामना करते थे वहाँ पुत्र भी अपने माता–पिता के कल्याण की कामना करता था। ⁷⁵²

मंगल-कामना- कठोपनिषद् का एक उदाहरण द्रष्टव्य है कि वाजश्रवस ऋषि का पुत्र निचकेता जब देखता है कि उसके पिता दूध देने में असमर्थ बूढ़ी गायों को दान कर रहे हैं तब वह व्यथित होकर सोचता है कि ऐसे निकृष्ट दान से मेरे आप पिता कहीं यजुर्वेद के अन्धेनतमसावृता।'53 के अनुसार निम्न गित को प्राप्त न हो जाएं, इसिलए वह बीच में ही अपने पिता से कहता है कि हे पिता ! मुझे आप किसे दोगे ? पिता वाजश्रवस क्रोधित होकर बोले कि तुझे यम को दूंगा। अपने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए निचकेता यमलोक चला गया। अपनी अनुपस्थित में तीन दिन से भूखे-प्यासे निचकेता को यम ने अतिथि मानकर तीन वरदान दिये। पहले वरदान में निचकेता ने मांगा कि मेरे यहाँ आने से पिता दु:खी न हों तथा मेरे लौटने पर मुझे पहचानकर पहले की भाँति प्रेम से व्यवहार करें। यह थी एक पुत्र की पिता के प्रति मंगल कामना। लेकिन आज ऐसी मंगल-कामना दिखाई नहीं देती।

कठोपनिषद् में जीव ब्रह्म आत्मतत्त्व, जगत, सत् असत्, जन्म, मृत्यु, बन्धन, मोक्ष आदि से सम्बन्धित मूल्यों का विवेचन भी हुआ है। उपनिषद् का प्रमुख उद्देश्य प्राणी वर्ग को सत्कर्म में प्रवृत्त करना तथा सांसारिक भोगैश्वर्य के प्रति उदासीन बनाना है। कठोपनिषद् में उदालक का चरित्र अत्यन्त गौरवपूर्ण है। इसमें नचिकेता को आज्ञाकारी पुत्र के रूप में चित्रित किया गया है। यम का स्वरूप भी अत्यन्त श्रद्धास्पद देव के रूप को अभिव्यक्त करता है। इन तीनों का ही चिर्त्रि महनीय है।

नीति शास्त्र में धन की दान भोग एवं विनाश तीनों गितयों का उल्लेख है। अआज विश्व में धन के सम्पादन और संवर्धन की होड़ है। बुद्धिवादी वर्ग के लोग आज विश्वानि देव सिवतर्दुरितानि परसुव। 55 को भुलाकर दूरितो अर्थात् बुराईयों का ही नित्य आविष्कार कर रहे हैं। कपड़ों का उत्पादन बढ़ रहा है पर रूझान नग्नता की ओर है। घोषणा विश्वशिक्त की की जा रही है, पर तैयारियाँ विश्वविध्वंस की हैं। आज असत् पृथ्वीलोक से उठकर धुलोक को छू रहा है। सत् के दर्शन तक दुर्लभ हैं। 56

धर्म एव जयित नाधर्म के नारे लगा रहे हैं किन्तु असत्य और अधर्म दोनों ही मानवीय मूल्यो का क्षरण करते हुए विश्वव्यापी होकर विजय श्री प्राप्त कर रहे हैं। भारतीय कॉलेजों में लड़के-लड़िक्यों को एक से परिधान, हिप्पियों जैसी केस सज्जा नाच, क्लब, व्यसन, विकास, धूम्रपान, मिदरापान सब पश्चिमीकरण की देन है। देश में हर वर्ष कई करोड़ों की सिगरेट की बिक्री होती है। मिदरा का बाजार भी करोड़ों की गिनती में आता है। सिर्फ तम्बाकू की वजह से हर वर्ष 50 लाख के लगभग मौत हो जाती है। सिगरेट और शराब दोनों मिलकर कैंसर को जन्म दे रहे हैं। आज भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व ही व्यसनों और विलासों की रंगभूमि बन गया है।

पर्यावरणीय मूल्य- भारतीय तपः पूत ऋषियों ने प्रकृति के प्राकृतिक तत्वों की जानकारी के लिए चिन्तन मनन एवं उपासना में समय व्यतीत किया। उन्होंने मानव के कल्याण के लिए पर्यावरण का गहन महत्त्व जानते हुए उसका संरक्षण किया। सुरक्षा, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, कष्टों के निवारणार्थ एवं रोगों के उपचार हेतु अनेक उपयोगी तत्वों का शोध किया तथा प्रकृत्ति के संवर्धन से शतायु होने की कामना की।

ऋग्वेद में तैंतीय देवताओं का वर्णन है– जो प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पर्यावरण के सम्पूरक हैं। जीवों को सुरक्षित रखने वाले तत्त्वों को देवत्व की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया गया है। यजुर्वेद का यह मन्त्र इन तत्त्वों में देवत्व का वर्णन करता है। उपर्यावरण की सुरक्षा के लिए वृक्षों एवं वनस्पत्तियों की सुरक्षा का सर्वाधिक महत्त्व हैं, क्योंकि प्राणवायु ऑक्सीजन हमें वृक्षों से ही मिलती है, इसलिए वनस्पत्तियोंऔषधियों वनों तथा वन रक्षकों तक को नमस्कार किया है।

नमो वृक्षेभ्यो।⁵⁸ नमो वन्याय।⁵⁹ वनानां पतये नमः।⁶⁰ औषधीनां पतये नमः ।⁶¹मधुमान्नो वनस्पत्तिः।⁶² वैदिक शान्तिपाठ तो पर्यावरण साधना का शाश्वत् उद्घोष है।

द्यौः शान्ति अन्तरिक्ष शान्ति पृथिवी शान्तिराप शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः । शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥⁶³

इस प्रकार वैदिक साहित्य के महर्षियों को साहित्य सृजन का प्रमुख प्रयोजन मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं लोक कल्याण ही रहा है।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि मानव मूल्य एक ऐसी आचार संहिता या सदुण समूह है, जिसे मनुष्य अपने संस्कारों के द्वारा अपने परिवेश में माध्यम से अपनाता है। वह अपने निर्धारित उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए अपनी जीवन प्रणाली का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। मूल्यों के विकास में मनुष्य की धारणाएं विचार, मनोवृति आस्था आदि सहयोग करते है। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तः करण द्वारा नियन्त्रित होते है तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एंव परम्परा द्वारा परिपोषित होते है।

मानव जीवन के सुचारू रूप में परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदण्डों का निर्धारण किया और उन्हीं के आधार पर मूल्य की अवधारणा अस्तित्व में आयी। इस दृष्टि से मूल्य का अर्थ मानव जीवन के सन्दर्भ में ही महत्त्व रखता है। जीवन के अभाव में मूल्य चिन्तन तो दूर की बात है मूल्य शब्द का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। अत: मूल्य शब्द का आशय मूलत: जीवन मूलय या मानव मूल्य अर्थात् जीवन के मापदण्ड से ही होता है।

जीवन मूल्यों का संदर्भ में भारतीय चिन्तन ने मानव जीवन की समस्त व्यवस्था को लक्ष्य मानकर जिन चार पुरूषार्थों अथवा मूल्यों की प्रतिष्ठा की है, उनमें अन्तवर्ती तथा बाध्य साध्यात्मक और साधनात्मक शाश्वत तथा सामयिक, वैयक्तिक तथा सामाजिक सभी तरक के मूल्यों की समाविष्टि हो जाती है, इसलिए आज भी वैज्ञानिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकता के संदर्भ में थोडे बहुत स्वरूप भेद के साथ समस्त नवीन जीवन मूल्यों की इन्हीं के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इनकी वरीयता तो बदलती रही है, जैसे आज अर्थ ओर काम की प्रमुखता दिखाई देती है, किन्तु चारों में से किसी एक के भी पूर्वत: विलुप्तीकरण की स्थिति कभी नहीं आयी।

भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण के अनुसार प्राचीन धर्मशास्त्रों में मूल्यों की अपनी विशिष्ट सत्ता है। ईश्वर यहां चरम मूल्य होता है वही समस्त गौण मूल्यों को प्रेरणा होता है, वस्तुत: मूल्यों पर ही सम्पूर्ण धर्म का ढांचा टिका हुआ है। मूल्यों के अभाव में धर्म की सत्ता गौण ही जायेगी। मानव धर्म ही वह तत्व है जो किसी समुदाय विशेष को सुनिश्चित आदर्शों में बांध रखता है। सत्य, न्याय विवेक अहिंसा प्रेम, भिक्त आदि ईश्वर तक पहुंचने वाले ऐसे साधन है जिन्हें सभी धर्मों से समान रूप से अंगीकार किया गया है, ये ही धर्म शास्त्र के गौण मूल्य है। इन्हीं मूल्यों को आधुनिक दर्शनशास्त्री काध्ट एवं हीगेल ने सौन्दर्य कला आचार और धर्म आदि को सर्वोपरी मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। इस प्रकार आधुनिक युग में बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय जीवन व्यवस्था के परिणाम स्वरूप मूल्य चिन्तन के क्षेत्र में भारतीय और पाश्चात्य विचार धाराओं में आदान-प्रदान हो रहा है। यही कारण है कि भारत का पुरूषार्थ चतुष्टय का विचार पश्चिमी आधुनिकता के सन्दर्भ में पुर्नर्व्या ख्यायित किया जाने लगा है और पाश्चात्य चिन्तन तथा संस्कृति भारतीय आध्यात्मिकता और योग साधना मूलक जीवन दर्शन की ओर आकर्षित हो रही है।

सन्दर्भ

- 1. मनुस्मृति 2.107
- 2. ऋग्वेद 7.49.3
- 3. अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा: यमा। योग दर्शन 2.30
- 4. शौच सन्तोषतप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा:। योग दर्शन 2.32
- 5. धृति, क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिन्द्रियनिग्रह: । धीविधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। मनुस्मृति 6.92
- 6. सप्त मर्यादाः काव्यस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यहुरो गात्। आयोह रकम्भ उपमरय नीऽ पथां विसर्गे धरूणेषु तस्थौ ।। ऋग्वेद 10.5.6
- 7. अथर्ववेद 3.30.2
- 8.वही, 3.30.3
- 9. ऋग्वेद -10.85.6
- 10. ऋग्वेद -10.191.2
- 11. ऋग्वेद, 10.191.4

- 12. अथर्ववेद 3.30.1
- 13. वही, 3.30.6
- 14. ऋग्वेद 7.103.6
- 15. अथर्ववेद 12.1.45
- 16. वहीं, 3.24.3
- 17. ऋग्वेद -5.59.6
- 18. वहीं, 5.60.5
- 19. अथर्ववेद -- 19.41.1
- 20 मनुस्मृति 7.2
- 21. ऋग्वेद 6.16.31
- 22. वही, 1.412
- 23. अथर्ववेद 14.1.57
- 24 अवरूद्रमदीह्यव देवं त्रयम्बकम्।

...यथानो वस्य सस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद यथा व्यवसाययात्।। यजुर्वेद 3.58

हत्सु क्रतुं वरुणो...अदघात् सोम मद्रौ। यजुर्वेद 4.31

भद्रोमेऽसि प्रच्यवस्व ...मा त्वा वृका अधायवो विदन....श्येनो भूत्वा परापत। यजुर्वेद 4.34

- 25.पूषन तव व्रते वयं न रिव्येम कदाचन। स्तोतारस्त इहस्मसि ।यजुर्वेद 34.41
- 26.विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।

इन्द्रस्य युज्यः सखा। यजुर्वेद 6.4

- 27. तेन त्यक्तेन भुंजीथा:, असूर्या नाम ते.... अन्धेना तमसा। यजुर्वेद 40.1,3
- 28. ऋग्वेद-7.63.4
- 29. वही, 10.53.8
- 30. ऋग्वेद, 4.33.11
- 31. वही, 10.117.17
- 32. वही, 8.62.12
- 33.सामवेद-395
- 34. यजुर्वेद-40.1
- 35. पातंजल योग दर्शन: व्यास भाष्म 2.38
- 36. कल्याण: वेदकथाङ्क 444
- 37.अथर्ववेद: 3.30
- 38. पातंजल योग दर्शन: व्यासभाष्य 2.32
- 39. यजुर्वेद 40.1 ईशावास्योपनिषद ।
- 40.अथर्ववेद --16.30.16
- 41. शतहस्त समाहर, सहसहस्त संकिर। अथर्ववेद 3.34.5
- 42. कैवल्योपनिषद्

- 43. ऋग्वेद 6.9.4
- 44. बृहदारण्यकउपनिषद 2.4.5
- 45.यजुर्वेद 40.6
- 46. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेय तन्मे राध्यताम् इदमहमनृतात् सत्यतमुपैमि।। यजुर्वेद 1.5
- 47. सत्या नः सन्त्वाशिषः उपहूताः पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता हव्यतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा।। यजुर्वेद 2.10
- 48. यजुर्वेद 19.77
- 49. स्तुतामया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम् आयु प्राणं प्रजा पशु कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। महां दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् । अथर्ववेद 19.71.1
- 50. सा विट् सुवीरा मरूदिरस्तु। सनात्सहन्ती पुष्यन्ति नृम्णम् ।।ऋग्वेद 7.56.5
- 51. ऋग्वेद 8.33.19
- 52. स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो अथर्ववेद 1.314
- 53. असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता:। तारते प्रेर्त्याप्रेभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना: ।। यजुर्वेद 40.3
- 54.दानभोगोनास्तिस्त्रो गतयो भवन्ति वितस्य।

यो न ददाति न भुक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति।।नीतिशास्त्र 39

- 55. यजुर्वेद 30.3
- 56. असद् भूम्याः समभवत् तद्यामेतिमहद् व्य चः। तद् वै ततो विधूपायत प्रत्यक कर्तारमृच्छतु।।अथर्ववेद -4.196
- 57.अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रूद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पति देवतेन्द्रो देवता वरुणोदेवता।। यजुर्वेद - 14.20
- 58. यजुर्वेद-16.17
- 59.वही,16.34
- 60. ਕहੀ16.18
- 61. वही16.19
- 62. ऋग्वेद-16.19
- 63. यजुर्वेद -36.17



A Study on Benefits and Limitations of E-Learning

Uzma Mustafa

Sanjay Rungta Group of Institutions, Bhilai, Chhattisgarh, India Mrs. Anu Sengal

T & P Department, Sanjay Rungta Group of Institutions, Bhilai, Chhattisgarh, India

ABSTRACT

The present paper deals with possible positive and negative experiences of using online technologies in teaching and learning. Here, the word possible is central as completely generally applicable issues may hardly be traced. The aim of the paper is to highlight such advantages and disadvantages of online learning that tend to recur rather frequently a number of pedagogical situations and contexts.

Keywords: E-Learning, Online Technologies

INTRODUCTION

E-learning is newfound and the most popular form of distance education today. Within the past decade it has had a ponderous impact on postsecondary education and the trend is only flourishing. Online learning is catalyzing a didactic shift in how we teach and learn. There is a shift away from top-down lecturing and passive students to a more synergetic, collaborative verge in which students and instructor co-create the learning drill. E-learning has brought an unwavering mark in the lives of students and working professionals. It has inclined a liberty to take up additional courses along with their studies or job as per their aid. E-learning is not just an evolution of technology. It is part of a redefinition of how we as a species transmit knowledge, dexterity, and values to our tender millenniums of workers and students.

BRIEF HISTORY ABOUT E-LEARNING

Year 2012 was a transformative year in the track of education. Monumental online courses were laid on to students for preeminent education. Online learning is education that takes place over the Internet. It is often referred to as "E-learning" among other terms. E-learning systems are providing a room to manoeuvre for students who are studying and even to professionals who are working to take up extra courses. E-learning imparts the leisure to the students to study as per his/her commodious time. The technological advancements have helped to proffer students the online courses. It endows benefits to the working professionals to sustain in market amidst the time of recession. However, online learning is just one type of "distance learning" - the umbrella term for any learning that takes place across cistance and not in a traditional classroom.

ADVANTAGES OF E-LEARNING

Perhaps one of the most notable benefits of online education is the provision of a flexible learning schedule. The fact that more and more professionals are going back to school to further their studies is an indication of the effectiveness of online education. Online education allows for adjustable time schedules instead of forcing students to adjust their lives to predetermined times. Traditional classroom education involves requirements of fixed location and time. After location, the greatest impediment on learning is time for both students and instructors who must be available in line with the face-to-face traditional system of education.

1) Efficiency

E-Learning has a positive influence on an organization's profitability. It makes it easy to grasp the content and digest It results in improved scores on certifications, tests, or other types of evaluation. Higher number of students who achieve 'pass' or mastery' level. Enhanced ability to learn and implement the new processes or knowledge at the workplace. Help in retaining information for a longer time.

2) Accessibility of Time and space

E-learning materials are often used with a specific technology, or configuration, which can make them less available to people who have limited access capabilities or who are using non-standard computer equipment. Learners with disabilities using assistive technologies can benefit greatly from e-learning, not just because it allows distance and flexible learning activities, but also because it helps students with disabilities in accessing resources which would otherwise present significant barriers for them.

3) Affordability

In general, online learning is a more affordable option, as you'll get a high-quality education at a much lower cost due to the lower overhead needed to operate these programs. They do not have thousands of support staff and personnel to pay each month. This allows online colleges and universities to offer cheaper tuition rates compared to traditional brick-and-mortar colleges and universities Also, students do not have costs associated with commuting to a college campus.

4) Improved attendance

As it is very easy to attend classes online just the simple click on the link of classes students are getting engaged and attending online classes easily this is the reason that attendance has been. improved during covid-19 also, students don't have to prepare for the next day classes and be ready, it also saves the transportation charges for students withs ime.

5) Variety of learning

"Learning diversity' refers the infinite variety of life experiences and attributes a child brings to their formal learning at school. All students with diverse learning needs have a right to access a full and engaging education on the same basis as their peers.

6) Cost effective

Online courses are more accessible, easier to fit into a work schedule, and tend to be more cost- effective. These benefits aren't just for students, though. A study on online learning from ASU discovered that online courses can save institutions 3%-50% operating costs. It also includes the reduced cost of transportation.

7) Archival capability of information

Data archiving is the practice of identifying data that is no longer active and moving it out of production systems into long-term storage systems. Archival data is stored so that at any time it can be brought back into

servicePerhaps an uncommon, but popular form of archival storage is the LTO tape (Linear Tape-Open). It's mostly popular amongst the hardcore archivers, and that's because it's great for archiving hundreds of terabytes. LTO tapes have a super low cost-per- terabyte price point.

8) Ease to access the to huge amount of information

Information access is the freedom or ability to identify, obtain and make use of database or information effectively. Information access covers many issues including copyright, open source, privacy, and security. Examples, of types, of retrieval-based information service: archives, libraries, management information systems, museums, and records management.

9) Eliminate barrier of fear

Teach students to pay attention to how their body feels and what their mind is saying to them when they start to feel the fear creep up. Teach strategies to implement such as breathing techniques, stretching, taking a short walk, r relaxation techniques. In online classes it is easy for students to participate and answers the questions by teachers, there is no chance of someone staring at them or poking them for wrong answers, which made them pretty confident for answering an online classis this make students more attentive in class and help their studies.

10) Immediate update and usage of time

Immediate update of notes is beneficial for student to read whenever they want they can learn easily by accessing that notes and it saves the time for noting down in paper this way it saves time and also the immediate update helps them to stay updated with the syllabus taught.

11) Adaptability of technology

Students resistance to change doesn't allow them to adapt to the online learning environment, whereas it takes time for them to get accustomed to Course Management Systems (CMS) and the methods of computer-based education students are nowadays learning and adapting the technology of online learning very fast as it is the need of the hour also students of remote areas of countries have access to technology because of online learning.

DISADVANTAGES OF E-LEARNING

Only in a small group a person can develop properly. At school, students learn how to make friends, be patient, get rid of disappointment, and especially to compete. Competition between colleagues can be very stimulating and students will only benefit from it. Online learning cannot offer human interaction. Another disadvantage refers to the fact that online courses cannot cope. with thousands of students that try to join discussions. Also, online learning can be difficult, if it is meant for disciplines that involve practice. In conclusion, online learning should be seen as a complement and extension of classical forms of leaming. Not even the best online course can fully replace the personal contact with a teacher, or the human relationships that develop in a group. So, traditional classes shouldn't be replaced with online learning.

1) Sense of remote feeling

Study shows remote students face more stress, exhaustion than those in classroom. While just over half of all students surveyed said they were more stressed about school in 2020 than they had been previously, the issue was more pronounced among remote students

2) Technology issues

A lot of innovations, especially gadgets, tend to experience some errors. For example, many servers experience problems and have downtime. inconveniencing learning. Connection problems are also quite common. These challenges take time to be fixed.

3) Lack of interaction

Lack of Interaction Online learners miss out on face-to-face interaction. This inhibits their communication skills because they do not get to communicate with fellow students and faculty on a daily basis They often lack the social and academic skills to succeed at the next level.

REFERENCE

- 1. Clark, K. (2009). Online Education Offers Access and Affordability. Retrieved from education- offers-access-and-affordability Haynie, D. (Jun,2014). Experts Debate the Impact of MOOCs on Education.
- 2. Retrieved from education/articles/2014/06/06/experts-debate-the-impact-of-moocs-on- education Proulx, C. (Nov,2012). 5 Ways Technology Will Impact Higher Ed in 2013. Retrieved from will-impact-higher-ed-in-2013

Cite this Article

Uzma Mustafa, Mrs. Anu Sengal, "A Study on Benefits and Limitations of E-Learning", Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal (SHISRRJ), ISSN: 2581-6306, Volume 5 Issue 1, pp. 32-35, January-February 2022.

URL: http://shisrrj.com/SHISRRJ22514



Reforming The Un Security Council: Past and Future Lal Vineet Singh*, Dr. D. K. Bajpai**

*Research Scholar, Department of Political Science, MLB College of Excellence, Gwalior, MP, India.

ABSTRACT

The Security Council is the executive wing of The United Nations whose primary responsibility is to promote and maintain peace and security in the world. To this end the council has been entrusted with extensive powers by the UN charter. This makes the council the chief and foremost body of the UN. But council has not been able to fulfill its lofty goal as per the vision of its founders. The reason behind its failure has been attributed to among other things its very structure which has remained unaltered ever since its inception. Therefore there has been a demand to reform the Security Council so that it reflects the realities of the modern world and is effective enough to fulfill its great mandate which is to protect and promote peace in the world at large.

KEYWORDS: UN Charter, cold war, veto system, security council, P5, general assembly,

INTRODUCTION

The demand for reforming the council is nothing new but from 1993 the call for its reform has become more pronounced and emphatic in the new century. However from India's perspective the demand for the same has received a new impetus in recent times. India feels that it is the time UN Security Council is reformed in order to reflect the realities of the modern world rather than of the cold war era. India aspires to be a permanent member of the council and therefore is not against its expansion and also supportive of other legitimate candidates' inclusion. It's is not just India but several other nations who feel the same about it and are also willing to cooperate with India and other nations to make it happen. Efforts in this direction have been there but little has moved till now. This article attempts to underline these efforts and also why nothing substantial has been achieved in terms of reforms of the council.

The demand of reforming the UNSC is longstanding one and has surfaced every now and then before dyeing down finally due to numerous hiccups and challenges that come in the way of any such attempt. Undeterred the aspiring countries who wish to sit on the high table have attempted to join the council as permanent members sooner or later. Such demand and efforts keep getting made and of late several aspiring states have come together to form certain groupings in a hope that this will synergise their efforts and put a bigger pressure on the UN to reform.

There is a growing sense of disconent in emerging powers like India, Brazil, Japan and other nations against their absense from the high table and with the oligarchic nature of the council and its working. One odd member for its vested interest can stall an absolutely necessary action even

^{**}Research Supervisor, Department of Political Science, Govt SLP College, Morar, Gwalior, MP, India.

when the rest of the council has agreement. This system of decision making is hardly democratic and is responsible for paralysis of the UN and makes it pretty ineffective and unpredictable organization thereby diminishing its relevance and efficacy in restoring peace and order around the world. Over the years this has gone on to make the UN unable to discharge its mandate efficiently. This had serious repercussions on global security and human rights over the course of its history. If world wishes to change this scenario the most significant step would be to make structural changes in the council.

THE Security Council is the apex body of the United Nations entrusted with the task of securing peace and security around the world. That is why it is imperative that it goes on to be a bulwark for democracy, peace and security. However in spite of the enormous power that it enjoys it has failed to live up to the expectations of the world community. Great power politics, cold war, and veto system are primarily responsible factors for this. This is the reason why the need to modify the structure of the UNSC has been called upon time and again by voices both inside and outside of the un. This is why reforming the Security Council is all the more crucial. But that's not really a contentious issue as most of the states agree on the need to reform the council. What is really tough is to agree on what should be the composition of the council i.e. who are the countries which would compose the new council and what would be its form. Whether the veto system should prevail; how will the decisions be taken; will there be permanent and non permanent members and what should be there tenure. None of these has got any easy answers and there is want of any real agreement on any of these matters. The difficulty is not just that. Any initiative for modification of the current system has to undergo the same existing oligarchic system of decision making which explains little headway we have made in this direction. In the present article we shall delve into these matters in some detail and also try to figure out the ways in which all these reforms can be affected considering the obvious bottlenecks that exist today.

THE NEED TO REFORM- The need to reform the UNSC is not felt just because of the inadequate representation that it provides to the different continents or the new global reality of the 21st century but also the abject failure of UN to act promptly in crisis situations that warrant swift and decisive decision making as the current security council time and again gets paralyzed due to lack of consensus among the P5 due to the vestiges of cold war politics among the big powers leading to delayed and inadequate reaction to the crisis thereby losing precious time to act and mitigate the issue.

Along with that the requirement to have consensus among all these five permanent members (US, UK, FRANCE, CHINA and RUSSIA) and veto with each of them, it gets increasingly hard to settle any contentios issues as any one of them not agreeing is enough to derail the process and as interests of each of these nations is bound to be divergent at times and lack of any provision to bypass this in the charter makes it nearly impossible to resolve a deadlock and go ahead with the best course of action needed at the time to restore peace where decisive use of force maybe needed to check the tide of violence. All this leads to impairement of the council specially when it is needed most as only this body of UN is authorized to order use of force. This is the reason why

UN has failed many times to arrest the tide of violence and war from Africa to Gulf to East Europe and Asia a number of times.

PAST EFFORTS TO REFORM THE UNSC- The attempts to reform the council began in only 1993 in post cold war climate of easing of tensions and thaw in relations between rival nations also known as detente. Several aspiring nations came together to put collective efforts so as to get permanent seats in the council. The most prominent forum to press for the reforms was G4 comprising Brazil, Germany, India and Japan. They have been most consistent and vociferous about the need to reform the UNSC. However it was not the only one to lobby for reforms. There were a number of states who opposed the claims of this forum and instead put forth their candidature on a different ground. They have argued to give representation to all the regions of world instead of going for reforms of increase in the number of permanent members. This was named the Coffee Club. Later this group was also called 'Uniting for Consensus' and its members are Argentina, Italy, Pakistan and South Korea. Another lesser known group was of small nations called the Small 5(S-5) which also claimed their entry into the council.

All these groups are not working in unison and rather are working against the interests of each other thereby making it even more difficult to arrive at a consensus for reforms. The regional rivalry and conflict like between Indo-Pak and Brazil and Argentina has only damaged each others case before the UN as instead of joining forces and building confidence and consensus among the members of UN it merely enfeebles the overall attempt to reform the world body in a agreeable manner for the good of the world. Several chiefs of the un time and again come up with their own formulas for reforms. Important among those were Malaysian UN Ambassador who doubled as UNGA president Ismael Razali during 1996-97, who advocated the formula wherein new permanent members without veto and 4 non permanent members had to be included in the council. This proposal was blocked by countries like Italy and Mexico who resisted inclusion of Japan and Germany in the council.

Next after a decade of indecison, UN secretary general Kofi Annan too came up with his own plan of the expansion of the counci in 2003. He set up a high powered panel to give suggestion of reforms which submitted it's report in 2004 where it recommended addition of 6 permanent members into UNSC without a veto and 3 additional non permanent seats. it also suggested an alternative plan where 8 four year renewable seats and one non permanent seat will be introduced. These proposals were debated thoroughly without however reaching a consensus. The African union however decided the first suggestion to be its formal choice for SC reform. And that became its official policy.

THE WAY FORWARD- The major ground of the demand for reforms is the fact that council does not reflect the realities of the modern world and also it hardly adequately represents all the regions of the world with areas like Latin America and Africa being unrepresented and areas like Europe being overrepresented and much larger regions like Asia being underrepresented.

For changing any fundamental provisions of the UN, like the size, majority threshold, composition or the veto it is required to amend both article 23 and article 27. This can be done in two ways. Article 108 of the charter has provision wherein anysuch change can be introduced when two thirds of the UNGA members and all the P5 nations vote in favour. Alternatively article 109 can be

also invoked which requires the support of two third majority in UNGA and 9 members out of 15 in the security council to covene a conference of UN states where any amendment can be made if two third majority in UN General assembly and all the P5 approve. Article 109 has however not been invoked till now.

It maybe said that generally, a higher voting threshold in any political institution, such as a two-third instead of a simple majority rule reduces chances of a winning coalition being made. It increases in inertia or "status quo bias". Even after repeated attempts to change the status quo has once in a while gained traction as their is a broad understanding in the UN that reforms are overdue however given these provisions of the Charter even after securing two third majority in the general assembly any move towards changing the composition of the council inevitably stonewalls into the veto power of the P5. This translates into a unresolvable crucible as no matter how much consensus is built in the UN about everything just one P5 member can veto the move and bring all effort to naught.

To deflect any criticism for being anti reform the P5 have very deftly gone for carrying procedural day to day change in the working of UN instead of going for the much needed structural reform. They tried to improve efficiency and transparency in the body just as to avoid the issue of overhaul of the council which they have been reluctant always.

One of the main bones of contention for any proposal for reform has been on the name of the new entrants. There is no consensus on the names or the criterion of selection of new entrants. Several attempts from both inside and outside of the UN has been made although with little success. In spite of the above mentioned bottlenecks in the path of reforms the regional and inter state rivalry as well as geopolitical considerations play the spoilsport in finding a mutually agreeable middle ground by the aspirant nations.

CONCLUSION- Despite making some headway into the reforming of the UNSC there exists a serious lack of consensus and trust among the members of the UN and also among those aspiring for the permanent seat in the council. The biggest hurdle is the system of veto alonwith the institutional hurdle in the form of UN charter with too high a threshold for any change. Hence the original design of UN itself is anti reform due to path dependency inherent in it. The P5 have been reluctant to let go their veto power or allow any new member to share that power and apart from lip service hardly willing to change the status quo as they stand in a privileged position in the world order due to the permanent membership of security council. Despite the gloomy prospects of any positive development in this there is a glimmer of hope because there is one instance when a new member was added into the P5 which is republic of China replacing Taiwan in 1971. So there is a precedence there where some change to the membership of P5 was done in the past so it can also happen again in the future if all the members realize the pressing needs of reforming the the UN and especially UNSC has come now and the world cant wait for this anymore. Therefore all the member need to rise to the occasion and work around the issues and constructively come to an agreeable solution which is good for the world community. If this has happened once in the past it can surely happen again.

REFERENCES

- 1. Ade-Ibijola AO. The United Nations Security Council Reforms and The Permanent Five Challenge: A Historical Perspective. J Int Stud. 2020;11:131-140. doi:10.32890/jis.11.2015.7967
- 2. Mangapul JH. REFORMING THE UNITED NATIONS: REALITIES, EXPECTATIONS, AND THE WAY FORWARD. Padjadjaran J Int Law. 2019;3(1). doi:10.23920/pjil.v3i1.323
- 3. Gould M, Rablen MD. Equitable representation in councils: theory and an application to the United Nations Security Council. Public Choice. 2016;169(1-2). doi:10.1007/s11127-016-0368-x
- 4. Schaefer K. Reforming the United Nations Security Council: Feasibility or Utopia? Int Negot. 2017;22(1). doi:10.1163/15718069-12341348
- 5. Reform of the Security Council and its Implications for Global Peace and Security. J Mil Strateg Stud. 2004;7(1).
- 6. RISING BRICS: A PATH TO MULTIPOLAR WORLD REALITY? RISING BRICS A PATH TO MULTIPOLAR WORLD REALITY?. 2018;9(1). doi:10.24411/2221-3279-2018-00008
- 7. Kalyadin AN. What reform does the unsc need? World Econ Int Relations. 2016;60(7). doi:10.20542/0131-2227-2016-60-7-48-59
- 8. Petrone F. BRICS and Global Governance: Will the Grouping be able to Reform the United Nations Security Council? Int Stud. 2021;58(3). doi:10.1177/00208817211029409
- 9. de Paula FR, de Albuquerque MRA. UN Security Council reform: the political and the desire to be seized of the matter. Sul Glob. 2020;1(1).
- 10. Gould M, Rablen MD. Reform of the United Nations Security Council: equity and efficiency. Public Choice. 2017;173(1-2). doi:10.1007/s11127-017-0468-2
- 11. Kaura V, Singh C. India and the Geopolitics of UNSC Permanent Membership. Strateg Anal. 2021;45(4). doi:10.1080/09700161.2021.1938943
- 12. Maseng JO, Lekaba FG. United Nations Security Council reform and the dilemmas of African continental integration. African Secur Rev. 2014;23(4). doi:10.1080/10246029.2014.948896
- 13. Winther BZ. A Review of the Academic Debate about United Nations Security Council Reform. Chinese J Glob Gov. 2020;6(1). doi:10.1163/23525207-12340047
- 14. Hosli MO, Dörfler T. Why is change so slow? Assessing prospects for United Nations Security Council reform. J Econ Policy Reform. 2019;22(1). doi:10.1080/17487870.2017.1305903
- 15. Mahbubani K. Resolving the Dilemma of UNSC Reform. Survival (Lond). 2021;63(2):57-62. doi:10.1080/00396338.2021.1905983



वैदिक साहित्य में वर्णित ईश्वर का स्वरूप

प्रो0 विनय कुमार विद्यालकार

प्रोफेसर संस्कृत विभाग, डीन शिक्षा प्रo संकाय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। आरती चौधरी

शोधार्थी, योग विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर।

सारांशिका: प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य एवं आर्ष ग्रन्थों में वर्णित ईश्वर के स्वरूप का विवेचनात्मक अध्ययन की चर्चा की गयी है। ईश्वर के अर्थ एवं स्वरूप का वर्णन वेद—उपनिषद्, दर्शन एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदि आर्ष ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों में जहाँ जीव (जीवात्मा) के लिए 'पुरुष' शब्द को प्रयुक्त किया गया है, तो वहीं ईश्वर को 'परम पुरुष' की संज्ञा से सुशोभित किया गया है। ईश्वर कोई जातिवाचक शब्द न होकर एक गुणवाचक शब्द है जिसमें ईश्वर में निहित गुणों का समावेश होता है। ईश्वर के गुणों के आधार पर उसका मनन—चिन्तन एवं स्मरण किया जाता है। इस जगत में जो कुछ चलायमान है, वह उस ईश्वर द्वारा छाया हुआ है। इस विशाल सृष्टि का स्वामी एवं समस्त ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण ईश्वर को भगवान कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट किया गया है कि इस संसार में जो—जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उन सभी में ईश्वर का तेज विद्यमान है। योगदर्शनकार महर्षि पतंजिल उपदेश करते हैं कि क्लेश, कर्म, विपाक और आशय— इन चारों से जो सम्बन्धित नहीं है, जो समस्त पुरुषों से उत्तम है, वह ईश्वर है। उस ईश्वर का वाचक प्रणव है। इस प्रणव का जप करने से मनुष्य को चेतना का अधिगम अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और वह अन्तरायों अर्थात् सांसारिक दु:ख—क्लेशों से मुक्त होकर ईश्वरीय आनन्द में लीन होने लगता है।

कूट शब्द : वेद, उपनिषद्, गीता, ईश्वर, भगवान, परमात्मा, परम पुरूष, पुरूष, प्रणव।

इस संसार में ईश्वर के अर्थ एवं स्वरूप को लेकर अनेक मत—मतान्तर हैं। वैदिक साहित्य में ऋषियों द्वारा ईश्वर के स्वरूप की व्याख्या भिन्न—भिन्न दृष्टिकोण से की गयी है। ईश्वर के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करने हेतु वेद—उपनिषद् आदि ऋषियों द्वारा प्रतिपादित ग्रंथों में विस्तृत वर्णन किया गया है। ऋषियों, महापुरुषों एवं विद्वानों द्वारा इस गूढ़ विषय को स्पष्ट करने हेतु अपने विचार एवं मतों को प्रतिपादन अपने—अपने दृष्टिकोणों से किया गया है। ईश्वर के अर्थ एवं स्वरूप पर चिन्तन करने से पूर्व हमें यह समझना चाहिए कि जिस प्रकार आत्मसत्ता रूपी चेतना के अभाव मानव शरीर संचालित नहीं हो सकता है, ठीक उसी प्रकार ईश्वरसत्ता रूपी परम चेतना के बिना इस विशाल सृष्टि के संचालन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अर्थात् ईश्वर के रूप में परम चेतन तत्व इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन कर रहा है।

वेदों—उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रंथों, गीता व दर्शन आदि शास्त्रों में जहाँ जीव (जीवात्मा) के लिए 'पुरुष' शब्द को प्रयुक्त किया गया है, तो वहीं ईश्वर को 'परम पुरुष' की संज्ञा से सुशोभित किया गया है। अर्थात् पुरुषों में श्रेष्ठ परम चेतना से युक्त पुरुष विशेष ही ईश्वर है। इस प्रकार आत्माओं में श्रेष्ठ आत्मा (चेतना) को परमात्मा के नाम से जाना जाता है। शास्त्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ईश्वर कोई जातिवाचक शब्द न होकर एक गुणवाचक शब्द है जिसमें ईश्वर में निहित गुणों का समावेश होता है। ईश्वर के गुणों के आधार पर उसका स्मरण किया जाता है

और ईश्वर के पर्यायवाची शब्द उसके गुणों को स्पष्ट करते है। ईश्वर शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ईशावास्योपनिषद् में उपदेश किया गया है—

ओ३म् ईशा वास्यमिद् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः स्यिस्विद्धनम्।।

(ईशावास्योपनिषद् 01)

इस जगत में जो कुछ चलायमान है, वह उस ईश्वर द्वारा छाया हुआ है। उसका त्यागभाव से प्रयोग कर। लालच न कर। यह किसका है ?¹ यहां पर सम्पूर्ण जगत ईश्वर के द्वारा छाया हुआ अथवा ईश्वर से आच्छादित कहा गया है। इस मंत्र में ईश्वर से अभिप्रायः सम्पूर्ण जगत में विद्धमान चेतन तत्व से लिया गया है और ईश्वर की विशेषता अथवा उसकी महानता सम्पूर्ण सृष्टि को धारण करने के रुप में वर्णित की गयी है। उस महान ईश्वर का स्वरुप कैसा है ? इस प्रश्न के उत्तर को स्पष्ट करते हुए पुनः उपनिषद् में कहा गया है—

स पर्यगाच्छुकक्रमकायमव्रणममस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद्धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

(ईशावास्योपनिषद् 08)

वह (परमात्मा) सब स्थान पर पहुँचा हुआ, शुद्ध, बलवान, शरीर-रिहत, अक्षत (घायल न किया जाने योग्य), स्नायु से रिहत, निर्मल, पाप से अबद्ध है। महान ज्ञानवान मनीषी (सर्वज्ञ और मनीषी), सबसे ऊपर (सर्वोत्कृष्ट), स्वयं ही प्रकट होने वाला, जो कुछ जैसा है उसे वैसा ही प्रकट करने वाला और अनादि प्रज्ञाओं (जीवात्माओं) के लिए जो जैसा है उसे वैसा ही उसके साथ व्यवहार करने वाला है, अर्थात् न्यायकर्ता है। ईश्वर को भगवान शब्द से भी पुकारा जाता है। भगवान शब्द की उत्पित्त भग और वान के मिलने से होती है। भग का अर्थ सृष्टि और वान का अर्थ स्वामी होता है। इस प्रकार जो इस सृष्टि का स्वामी है उसे भगवान कहा जाता है। भगवान शब्द भग धातु से होती है। भग से अभिप्रायः ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य से होता है और वान का अर्थ धारण करना होता है। इस प्रकार इन सभी श्रेष्ट गुणों का धारण करने वाली सत्ता को भगवान के नाम से पुकारा जाता है। ईश्वर के दिव्य स्वरुप का वर्णन करते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में उपदेश किया गया है—

अहंमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। अहमादिच्य्र मध्यं च भूतानामन्त एव च।।

(गीता 10 / 20)

हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतो का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूँ।³ इस प्रकार यहां पर ईश्वर के सर्वव्यापक स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस संसार की प्रत्येक श्रेष्ठ और उत्तम पदार्थ ईश्वर की ही कृधि हैं। इसका उपदेश करते हुए कहा गया है—

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः। गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्वानां कपिलो मुनिः।।

(गीता 10 / 26)

में सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारद मुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ। यहां पर उपदेश किया गया है कि इस संसार में जो—जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शिक्तयुक्त वस्तु है उन सभी में ईश्वर का तेज विद्यमान है। सर्वत्र विद्यमान ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजिल उपदेश करते हैं—

क्लेशकर्मविपाकाशयैपरामृष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः।

(पा0 यो0 सू0 1/24)

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय— इन चारों से जो सम्बन्धित नहीं है, जो समस्त पुरूषों से उत्तम है, वह ईश्वर है। इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि सामान्य पुरुष अर्थात् मनुष्य अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों के बंधन में बंधा रहता है। इसके साथ—साथ मनुष्य पुण्य, पाप, पुण्य और पाप मिश्रित तथा पुण्य—पाप से रहित अर्थात् निष्काम कर्म नामक चार प्रकार के कर्मों का कर्ता है। मनुष्य कर्मों का विपाक (फलों) का भोग करता है और कर्मों से जो संस्कार बनते हैं, उन संस्कारों से युक्त रहता है परन्तु इन सभी से मुक्त पुरूषों में विशेष पुरूष ही **ईश्वर** है। ईश्वर का क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से न कभी सम्बन्ध था, न है और न होने वाला है। यही नहीं साधारण पुरुषों से श्रेष्ठ और बंधनों से मुक्त ईश्वर विशेष है। इसलिए योग दर्शनकार महर्षि पतंजिल ईश्वर को 'पुरुष विशेष' पद से सम्बोधित करते हुए उपदेश करते हैं—

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्।।

(पा0 यो0 सू0 1/25)

अर्थात् उस ईश्वर में सर्वज्ञता की बीज और ज्ञान निरितशय है। ईश्वर के अन्य महत्वपूर्ण गुण प्रकाश डालते हुए महिष्व द्वारा उपदेश किया गया है कि मनुष्य चाहे कितनी ही ज्ञानी क्यों न हो किन्तु फिल भी वह अल्पज्ञ ही रहता है और उसके ज्ञान का क्षय होता रहता है किन्तु इससे भिन्न ईश्वर में सर्वज्ञता का गुण विद्यमान है अर्थात् वह सब कुछ जानने वाला है और ईश्वर के ज्ञान का कभी क्षय नहीं होता है अपितु वह ज्ञान निरितक्षय है। वह पुरुषों में परम आत्मा अर्थात् परमात्मा सभी ज्ञानों का मूल स्रोत है। इसे स्पष्ट करते हुए आर्य समाज के संस्थापक महिष्व दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के प्रथम नियम में उपदेश करते हैं— सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सका आदि मूल परमेश्वर है। सब सत्य विद्याओं का आदि मूल होने और सर्वज्ञ होने के कारण ईश्वर सभी गुरूओं का भी गुरू है। अर्थात् इस संसार में सबका गुरू ईश्वर ही है। इस महान गुरु के लिए परम शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह परम गुरू ईश्वर काल से परे है अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य काल के प्रभाव से मुक्त है। काल का प्रभाव मनुष्य के बल, शिक्त, ज्ञान और क्षमता आदि को प्रभावित करता है किन्तु ईश्वर काल के प्रभाव से मुक्त रहता हुआ सदैव एक समान बना रहता है। ईशावास्योपनिषद् में उपदेश किया गया है—

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुद्च्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

अर्थात् परमात्मा सभी प्रकार से सदा, सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परब्रहम से पूर्ण ही है क्योंकि यह पूर्ण उसी पूर्ण से ही उत्पन्न हुआ है और उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है। ईश्वर के अन्य गुणवाचक शब्दों पर प्रकाश डालते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज के दूसरे नियम में उपदेश करते हैं— ईश्वर सिच्चदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशिक्तमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है उसी की उपासना करने योग्य है। ईश्वर को किस नाम से स्मरण किया जाये ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि पतंजिल उपदेश करते हैं—

तस्य वाचक प्रणवः।

(पा0 यो0 सू0 1/27)

उस ईश्वर का वाचक प्रणव है। अर्थात् ईश्वर का प्रमुख बोधक या ज्ञान कराने वाला शब्द प्रणव (ओउम्) है। प्रणव के महत्व पर प्रकाश डालते हुए मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। उपनिषद्कार का भाव है कि प्रणवरूपी धनुष के द्वारा मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार करने में सक्षम हो सकता है। मानव जीवन में प्रणव उच्चारण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए महर्षि पतंजिल उपदेश करते है कि प्रणव का जप करते हुए ईश्वर के श्रेष्ठ गुणों का मनन—चिन्तन करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को चेतना का अधिगम अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है और उसके अन्तरायों अर्थात् कष्टों का नाश होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ईश्वर का जप और ध्यान करने पर श्रेष्ठ ईश्वरीय गुणों का विस्तार मनुष्य के व्यक्तित्व में होने लगता है और मनुष्य क्लेशों एवं कष्टों से मुक्त होकर ईश्वरीय आनन्द के साथ जुड़ने लगता है। ईश्वरस्तुति प्रार्थना उपासना मंत्र में कहा गया है—

यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(यजुर्वेद 25 / 13)

अर्थात् जो आत्मज्ञान का दाता और शारीरिक तथा आत्मिक बल का देने वाला है, सम्पूर्ण मनुष्य जिसकी उपासना करते है, विद्वान लोग जिसके शासन को मानते हैं, जिसका आश्रय ही मोक्ष सुख देने वाला है और जिसके आश्रय का अभाव अर्थात् भिवत न करना मृत्यु अर्थात जन्म—मरण के चक्र का हेतु है, हम उस सुख स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भिवत अर्थात आज्ञापालन में तत्पर रहें। इस प्रकार ईश्वर सम्पूर्ण सुख, बल और आत्मज्ञान को प्रदान करने वाला अनादि तत्व है जिसके सानिध्य से मनुष्य आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होने लगता है।

सन्दर्भ सूची

- 1. ईश केन कठ उपनिषद्, भाष्यकार पं० गुरूदत्त , पृष्ठ संख्या 12
- 2. ईश केन कठ उपनिषद्, भाष्यकार पं0 गुरूदत्त , पृष्ठ संख्या 21
- 3- श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 132
- 4- श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 134
- 5- योग दर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या–26
- 6- सन्धा अग्निहोत्र, सम्पादक डा० दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या—217
- 7- कल्याण उपनिषद् अंक, गीता प्रेस गोरखपुर,, पृष्ठ संख्या– 459
- 8- सन्धा अग्निहोत्र, सम्पादक डा० दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या—217
- 9- योग दर्शन, हरिकृष्णदास गोयन्दका, पृष्ठ संख्या–27
- 10-सन्धा अग्निहोत्र, सम्पादक डा० दिलीप वेदालंकार, पृष्ठ संख्या–68



वर्तमान व्यवहारिक जीवन में यम की उपादेयता

दीपा आर्या

शोधार्थी, निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

साराश-सम्पूर्ण विश्व को योगविद्या भारतीय ऋषि परम्परा की अनुपम भेंट हैं। जहाँ प्राचीन काल की ऋषि परम्परा में योग चेतना की जागृति तथा मोक्षमार्ग के साधना रूप में भूमिका निभाता था। वही योग साधना के विभिन्न आयाम (हठयोग,अष्टांगयोग,मन्त्रयोग,भिक्तयोग,) इत्यादि वर्तमान समय में व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक, स्वास्थ्य पर नैतिक जीवन में अपनी सकारात्मक भूमि प्रदान कर सकते हैं यदि वर्तमान समय में व्यक्ति विभिन्न आयामो में से केवल अष्टांग योग के अर्न्तगत यम का भी पालन कर लें तो व्यक्ति का जीवन सरल,सुखी व चितामुक्त हो जायेगा परन्तु आज का व्यक्ति तनाव युक्त व अभावमय जीवन यापन कर रहे हैं जिसका मुख्य कारण व्यक्ति के जीवन में योग न होने से उसकी जीवन शैली विकृत हो चुकी हैं। जिससे वह शारीरिक एवं मानसिक, बौद्धिक सामाजिक, भावनात्मक, स्वास्थ्य का भौतिक जीवन में अपनी सकारात्मक भूमि प्रदान नहीं कर रहे हैं। और व्यक्ति को अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा हैं। अगर व्यक्ति अपनी जीवन शैली में यम का अनुसरण करें, तो वह अपने जीवन को सुखी बनाकर उस परमानंद से जुड़ सकता हैं जो सभी दु:खों की निवृत्ति करता हैं,पातंजल योग सूत्र में बताये गये यम हमें नैतिकता का मूल्य प्रदान करते है, कि हमारे लिए क्या आवश्यक है क्या अनावश्यक है व जीवन को सरल कैसे बनाते हैं यदि अपने जीवन में यम का अनुसरण किया जाये तो व्यक्ति कर्म को अर्जित कर पाएगा। और अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। और छोटी छोटी बातो से विचलित नहीं होएगा। वह अपने साथ समाज के विकास में भी सहयोग कर पायेगा। उसके अष्टांग योग के यम का अनुसरण करना आवश्यक है जो इसको एक व्यवहारिक जीवन यापन करने व एक सभ्य समाज का नागरिक बनाने में मदद करते हैं।

मूल शब्द-प्राचीन, वर्तमान ,अष्टांग, व्यक्ति,यम।

प्रस्तावना—मनुष्य एक समाजिक प्राणि हैं और समाज में रहकर यदि व्यक्ति सुख में जीवन जीना चाहता हैं मान—सम्मान व प्रतिष्ठा को प्राप्त करना चाहता है तो उसे अष्टांग योग के प्रथम अंग का पालन करना होगा। यम अर्थात् संयम योग दर्शन के अनुसार अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपिरग्रह यह पांच यम कहलाते हैं। जो व्यक्ति सदैव सत्य बोलते हैं हिंसा आदि कर्मों को नहीं करते हैं उनका समाज में सभी आदर और सम्मान करते हैं।

पातंजल योग दर्शन में महर्षि पतंजलि जी ने योग के आठ अंग बताएं हैं।

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ।"(पातंजल योग सूत्र 2/29)

यम ,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, तथा समाधि।

जिसमें प्रथम अंग यम हैं, यमों की संख्या 5 हैं।

- 1. अहिंसा
- सत्य
- **3**. अस्तेय
- 4. ब्रह्मचर्य
- 5. अपरिग्रह

यम शब्द की व्युत्पत्ति यमु बन्धने धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से होती हैं जिसका अर्थ हैं बांधने वाला या नियंत्रित करने वाला।

क्योंकि अहिंसा आदि यम मनुष्यों के उनके अशुभ व्यवहारों पर रोक लगाते हैं इसलिए इन्हें यम कहा जाता हैं। यम के पालन करने से व्यक्ति का वाह्य आचरण संबंधी सुधार होता हैं।

यम का स्वरूप -

"देह इन्द्रियेषु वैराग्ये यम इति उच्यते बुधैः"।।

(त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद -28)

अर्थात् शरीर एवं इन्द्रियों के प्रति सभी तरह से वैराग्य भावना ही यम हैं।

" तत्र यम इति उपशमः सर्वेन्द्रियजय आहार निद्रा शीतवातापजयश्च। एवं शनैः शनैःसाधयेत्।। (सिद्ध सिद्धान्त पद्धति 2/32)

यम का अर्थ हैं उपशम अर्थात् शांति सब इंन्द्रियों पर विजय,आहार, निद्रा शीत और धूप पर विजय ।

यम के भेद

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार -

"बम्ह्चर्यं दयाक्षान्तिर्दानं सत्यमकल्पता। अहिंसा अस्तेय माधुर्ये,दमश्चेति यमाः स्मृताः।। (याज्ञवल्क्य स्मृति 3/3/3)

- 1. बम्हचर्य
- **3.** दान
- 4. सहनशिलता
- **5**. सत्य
- 6. अपरिग्रह
- 7. अहिंसा

- 8. अस्तेय
- 9. माधुर्य
- 10. दम

यह 10 प्रकार के यम याज्ञवल्क्य स्मृति में कहे गए हैं।

शांडिल्य उपनिषद में यम के भेद-

"अंहिसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्य दयाजपक्षमा।

धृतिमिताहार शौचानिचेति यमा दशाः दशाः।। (शांडिल्य उपनिषद अध्याय 1)

- सत्य
- अस्ते
- 3. ब्रह्मचय
- **4**. दय
- **5.** जप
- 7. धृति
- 8. .मिताहार
- 9. शौच।

वशिष्ठ संहिता के अनुसार यम के भेद

"व्युपति –यमन्ति निवर्तयन्तीति यमाः ।"

अर्थात् जो अवांछनीस कार्यो से निवृत कराये, वे यम हैं।

"अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य दयार्जवम्। क्षमा धृतिर्मिताहार,शोच ं(वशिष्ट संहिता 1/38)

चैव यमा दश " 2 अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य दया आर्जव क्षमा धृति मितहार शौच ये दश यम हैं।

सूत्र यह 10 प्रकार के यम विशष्ट संहिता में बताये गये हैं।

पातंजल योगसूत्र में 5 यमों का वर्णन किया गया हैं।— "अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः"।। (पातंजल योग सूत्र 2/30)

- अहिंसा
- सत्य
- 3. अस्तेय
- 4. ब्रह्मचर्या
- 5. अपरिग्रह

इन पांचों को महर्षि पतंजलि जी ने यम की संज्ञा दी हैं उपरोक्त यम जब किसी जाति देश काल और निमित्त की सीमा से रहित सार्वभौम होने पर महाव्रत कहलाते हैं।

"जाति देशकाल समयानवच्छिन्नाः सर्वभौम महाव्रतम्"।। (पातंजल योग सूत्र 2/31)

अहिंसा का स्वरूप— मन क्रम वचन से किसी भी प्रकार की हिंसा न करना अहिंसा कहलाता हैं। व्यक्ति के अंदर हिंसा का भाव एक विकृत भाव हैं जो ईर्ष्या द्वेष और क्रोध जैसे मानसिक विकारों के कारण जन्म लेती हैं। "तंत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।

उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तित्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते"।।(व्यास भाष्य 2/30)

उन पांचों यमों में सब प्रकार से मन वाणी और शरीर से सब कालों में सभी प्राणियों को पीड़ा न देना, पीड़ा देने की भावना भी न रखना एवं वैर की भावना ना करना अहिंसा हैं।

अहिंसा मुख्यतः तीन प्रकार से होती हैं।

- 1-शारीरिक अहिंसा -शरीर के द्वारा किसी को कष्ट पीड़ा न देना ही शारीरिक अहिंसा कहलाता हैं।
- 2—वाचिक अहिंसा— अपनी वाएगि द्वारा किसी को भी आघात न पहुँचाना सबसे मधुर वचनों ही संवाद करना वाचिक अहिंसा कहलाती हुं। वाचिक हिंसा में व्यक्ति दूसरों के प्रति निष्ठुर वचन असत्य भाषण से उन्हें पीड़ा पहुंचाताहैं इन सभी का अभाव ही वाचिक अहिंसा कहलाता हैं।
- **3—मानसिक अहिंसा** साधक के मन में ही किसी भर प्राणी मात्र के प्रति द्वेष,वैरभाव व पीड़ा देने तक का भाव ही उत्पन्न ना होना मानसिक अहिंसा कहलाती हैं।

यदि हम अपने जीवन में अहिंसा का पालन करते हैं तो उसका फल बतलाया गया हैं कि

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।।(पातंजल योग सूत्र 2/35)"

अर्थात् यदि हम अपने जीवन में अहिंसा का पालन करते हैं तो हमारे भीतर प्राणी मात्र के प्रति वैरी की भावना दूर हो जाती हैं।

"सत्य का स्वरूप सत्यं यथार्थे वाड्.गमनसे"।।(व्यास भाष्य 2/30)

अर्थात् जो पदार्थ जैसा हो उसके संबंधमें वैसे ही वाणी और वैसे ही मन का होना सत्य कहलाता हैं अर्थात् इंद्रिय और मन से जैसा देखा,सूना या अनुभव किया गया हैं उसे वैसे ही कहना सत्य कहलाता हैं।

"सत्यंब्रूयात प्रियं ब्रूयात न ब्रयात सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानृतं ब्रयात्, एष धर्म सनातनः।।(मनु 4/138)

वक्ता को प्राणी मात्र के लिए हितकर वाणी बोलनी चाहिए अप्रिय सत्य बोलने का निषेध किया गया हैं यदि मिथ्या भाषण से किसी के प्राणों की रक्षा होती हैं तो इस मिथ्या भाषण से पाप नहीं लगता यदि हम सदैव सत्य का पालन करते हैं सदैव सत्य बोलते हैं उसके द्वारा हमारे वचनों में कार्य की सिद्धि होती हैं।

"सत्यप्रतिष्ठायां क्रिया फल आश्रयत्वम्"(पातंजल योग सूत्र 2/36)

3.अस्तेय –स्तेय के अभाव को अस्तेय कहते स्तेय का अर्थ हैं–चोरी करना ।

"स्तेयम शास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्"।। (व्यास भाष्य 2/30)

शास्त्रोक्त विधि के बिना किसी अन्य के द्रव्यों का स्वीकार करना स्तेय कहलाता हैं। छल से, घोखे से,झूट बोलकर,बेईमानी से किसी भी प्रकार से पर द्रव्य को ग्रहण करना स्तेय कहलाता हैं। इसका प्रतिषेध ही अस्तेय हैं।

"अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम्"।।(पातंजल योग सूत्र 2/37)

अस्तेय की प्रतिष्टा होने पर सभी रत्नों की प्राप्ति होती हैं।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हैं ब्रह्मचर्य

परमात्मा में विचरना सदैव ब्रह्म का चिंतन करना।

"ब्रम्ह्चर्य गुप्तइंद्रियस्य उपस्थस्य संसमः"।।(व्यास भाष्य 2/30)

मन,वाणी तथा शरीर से मैथुन का परित्याग कर वीर्य की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य हैं। "ब्रह्मचर्य "सदा रक्षेदष्टधा मैथुनं पृथक रमरणं कीर्तनं केलिः हप्रेक्षणं गुह्यभाषणं।

"संकल्पो अध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेव च एतन्मैथुनष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः"(दक्ष स्मृति 7/31/-32) ब्रह्मचर्य की सदा रक्षा करें आठ प्रकार के मैथुनों से पृथक रहें।

- 1. स्त्री का स्मरण।
- 2. उसकी चर्चा करना।
- 3. उसके साथ क्रीडा करना।
- 4. उसे देखते रहना।
- 5. उसके साथ गुप्त भाषण करना।
- 6. मन में स्त्रियों के विषय में विचार करना।
- 7. उसके साथ संभोग का विचार करना।

संभोग के हेतु प्रयास करना।

ये आठ प्रकार के मैथुन कहे गए हैं इन सब का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य हैं।

यदि हम अपने जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उसका फल हैं सामर्थ्य की प्राप्ति होना-"

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"।।(पातंजल योग सूत्र 2/38)

अपरिग्रह न परिग्रहः इति अपरिग्रहः।

परिग्रह अर्थात् संग्रह करना इकट्ठा करना आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना ही अपरिग्रह कहलाता हैं।

विषयाणां अर्जन रक्षण क्षयसङ्ग हिंसा दोष दर्शनात्

अस्वीकरणम् अपरिग्रहः"।। (व्यास भाष्य 2/30)

विषयों(भोग्य पदार्थों) को अर्जन, रक्षण, संग और हिंसादि दोषों को देखने से उनको स्वीकार न करना अपरिग्रह हैं।

अपरिग्रह के पालन से पूर्व जन्मो का बोध हो जाता हैं-

"अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथन्ता संबोधः"।। पातंजल योगदर्शन(2/39)

निष्कर्ष-

यम प्राचीन काल में लोगों के जीवन में था व्यक्ति योगमय जीवन यापन करते थे। इसके अभ्यास से मानसिक एवं बौद्धिक विकारों से निवृत्ति होती हैं। तथा अनेक सूक्ष्म केन्द्रों का जागरण भी होता हैं जैसे की पतंजिल कहते हैं कि योगाडानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः (2/28)

अर्थात् योग के अंगो का अनुष्ठान करने पर अशुद्धि का क्षय होता हैं। तथा ज्ञान का प्रकाश विवकेख्याति पर्यन्त होता हैं। परन्तु वर्तमान समय में व्यक्ति योग विषय के केवल पढ़ रहे हैं उसका उपयोग अपने जीवन व दिनचर्यों में प्रयोग नहीं करते इसलिए व्यक्ति नाना प्रकार के दुखो को भोग रहा हैं। जब ये यम हमारे आचरण व जीवन शैली में आते हैं उसके उपरांत ही योग के अन्य अंगों का प्रतिफल भी प्राप्त होता हैं। अन्यथा बिना यम के अनुष्ठान के किसी भी साधना का लाभ प्राप्त करना सहज नहीं हैं।

संदर्भ गैंथ सूची -

- 1-.पातंजल योग दर्शन(2 / 29) -गीता प्रेस गौरखपुर
- 2-.त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद -(28)पं• श्रीराम शर्मा आचार्य (उपनिषद साधना खण्ड)
- 3- सिद्ध सिद्धान्त पद्धति 2/32-परमहंसस्वामी अनन्त भारती (चौखम्बा ओरियन्टालिया)
- 4—शांडिल्य उपनिषद (अध्याय 1)—स्वामी महेशानंद गिरी जी (श्री दक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन
- 5-वशिष्ट संहिता (1/38)-
- 6-पातंजल योग दर्शन(2/30) -गीता प्रेस गौरखपुर
- 7-पातंजल योग दर्शन(2 / 31) -गीता प्रेस गौरखपुर
- 8-व्यास भाष्य 2/30-सतीश आर्य (वेद योग चैरिटेबल ट्रस्ट)
- 9-पातंजल योग दर्शन(2 / 35) -गीता प्रेस गौरखपुर
- 10-मनुस्मृति(4 / 138)-डॉ॰ भेषराज शर्मा (हंस प्रकाशन जयपुर)
- 11- व्यास भाष्य(2 / 30)-सतीश आर्य (वेद योग चैरिटेबल ट्रस्ट)
- 12- पातंजल योग दर्शन(2 / 37) -गीता प्रेस गौरखपूर
- 13—व्यास भाष्य(2 / 30)—सतीश आर्य (वेद योग चैरिटेबल ट्रस्ट)
- 14—दक्ष स्मृति (७ / ३१—३२)—डॉ• ईश्वर लाल प्रजापति(राही प्रकाशन)
- 15-पातंजल योग दर्शन(2/38) -गीता प्रेस गौरखपुर
- 16— व्यास भाष्य(2 / 30)—सतीश आर्य (वेद योग चैरिटेबल ट्रस्ट)
- 17— पातंजल योग दर्शन(2/39) –गीता प्रेस गौरखपुर
- 18-योग दर्शन (2/28) नन्द लाल दशोला



व्यक्तित्व विकास में यम-नियम की भूमिका का विवेचनात्मक अध्ययन

डाँ० मलिक राजेन्द्र प्रताप

विभागाध्यक्ष, योग विभाग, एम० बी० राज० रना० महा०, हल्द्वानी (नैनीताल) सूरज सिंह शोधार्थी, योग विभाग, निर्वाण विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांशिका : प्रस्तुत शोधपत्र में व्यक्तित्व विकास में योग के महत्व का शास्त्रीय अध्ययन किया गया है। यम—नियम योग साधना की नींव (आधार) के रूप में कार्य करते हैं। जिस प्रकार किसी भवन की नींव जितनी सुदृढ़ होती है, वह भवन भी उतना ही मजबूत और टिकाऊ होता है, ठीक उसी प्रकार योग साधनारूपी भवन की नींव में यम और नियम का पालन करना होता है। यम—नियम का पालन करने से योग साधक की साधना शीघ्र फलीभूत होने लगती है। जिस प्रकार योग साधक को साधना के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए यम—नियम पालन की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार आधुनिक समय में जन सामान्य यम—नियम को अपनी दिनचर्या का अंग बनाकर इनके लाभों (फलों) से अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत कर सकता है। पाँच यम और पाँच नियम मनुष्य के व्यक्तित्व को श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न बना सकते हैं। मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नित को नई दिशा प्रदान करता है और यही आधुनिक समय में व्यक्तित्व के आयाम कहलाते हैं। आधुनिक समय में यम—नियम का पालन करता हुआ मनुष्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नित के साथ ही महान व्यक्तित्व का धनी बन सकता है।

कूट शब्द : यम, नियम, अष्टांग योग, व्यक्तित्व।

प्रस्तावना : आधुनिक समय में विकृत आहार—विहार एवं प्रतिस्पद्धात्मक एवं स्वार्थ से परिपूर्ण सोच—विचार के कारण मनुष्य के अन्दर भ्रष्ट, दुराचार, पाप, इर्ष्या और राग—द्वेष आदि प्रवृत्तियां प्रबल होती जा रही हैं। इन वृत्तियों की प्रधानता के कारण आज में मनुष्य शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक स्तर से सम्बन्धित अनेक प्रकार की समस्याएं बहुत तेजी से बढ़ती जा रही हैं। ऋषियों और महापुरूषों की पावन भारत भूमि पर चोरी, अपहरण, भ्रष्टाचार, मारपीट आदि अमानवीय घटनाएं सामान्य होती जा रही है। आधुनिक समाज की इस रूग्ण अवस्था को देखकर प्राचीन भारतीय दर्शन का रमरण होता है। भारतीय दर्शन साहित्य में योग का अपना विशिष्ट स्थान है। योग दर्शन के रचनाकार महर्षि पतंजिल है। महर्षि पतंजिलकृत योग दर्शन में मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक पक्ष को उन्नत बनाने के लिए अष्टांग योग का उपदेश किया गया है। आधुनिक समय में मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित करने में अष्टांग योग एक महत्वपूर्ण कारक की भूमिका वहन कर सकता है। आधुनिक युग में मनुष्य अष्टांग योग का साधन करते हुए समग्र विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है। योग की उच्चतम् अवस्था अथवा ईश्वर साक्षात्कार तक पहुंचने के लिए महर्षि पतंजिल द्वारा अष्टांग योग के निम्न आठ अंगों का उपदेश किया गया है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङगानि ।।

(पातंजल योगसूत्र)

अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि— (ये) आठ योग के अंग है। महर्षि पतंजिल योग दर्शन के साधन पाद में अष्टांग योग का उपदेश करते हैं। महर्षि पतंजिलकृत अष्टांग योग का शास्त्रीय महत्व इतना अधिक है कि इसे राजयोग की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। अष्टांग योग में वर्णित योगांगों का पालन करते हुए योग साधक समाधि की उच्चतम् अवस्था की यात्रा पूर्ण करते हैं तो वहीं आधुनिक समय में मनुष्य व्यक्तित्व विकास के क्रम में इन योगांगों को अपनी दिनचर्या का अंग बनाते हुए व्यक्तित्व को उन्नत बना सकता है। व्यक्तित्व

विकास में इन यम—नियम की भूमिका का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शास्त्रों में वर्णित इनके स्वरूप का अध्ययन करते हैं—

(i) यम का स्वरूप एवं व्यक्तित्व विकास में महत्व

अष्टांग योग के प्रथम योगांग के रूप में वर्णित यम के पाँच भेदों पर प्रकार डालते हुए महर्षि पतंजलि उपदेश करते हैं— अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।।

(पातंजल योगसूत्र 02/30)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह— ये पाँच यम हैं। अष्टांग योग साधना की प्रथम सीढ़ी के रूप में यम का उपदेश किया जाता है। अहिंसा—सत्य आदि पाँच यमों का महाव्रत के रूप में पालन करने से योग साधक में साधना की मजबूत पृष्ठभूमि का निर्माण होता है। योगसूत्रों में महर्षि पतंजिल उपदेश करते हैं कि देश—काल—समय से ऊपर उठते हुए योग साधक को पाँच यमों का पालन महाव्रत के रूप में करना चाहिए।

पाँच यमों के मूल में अहिंसा वैसे ही सबका मूल है, जिस प्रकार अविद्या सब क्लेशों का मूल होती है। सब प्रकार से, सब कालों में, समस्त प्राणियों के साथ शरीर, वाणी तथा मन से वैरभाव (द्वेष) छोड़कर प्रेमपूर्वक व्यवहार करना अहिंसा है। क्योंकि "न हि वैरेण वैराणि प्रशाम्यित कदाचन" अर्थात् वैर भावना रखने से वैर भावना कभी शान्त नहीं होती है। मनुष्य में उत्पन्न वैर भावना सर्वप्रथम मानसिक अशान्ति को जन्म देती है और फिर वह हिंसा वृत्ति को जन्म देती है जबिक योगाभ्यामी को हिंसा वृत्ति का परित्याग करना परमावश्यक है। अहिंसा का शाब्दिक विश्लेषण करने पर इसका अर्थ इस रूप में स्पष्ट होता है— अ+हिंसा = अहिंसा। 'अ' का अर्थ है नहीं और 'हिंसा' का अर्थ है किसी को कष्ट पहुँचाना। इस प्रकार वैरभाव से किया गया कर्म (कष्ट पहुँचाना) हिंसा है जबिक न्यायभाव एवं हितकामना से किया गया कर्म अहिंसा होता है। दूसरे शब्दों में अहिंसा का अर्थ मन, वचन व कर्म से किसी को दुःख नहीं देना होता है। जैन धर्म का तो आधार ही अहिंसा है। वहाँ पर स्पष्ट किया गया है—'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। इसलिए वहाँ जीवदया पर सबसे अधिक बल दिया गया है। जैन स्वामी कहते है कि भय और वैरनिवृत्ति साधक को, जीवन के प्रति मोह ममता रखने वाले सब प्राणियों को सर्वत्रा अपनी ही आत्मा के समान जानकर उनकी कभी भी हिंसा न करनी चाहिए। इसी प्रकार वैदिक शास्त्रों में कहा गया है—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' अर्थात् जो अपनी आत्मा को प्रतिकूल व्यवहार लगता हो वह दूसरों के साथ भी न करें।

इस प्रकार अष्टांग योग साधना के प्रथम योगांग यम का प्रारम्भ अहिंसा से किया गया है। महिष् पतंजिल ने अष्टांग योगसाधना में सर्वप्रथम अहिंसा को प्रतिष्ठित किया है। योगरूपी पवित्र साधना में सभी प्रकार की हिंसा के भावों को पूर्णरूप से वर्जित किया गया है। इस योगांग का पालन व्यक्तित्व विकास की मूल आधारिशला को दृढ़ बना सकता है। आधुनिक समय में मनुष्य अहिंसा के भावों को अपनाकर व्यक्ति के मानसिक पक्ष को उन्नत बना सकता है। अहिंसा पालन के उपरान्त दूसरे यम के रूप में सत्य का वर्णन किया गया है। सत्यिनष्ठ होने से मनुष्य के आचार—विचार पवित्र होते हैं। वेद में कहा है —'सत्येनोत्तिता भूमि' अर्थात् यह पृथ्वी सत्य से ही टिकी है यदि असत्य का या झूठ का ही आधिपत्य हो जाए तो यह धरा (पृथ्वी) रसातल में समा जाएगी और समाज में त्राहि—त्राहि मच जाएगी। सत्य का व्रत पालना करना मनुष्य के लिए बहुत कठिन अवश्य है किन्तु यह मनुष्य के लिए बहुत आवश्यक होता है। उपनिषदों में समस्त मनुष्यों को प्रेरणा दी गई कि 'सत्यं वद' 'धर्म चर' अर्थात् सत्य का आचरण करो और धर्म के मार्ग पर चलो। इस प्रकार अष्टांग योग साधना के पथ पर अग्रसर साधक जब अपने मन में संकल्प ग्रहण लेता है कि 'सत्यं वदिष्यािम, नानृतम्' अर्थात् सत्य ही बोलूँगा, कभी भी झूठ नहीं बोलूँगा। इस व्रत का पालन करने पर साधक योग साधना की एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाता है। ठीक इसी प्रकार आधुनिक समय में जन—मानुस सत्य के व्रत को धारण करते हुए व्यक्तित्व विकास की सीढ़ी पर ऊपर उठ सकता है। दूसरों से कपट और छलरिहत व्यवहार का नाम सत्य समझना चाहिए। पुण्यरूप सत्य वही है, जो किसी को हानि न पहुँचाए। जैन दर्शन साधना में भी महिष्री पतंजिल के इन्हीं यमों को अपनाया गया है वहाँ कहा गया है कि सदा अप्रमादी, सावधान

रहकर, असत्य को त्याग कर, हितकारी सत्य वचन ही बोलना चाहिए तथा आत्मार्थी साधक को दृष्ट (सत्य) परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण स्पष्ट, अनुभूत, वाचलता रहित और किसी को भी उद्विग्न न करने वाली वाणी बोलनी चाहिए। सत्यरूपी यम का पालन करने से योग साधक की आत्मा पवित्र होती है। आधुनिक समय में मनुष्य के विभिन्न मानसिक और शारीरिक विकारों के मूल में सत्य का अपालन करना होता है। अतः आधुनिक समय में मनुष्य सत्यरुपी व्रत को धारण करता हुआ व्यक्तित्व को उन्नत बना सकता है।

अहिंसा और सत्य के उपरान्त तीसरे यम के रूप में अस्तेय का वर्णन आता है। अस्तेय का शब्दिक विश्लेषण करने पर इसका अर्थ स्पष्ट होता है। अ अर्थात् नहीं और स्तेय का अर्थ है— चोरी करना। इस प्रकार अस्तेय का अर्थ होता है—चोरी नहीं करना। यजुर्वेद मनुष्य को शिक्षा देता है कि किसी दूसरे के धन की ओर ललचाई दृष्टि से मत डालो। जो ऐसा करता है वह स्तेय है चोर है। अन्याय पूर्वक (छल या बल से) किसी के धन, द्रव्य अथवा अधिकार आदि का हरण करना, अपना बना लेना (स्तेय) चोरी है। इसका कारण लोभ या राग होता है इसलिए यदि योग साधक किसी वस्तु के प्रति राग करता है तो वह स्तेय का ही रूप है और इसका पूर्णरूप से त्याग कर देना ही अस्तेय है। अतः साधक को चाहिए कि वह स्तेय की भावना का मन से त्याग कर दे और अस्तेय के मार्ग का अनुसरण करता हुआ अपनी साधना में लीन रहे।

महर्षि पतंजिल अस्तेय के उपरान्त ब्रह्मचर्य का उपदेश करते हैं। योग साधक के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक होता है अथवा योग साधना में ब्रह्मचर्य एक महत्वपूर्ण साधन होता है। ब्रह्मचर्य रूपी यम का व्रत का पालन करने से परिवार, समाज और राष्ट्र में सदाचार की पावन धारा प्रवाहित हो सकती है। वेदों और उपनिषदों आदि ग्रन्थों में इस ब्रह्मचर्य पर बड़े विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अथर्ववेद में उपदेश किया गया है कि ब्रह्मचर्य रूपी व्रत से देवों ने मृत्यु को जीत लिया। इसलिए योग साधक को चाहिए कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार के मैथुनों का, सब अवस्थाओं में सदा त्याग करके शरीर के धातु की रक्षा करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। योग साधक को चाहिए कि वह शरीर, मन और वाणी पर गन्दे प्रभाव डालने वाले दृश्यों को न देखे, ऐसी बातों को न सुने, ऐसे साहित्य को न पढ़े और ना ही गलत विचारों को मन में स्थान दें।

वर्तमान काल में मनुष्य के सामने अनेक चुनौतियाँ और बाधाएँ बनी हुई हैं। आज के भौतिकवादी युग में जहाँ मनुष्य के मन में बहुविध विकारों को उत्पन्न करने वाले चलचित्र, विडियो, इन्टरनेट और अन्य विविध प्रकार के गन्दे अश्लील साधनों की चारों और भरमार हो गयी हैं। परन्तु मनुष्य को इन सभी से स्वयं को मुक्त एवं संयमित रखने का प्रयास करना चाहिए और सदैव ब्रह्मचर्यरूपी व्रत का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्यरूपी व्रत का पालन मनुष्य की शारीरिक क्षमता और बौद्धिक कुशलता को उन्नत बनाता हुआ व्यक्तित्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका वहन कर सकता है।

यम के पाँचवे भेद के रूप में अपरिग्रह का वर्णन आता है। अपरिग्रह का शाब्दिक विश्लेषण करने पर इसका अर्थ स्पष्ट होता है। अ का अर्थ 'नहीं' और परिग्रह का अर्थ संग्रह करना होता है। अर्थात् मनुष्य की संग्रह नहीं करने की प्रवृत्ति 'अपरिग्रह' कहलाती है। मनुष्य द्वारा अपने स्वार्थ के लिए ममतापूर्वक धन, सम्पत्तियों, भोग सामग्री का संचय करना 'परिग्रह' है और इस प्रवृत्ति का त्याग करना ही अपरिग्रह है। योग साधक को हानिकारक एवं अनावश्यक वस्तुओं का, विचारों का भी संग्रह नहीं करना चाहिए। यद्यपि भोजन आदि आवश्यक है परन्तु असाधारण भोजन आदि के लिए प्रयास करना 'परिग्रह' में आ जाता है। साधारण वस्त्रों से भी शरीर ढका जा सकता है और शरीर की गर्मी—सर्दी आदि से रक्षा की जा सकती है किन्तु साधारण वस्त्रों के स्थान पर रेशमी और आकर्षक वस्त्रों का धारण करना और इनका संग्रह करना 'परिग्रह' है। यह सब राग, लोभ, मोह को जन्म देते हैं। इसलिए साधक को इनसे बचना चाहिए। योग साधक के लिए 'अपरिग्रह' का पालन करना इसलिए आवश्यक होता है क्योंकि यदि वह इन्ही चीजों के संचय में लगा रहा तो उसका जीवन इन्हीं कार्यों में लगा रहेगा, वह अपने योगसाधना रूप लक्ष्य से भटक जाएगा। अपरिग्रह के पालन से मनुष्य में सादा जीवन उच्च विचार की भावना का उदय होता है।

इसलिए योग साधक के लिए साधना की दृढ़ बनाने के लिए अपरिग्रह का पालन करना अनिवार्य होता है, इससे उसकी सांसारिक पदार्थों में ममत्व, राग या लोभ आदि कुटिल भावनाएं नष्ट होती चली जाती है और योगमार्ग की साधना का पथ निर्विघ्न होने लगता है।

योग शास्त्रों में यमों के पालन का फल दूसरे प्राणियों से वैर का त्याग, सभी कर्मों में फल देने योग्यता, सभी रत्नों की प्राप्ति, असीम बल एवं शक्ति—सामर्थ्य का प्राप्त होना एवं पूर्वजन्मों के ज्ञान के रूप में वर्णित किया गया है। आधुनिक समय में मनुष्य के द्वारा यमों को पालन करने से इन योग्यताओं और क्षमताओं का समावेश मनुष्य के व्यक्तित्व में होने लगता है और मनुष्य का व्यक्तित्व श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम् में परिष्कृत होने लगता है। वर्तमान समय में इन यमों का पालन करते हुए मनुष्य शारीरिक स्तर पर स्वस्थ, मानसिक स्तर पर स्थिर—एकाग्र और बौद्धिक स्तर पर कुशल बन सकता है।

(ii) नियम का स्वरूप एवं व्यक्तित्व विकास में महत्व

योगांग—नियम के निम्न पाँच भेद होते हैं। इन पाँच भेदों का उपदेश करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं— शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।।

(पातंजल योगसूत्र 02 / 32)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान— ये पाँच नियम हैं। शौच से अभिप्रायः शुद्धिकरण को अपनाने से होता है। योग में स्वच्छता अथवा शुद्धिकरण का बहुत विशेष महत्व होता है इसीलिए महर्षि पतंजिल नियम का प्रारम्भ शुद्धिकरण के रूप में शौच से करते हैं। शौच के भी दो प्रकार होते हैं— बाह्य शौच और आन्तरिक शौच। बाह्य शौच में स्नान कर्म, स्वच्छ वस्त्रों को धारण करना, अपने आस—पास के वातावरण को स्वच्छ एवं निर्मल बनाना आदि कार्यों का वर्णन आता है जबिक आन्तरिक शौच में मन को काम—क्रोध, लोभ—मोह, ईष्या—द्वेष आदि विकारों से मुक्त रखने का वर्णन आता है। शौच का फल स्वयं के शरीर से आसिवत के भावों का त्याग के रूप में प्राप्त होता है। महर्षि पतंजिल के अनुसार शौच का फल चित्त की निर्मलता, एकाग्रता, इन्द्रियजय और आत्मदर्शन की योग्यता के रूप में प्राप्त होता है। शौच के यह फल मनुष्य के व्यक्तित्व को सीधा—सीधा प्रभावित करते हैं। चित्त की निर्मलता और एकाग्रता के प्रभाव से मनुष्य का व्यक्तित्व स्वभाविक रूप से निखरने लगता है। इन्द्रियों पर विजय और आत्म संयम की योग्यता मनुष्य के व्यक्तित्व को श्रेष्ठ से महानता की ओर अग्रसर करने लगती है।

दूसरे नियम के रूप में सन्तोष का वर्णन आता है। सन्तोष मनुष्य के लिए इस संसार के सबसे बड़े खजाने या कोष के समान होता है। इसीलिए जिसके पास सन्तोषरूपी धन है उसके पास इस संसार का सबकुछ विद्यमान है और इसके विपरित जिसके पास यह सन्तोषरूपी धन नहीं है वह सब कुछ होते हुए भी संसार का सबसे बड़ा दिरद्र बना रहता है। वास्तव में जीवन निर्वाह के लिए जो अपेक्षित साधन अपने पास उपलब्ध हैं, उसी में प्रसन्नता के भाव के साथ रहना, उन्हीं से अपना काम चलाना तथा सब प्रकार की तृष्णा को छोड़ देना ही सन्तोष कहलाता है। हिन्दीभाषा का प्रसिद्ध दोहा सन्तोष के स्वरुप को भिल—भांति स्पष्ट करता है —

गो—धन, गज—धन, वाजि—धन और रत्न—धन खान। जब आवे सन्तोष—धन, सब धन धूलि समान।

अर्थात् जब मनुष्य को अपने जीवन में सन्तोषरुपी धन प्राप्त हो जाता है तब उसे संसार के अन्य किसी भी धन की आवश्यकता नहीं रहती है। सन्तोष से उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है— ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है। इसी प्रकार योग साधक को अपने अन्दर सन्तोष की भावना रखनी चाहिए। उसे लोभ, लालच में फॅसकर अपनी इच्छाओं को बढ़ाकर जीवन में असन्तोष पैदा नहीं करना चाहिए। आज जितने भी मानसिक विकार मनुष्य के जीवन को कष्टकारी बना रहे हैं, उनके मूल में असन्तोष एक प्रमुख कारण हैं। इसलिए मनुष्य को अपना आचरण ऐसा बनाना चाहिए जिससे उसकी आवश्यकताएँ भी पूरी हो जाएँ और उसे किसी प्रकार का असन्तोष भी न हो। महर्षि

मनु उपदेश करते हैं कि सन्तोष का आधार सुख है, इसके विपरीत जो तृष्णा है वह तो दुःख का मूल है। इसिलए योगाभ्यासी साधक को चाहिए कि वह सन्तोषरूपी नियम का पालन करते हुए मनसा, वाचा, कर्मणा अपने सभी कार्यों में सन्तुष्ट और प्रसन्नता की अनुभूति करता हुआ अपने मूल लक्ष्य की ओर अग्रसर बना रहे। यह सन्तुष्टि और प्रसन्नता की अनुभूतियां मनुष्य के व्यक्तित्व को बहुत सकारात्मकता प्रदान करते हैं।

नियम के तीसरे अंग के रूप में तप का वर्णन आता है। वास्तव में गहराई से अध्ययन करने पर स्वतः ही स्पष्ट होता है कि योगी परूष की योग साधना तप का ही पर्याय है और इसी तप करने वाले को ही तपस्वी की संज्ञा से सुशोभित किया जाता है। प्रायः लोक कथाओं में वर्णन आता है कि ऋषि या मुनि ने इतने वर्षों का घोर तप करने के उपरान्त सिद्धियों को प्राप्त किया। इसलिए मनुष्य जीवन में तप का बहुत महत्व है। तप की प्रशंसा करते हुए महर्षि मन् महाराज उपदेश करते हैं कि जिसका तरना दुस्तर (कठिन) है, जिसका मिलना दुष्कर है तथा जिसका ज्ञान लाभ करना दुष्कर है, वह तप के द्वारा प्राप्त हो सकती है। दुष्कर (कठिन) कार्यो के पूर्ण करने का मुख्य कारण तप ही है और बड़े-बड़े महापापी और दुष्कर्मों के करने वाले जितने पापी है वह सब तप ही के द्वारा . शुद्ध हो सकते है। वस्तुतः तप का मानव जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। बिना तप किए कोई बड़ा अथवा महान नही बन सकता है। योगसूत्रों के भाष्यकार महर्षि व्यास जी तप के स्वरुप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि द्वन्द्वों का सहन करना ही तप है।⁸ योग साधक को तप का पालन मनसा, वाचा, कर्मणा करना पड़ता है। शारीरिक, मानसिक द्वन्द्वों का सहना तप के ही अन्तर्गत है। जैसे सोना-चाँदी आदि धातुएँ अग्नि में तपकर शुद्ध हो जाते हैं और कुन्दन बन जाते हैं, ठीक इसी प्रकार योगी साधक पुरूष भी तप की साधना करने से पवित्र और दृढ़ बन जाते हैं। सामान्य जीवन में मनुष्य के द्वारा क्षुधा-तृष्णा, भूख-प्यास, शीत्-उष्ण, मान-अपमान आदि विषम परिस्थितियों को सहन करना भी तप का ही रूप होता है और इसी प्रकार जब योगी पुरूष अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शरीर, मन-प्राण एवं इन्द्रियों को उत्तम अभ्यास से जो उपयुक्त द्वन्द्वों को सहन करता है, उसे ही **तप** की संज्ञा दी जाती है। तप की साधना के प्रभाव से योगी पुरूष का शरीर, मन, इन्द्रियां और प्राण आदि परिपुष्ट बनते हैं और योगमार्ग में आने वाली बाधाएँ दूर होती जाती है। योगसूत्रों के रचनाकार महर्षि पतंजलि तप का फल काया (शरीर) और इन्द्रियों की शुद्धि के रूप में वर्णित करते हैं। यह तप आधुनिक समय में मनुष्य के व्यक्तित्व को सुन्दर और आकर्षित बनाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका वहन कर सकता है। आधुनिक समय में अधिकांश कार्य मशीनों के द्वारा होने के कारण शारीरिक श्रम कम हो गया और मोटापा आदि रोगों के साथ ही अनेक प्रकार के रोग मनुष्य के व्यक्तिव को विकृत बना रहे हैं। यहाँ पर व्यक्तित्व विकास में तप का महत्व स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

नियम का चतुर्थ भेद स्वाध्याय है। महत्वपूर्ण स्मरणीय तथ्य है कि योग साधक की साधना के मार्ग में सबसे बाधक अज्ञान होता है और यह अज्ञान ही समस्त क्लेशों का भी मूल होता है जो साधक के मन में अनेक प्रकार के संशय और भ्रान्तियों को उत्पन्न करने का कार्य करता है। इस अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान के द्वारा ही संभव होती है। 'ज्ञान' प्राप्ति के लिए ऋषि—मुनियों ने स्वाध्याय का विधान किया है। योगसूत्रों के भाष्यकार महर्षि व्यास जी स्वाध्याय के स्वरुप पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं — मोक्ष विषयक शास्त्रों का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है और ओंकारादि का जप भी। इसका अर्थ यह है कि जिनसे योग साधक को अपने कर्त्तव्य कर्मों का बोध हो सके, ऐसे वेद शास्त्र, उपनिषद्, गीता तथा पुराण आदि आध्यात्मिक ज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों का तथा महापुरुषों के लेख आदि का पठन—पाठन करना 'स्वाध्याय' कहलाता है।

स्वाध्याय का अर्थ स्वयं का अध्ययन करने से भी होता है। स्वयं का अध्ययन करते हुए आत्म चिन्तन करना तथा अपने जीवन के विषय में अध्ययन करना भी स्वाध्याय ही है। स्वाध्याय के महत्व पर प्रकाश डालते हुए उपनिषद् साहित्य में कहा गया है कि स्वाध्याय से प्रमाद मत करो। इस प्रकार योग साधक को चाहिए कि वह निरन्तर श्रेष्ट ग्रन्थों का अध्ययन अवश्य करे और समय—समय पर आत्म मंथन करते हुए अपने जीवन के समस्त दुर्गुण—दुर्व्यसनों का त्याग करने का प्रयास करता रहे। इस प्रकार स्वाध्याय करने से मनुष्य की आध्यात्मिक पथ पर

चलने की श्रद्धा और रुचि बढ़ती चली जाती है वह ईश्वर के गुण—कर्म व स्वभाव को भली प्रकार जानकार उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम बनता है। योगसूत्रों के रचनाकार महर्षि पतंजिल स्वाध्याय का फल इष्टदेव से मिलन के रूप में वर्णित करते हैं अर्थात् निरन्तर स्वाध्याय में लीन योग साधक ईश्वर साक्षात्कार पथ पर उन्मुख होता हुआ ईश्वर की शरण में चला जाता है। स्वाध्याय के फलस्वरुप व्यक्ति के ज्ञान एवं बुद्धि का विस्तार होता है और मनुष्य का मन सकारात्मक विचारों से परिपूर्ण बनता है। इसके प्रभाव से मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होने लगता है और मनुष्य बहुआयामी व्यक्तित्व का धनी बनता है।

अष्टांग योग साधना में नियम के पाँचवे भेद के रूप में ईश्वर प्रणिधान का वर्णन आता है। ईश्वर प्रणिधान का सबसे सरल अर्थ स्वयं को अपने सब कर्मों के साथ परमगुरु अर्थात परमात्मा में अर्पण कर देना **ईश्वर प्रणिधान** होता है। ईश्वर का निरन्तर चिन्तन-मनन और निदिध्यासन ही **ईश्वर प्रणिधान** है। जिस साधक में ईश्वर के प्रति शरणागति का भाव, भक्ति विशेष का प्राद्र्भाव हो जाता है वह शरीर, बुद्धि, विद्या, बल व धन आदि समस्त साधनों को ईश्वर प्रदत्त मानकर उनका उपयोग मन-वाणी तथा कर्म से ईश्वर की प्राप्ति हेतु ही करता है। अपना सब कुछ ईश्वर के प्रति समर्पित कर देना ही ईश्वर प्रणिधान है। योगसूत्रों के भाष्यकार महर्षि व्यास जी स्वाध्याय के स्वरुप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि उस परम गुरु परमात्मा में सब कर्मों का अर्पण करना, ईश्वर प्रणिधान है। 10 गीता में श्रीकृष्ण का अर्जुन से 'मामेकं शरणं व्रज' कहना भी ईश्वर प्रणिधान का ही रूप है। मोहग्रस्त अर्जुन ईश्वर के शरणागत होकर ही उसके विराटत्व को जानने में सक्षम हो सका। इस प्रकार ईश्वर प्रणिधान रूपी साधन से साधक का बाह्य विषयों से चित्त हटता है और उसके मन में भिक्त का उद्रेक जाग्रत होता है। योगसूत्रों के रचनाकार महर्षि पतंजिल ईश्वर प्रणिधान का फल समाधि अवस्था की प्राप्ति के रूप में करते हैं। उच्च कोटि के योग साधक ईश्वर प्रणिधान के माध्यम से समाधि की अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। इस सकारात्मक अनुभूति का प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व को श्रेष्ठता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन कर सकता है। आधुनिक समय में अधिकांश मनुष्यों का जीवन लोभ, मोह, ईष्या, राग-द्वेष के साथ-साथ मानसिक तनाव और चिन्ता आदि से ग्रस्त होकर अनेक रोगों से ग्रस्त होता जा रहा है इन रोगों का दुष्प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। ऐसे सभी मनुष्यों के लिए ईश्वर प्रणिधान एक महाऔषधि का कार्य कर सकता है। ईश्वर प्रणिधान को अपनाते हुए मनुष्य सर्वत्र सर्वशक्तिमान के दिव्य स्वरूप की प्रतिक्षण अनुभूति करते हुए अपने व्यक्तित्व को श्रेष्ठ से महान बनाने की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

सर्दभ सूची:

- 1. हरिकृष्णदास गोयन्दका, योग दर्शन, पृष्ठ संख्या 63
- 2. हरिकृष्णदास गोयन्दका, योग दर्शन, पृष्ठ संख्या 63
- 3. मा गृधः कस्यस्चिद्धनम्।। ईशोपनिषद् मन्त्र संख्या ०१
- 4. ब्रह्मचर्पेण तपसा देवा मृत्युमपाध्नत।। अथर्ववेद ब्रह्मचर्य सूक्त।।
- 5. हरिकृष्णदास गोयन्दका, योग दर्शन, पृष्ठ संख्या 65
- 6. हरिकृष्णदास गोयन्दका, योग दर्शन, पृष्ठ संख्या 70
- 7. सन्तोष मूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।। मनुस्मृति 4/12
- 8. तपो द्वन्द्व सहनम्।। 2/32 व्यास भाष्य।
- 9. स्वाध्यायो मोक्षशास्त्रााणामध्ययनं प्रणव जपो वा।। व्यासभाष्य 2/32
- 10. ईश्वर प्रणिधानं तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्।। व्यास भाष्य 2/3



सामयिक परिप्रेक्ष्य में वरिष्ठ नागरिकों की स्थिति

डॉ. शाहेदा सिद्दिकी

प्राध्यापक,(समाजशास्त्र), शा.ठाकुर रणमत सिंह, महाविद्यालय, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश— जन्म से मृत्यु तक मानव का जीवन शारीरिक विकास की एक प्रक्रिया है। जो कुछ पूर्व निर्धारित चरणों से होकर गुजरता है। ये चरण है यथा— शैशव अवस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवा अवस्था, प्रोढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था जिसमें जन्म से लेकर किशोरावस्था तक की प्रक्रिया तीव्र विकास या निर्माण की प्रक्रिया है। यह विकास, निर्माण एवं संग्रहण का दौर होता है। युवावस्था में विकास प्रक्रिया धीमी पड़ने लगती है और प्रौढ़ावस्था तक पहुंचते—पहुंचते लगभग थम जाती है। युवा अवस्था से प्रौढ़ावस्था तक का दौर जैविक, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से उत्पादन, दायित्व निर्वाह या जो कुछ पूर्व में संचित या संग्रहित किया गया है, उसे लौटाने या खर्च करने का दौर होता है। वृद्धावस्था जीवन प्रक्रिया का अंतिम चरण है। यह शारीरिक एवं सामाजिक दृष्टि से ह्रास का दौर है जिसमें व्यक्ति न केवल शारीरिक व मानसिक दृष्टि से कमजोर होता है अपितु सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से शक्तिहीन व संदर्भहीन भी हो जाता है। वर्तमान में वृद्धों की हालत बहुत दयनीय हो गयी है। वास्तव में यह एक चिंता का विषय है। प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान शहडोल नगरपालिका क्षेत्र के परिवारों में वरिष्ठ नागरिकों की स्थिति का अध्ययन करना है।

कूट शब्द : वरिष्ठ नागरिक, शक्तिहीन, संदर्भहीन दयनीय, दायित्व एवं उत्पादन आदि।

इतिहास इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि प्राचीन काल में वृद्धों की स्थिति अत्यन्त उन्नत एवं सम्माननीय रही हैं। उनका समाज एवं परिवार में अलग वर्चस्व था। परिवार की समस्त बागडोर उनके हाथों में हुआ करता था। परिवार का कोई भी फैसला उनकी सलाह व मसविरे के आधार पर होता था। उन्हीं की सत्ता एवं प्रमाव के कारण पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे, वे परिवार के सदस्यों को एक धागे में बांधे रखते थे। परन्तु भौतिकवादी युग में वृद्धों की समस्याओं का बढ़ना एवं समाज में उनकी उपयोगिता कम होती नजर आ रही है। बुढ़ापा जीवन का अंतिम पड़ाव है और इस पड़ाव पर जीवन अशक्त हो जाता है। कार्य करने की क्षमता कमजोर हो जाती है। स्वयं के भरण—पोषण के लिये दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यही निर्भरता वृद्धों की समस्याओं का मूल कारण बन जाता है। जिससे वृद्धजन शारीरिक व आर्थिक दृष्टि से घुटन भरी जिन्दगी जीने को विवश हो जाते हैं। उनका परिवेश ही उनके सामाजिक जीवन की धुरी है क्योंकि उनके सामाजिक सम्बन्धों का ताना—बाना उनके वास्तविक निवास के आस—पास ही सिमट कर रह जाता है। परन्तु वर्तमान की भागदौड़ भरी जिन्दगी में किसी के पास भी समय नहीं है कि वे उनकी भावुकता, पसन्द ना पसन्द तथा स्वास्थ्य समस्याओं को सुने। अतः वे स्वयं को बहुत अकेला अनुभव करते हैं। सामाजिक गतिविधियों से उनकी सहभागिता लगभग समाप्त होती जा रही है। पीढ़ी अन्तराल के कारण बच्चे वृद्धजनों की बात का विरोध करते हैं जिससे वे अपने ही घर में पराये जैसा व्यवहार महसूस कर रहे हैं।

SHISRRJ22520 | Accepted : 15 Jan 2022 | Published : 10 Feb 2022 | January-February-2022 [5 (1) : 57-62]

अतः भारत जैसे विकासशील देश में जहां आधुनिकीकरण के दौरान वृद्धों की स्थिति खराब हो रही है। वहीं इन समस्याओं के दृष्टिगत भारत सरकार ने उन्हें सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करने के लिए अनेक योजना संचालित की है। जैसे— स्वास्थ्य रक्षा योजना, बचत बीमा और निवेश योजना, राष्ट्रीय वयोश्री योजना तथा वृद्धावस्था पेंशन योजना आदि। अतः वर्तमान विषय की महत्ता को देखते हुये इस पर शोध कार्य किये जाने की अत्यधिक आवश्यकता है।5

यदि हम पिछले कुछ दशकों में भारत की वृद्ध आबादी का अध्ययन करें तो हम देखते हैं कि यह सर्वत्र बढ़ रही है। यह गिरती हुई मृत्यु दर तथा बढ़ती जीवन प्रत्याशा से संभव हुई है। इसके कारण अच्छी चिकित्सा सुविधाएं तथा उपयुक्त शिक्षा है। भारत में वरिष्ठ नागरिकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। साथ—साथ इनकी औसत आयु भी बढ़ रही है। सामान्य स्वास्थ्य का स्तर बेहतर हुआ है। सन् 1951 में जहां 60 वर्ष से ऊपर की आयु के 1.98 करोड़ वरिष्ठ नागरिका थे, वहीं सन् 2011 की जनगणना में उनकी संख्या 10.4 करोड़ हो गई। अनुमान है कि वर्ष 2021 में यह संख्या 14.3 करोड़ और 2026 में 17.3 करोड़ होगी। उददेश्य — प्रस्तृत शोध पत्र के निम्नलिखित उददेश्य हैं—

1. वरिष्ठ नागरिकों की सामाजिक — आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना। 2. परिवार में वरिष्ठ नागरिकों की स्थिति का अध्ययन करना।

अध्ययन क्षेत्र – प्रस्तुत अध्ययन मध्य प्रदेश में स्थित शहडोल नगरपालिका क्षेत्र में सम्पन्न किया गया है। अध्ययन विधि – प्रस्तुत अध्ययन वर्णात्मक शोध प्ररचना के अन्तर्गत किया गया है।

निदर्शन — शहडोल नगर पालिका परिषद के 50 वरिष्ठ नागरिकों का चयन दैव निदर्शन पद्धति के प्रयोग द्वारा किया गया है तथा उनसे सूचनाओं का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। उपलब्धियाँ — अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियां निम्नलिखित हैं।

mÙkjnkrkvksa dh lkekftd vkfFkZd fLFkfr

तालिका संख्या −1			
	सूचक	संख्या	प्रतिशत
क्र. सं.	आयु		
1.	60 — 70 वर्ष	25	50
2.	70 — 80 वर्ष	15	30
3.	80 + वर्ष	10	20
	योग	50	100

तालिक				
क्र. सं.	शिक्षा का विवरण	संख्या	प्रतिशत	
1.	उच्च शिक्षित	15	30	
2.	अल्प शिक्षित	35	70	
	योग	50	100	

तालिका संख्या —3				
क्र. सं. वैवाहिक स्थिति संख्या प्रतिशत				
1.	विवाहित	28	56	
2.	विशुर	12	44	
	योग	50	100	

तालिका संख्या —4				
क्र. सं.	परिवार की प्रकृति	संख्या	प्रतिशत	
1.	एकाकी	38	76	
2.	संयुक्त	12	24	
	योग	50	100	

तालिका संख्या —5					
क्र. सं. निजी आय संख्या प्रतिशत					
1.	ਬੈ	18	24		
2.	नहीं	38	76		
	योग 50 100				

तालिका संख्या —6					
परिवार के सदस्यों का व्यवहार					
क्र. सं.	क्र. सं. परिवार की प्रकृति संख्या प्रतिशत				
1.	अच्छा	24	48		
2.	2. खराब 26 52				
योग 50 100					

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 48 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार के सदस्यों का व्यवहार उनके प्रति अच्छा है। जबकि 52 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि उनके परिवार के सदस्यों का व्यवहार उनके साथ खराब है।

तालिका संख्या —7				
पारिवारिक निर्णयों में भूमिका				
क्र. सं.	पारिवारिक निर्णयों में भूमिका	संख्या	प्रतिशत	
1.	राय ली जाती है	15	30	
2.	नहीं ली जाती है	35	70	
	योग	50	100	

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार पारिवारिक निर्णयों में उनकी राय लेते हैं तथा सर्वाधिक 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार उनकी राय नहीं लेते है।

तालिका संख्या -8

भोजन के प्रति संतुष्टि			
क्र. सं.	भोजन से संतुष्टि	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	73	44
2.	नहीं	28	56
	योग	50	100

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 44 प्रतिशत उत्तरदाता परिवार में मिलने वाले भोजन से संतुष्टि हैं जबकि 56 प्रतिशत उत्तरदाता भोजन से संतुष्ट नहीं है।

तालिका संख्या -9

बीमारी में परिवार के द्वारा देखभाल				
क्र. सं.	देखभाल करते हैं	संख्या	प्रतिशत	
1.	हाँ	12	36	
2.	नहीं	32	64	
	योग	50	100	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि रिश्तेदारों के परिवारों में होने वाले उत्सवों में 44 प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार के साथ सम्मिलित होते हैं तथा 56 प्रतिशत उत्तरदाता भागीदारी नहीं करते हैं।

तालिका संख्या −10				
चिकित्सा करवाने की स्थिति				
क्र. सं.	चिकित्सा करवाते हैं	संख्या	प्रतिशत	
1.	हाँ	38	76	
2.	नहीं	12	24	
	योग	50	100	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 76 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार बीमारी में उनकी चिकित्सा करवाते है।

तालिका संख्या −11					
रिश्तेदारों के यहां होने वाले उत्सवों में परिवार के साथ भागीदारी					
क्र. सं.	भागीदारी करते हैं	भागीदारी करते हैं संख्या प्रतिशत			
1.	हाँ	22	44		
2.	नहीं	28	56		
	योग	50	100		

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि रिश्तेदारों के परिवारों में होने वाले उत्सवों में 44 प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार के साथ सम्मिलित होते हैं तथा 56 प्रतिशत उत्तरदाता भागीदारी नहीं करते हैं।

निष्कर्ष —वर्तमान में भारतीय समाज में विरिष्ठ नागरिकों की दशा में बहुत दयनीय है। परिवार में सदस्यों का व्यवहार विरिष्ठ नागरिकों के प्रति अच्छा नहीं है। पारिवारिक निर्णयों में उनकी राय नहीं ली जाती है। वे परिवार द्वारा मिलने वाले भोजन से भी संतुष्ट नहीं हैं। इसिलये यह आवश्यक है कि विरिष्ठ नागरिकों के पारिवारिक सदस्यों तथा रिश्तेदारों को अभिप्रेरित किया जाए कि वे उनकी उचित देखभाल करें। इसके साथ—साथ विरिष्ठजनों की जिम्मेदारी सरकार की एक अनिवार्य सामाजिक तथा नैतिक जिम्मेदारी हो। इसके अलावा उन विरिष्ठ नागरिकों के ऊपर विशेष

ध्यान देने कि आवश्यकता है जो किन्हीं कारणों से सरकारी योजनाओं का लाभ लेने में असमर्थ हैं। यदि सरकार समाज के हाशिए पर खड़े इन लोगों को देश की उन्नति की धारा में ला सके तो वह इन वृद्धजनों जिन्होंने अपने समय में देश के विकास में अपना योगदान दिया था के प्रति सच्ची सहायता तथा सम्मान होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1- यादव, के.एन.एस. (2011), ''एजिंग सम इमरजिंग इश्यूज'', नई दिल्ली : मानक पब्लिकेशन्स, पृष्ठ–28 । 2. द्विवेदी, परेश (2014), ''वृद्धावस्था के विविध आयाम, समस्याएं एवं चुनौतियाँ'' पृष्ठा–42
- 2- अग्रवाल, उमेश चन्द्र (2009), "बढ़ते बुजुर्ग, घटती सुरक्षा" पृष्ठ-50
- 3- ढिल्लन, परमजीत कौर (1992), "साइको—सोशल आसपैक्ट्स ऑफ एजिंग इन इंडिया" नई दिल्ली :
- 4- कार्न्सप्ट पब्लिशिंग, पृष्ठ-18
- 5- जनगणना, 2011 भारत सरकार (अंतिम डेटा)



आखिर स्त्री-पुरूष असमानता कब तक

डॉ. गीता सिंह

सह. प्राध्यापक अर्थशास्त्र, शास. कन्या रनातकोत्तर महाविद्यालय,रीवा, मध्य प्रदेश।

Article Info

Volume 5, Issue 1

Page Number: 63-66

Publication Issue:

January-February-2022

Article History

Received: 01 Feb 2022

Published: 15 Feb 2022

सारांश — महिलाओं के खिलाफ हिंसा से निपटने के लिए कानून और कानूनी ढ़ाँचे का विकास एक महत्वपूर्ण कदम है और हिंसा के अपराधियों को जिम्मेदार ठहराने के लिए मजबूत कानून का होना भी अहम है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा की सामाजिक तथा सांस्कृतिक वैधता और उनके साथ भेदभाव को समाप्त करने के लिए कानून आवश्यक है क्योंकि आज भी महिला पुरूष समानता और नारी शक्ति का विकास और साथ ही परिवारों, समुदायों और राष्ट्रों के कल्याण के लिए अनिवार्य मानते हैं कोई भी राष्ट्र, समाज और परिवार समृद्ध और खुशहाल नहीं हो सकता, यदि उनकी आबादी का 50% यानि महिला जनसमूह खुशहाल नहीं होगी।

मुख्य शब्द – स्त्री,पुरुष, असमानता, हिंसा, कानून, संस्कृति, धर्म, सामाजिक, आर्थिक,

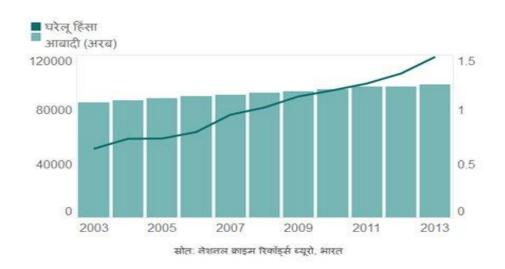
सांस्कृतिक।

भारत संस्कृतियाँ का देश है वैदिक काल से महिला सम्मानीय रही है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कारों में उनकी बराबर की भागीदारी रही है भारत का एतिहासिक परिदृश्य देखे तो आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक धार्मिक सभी क्षेत्रों में उच्चतम शिखर पर अपना स्थान बनाया है। उसके बावजूद भारत में स्त्री—पुरूष असमानता वृहद स्तर पर व्याप्त है। हजारों महिलाओं को परिवार के साथ—साथ समाज मे भी व्यापक स्तर पर सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

एक सर्वे के अनुसार दक्षिण एशियाई देशों की एक तिहाई महिलाओं को अपने जीवनकाल में किसी न किसी प्रकार की हिंसा का शिकार होना पड़ता है। और इस हिंसा को पारिवारिक संरचनाओं, सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक तथा धार्मिक परम्पराओं के बहाने संस्थागत रूप दे दिया जाता है और यह व्यापक रूप से महिलाओं पर नियंत्रण बनाने का स्वीकृत तरीका है।

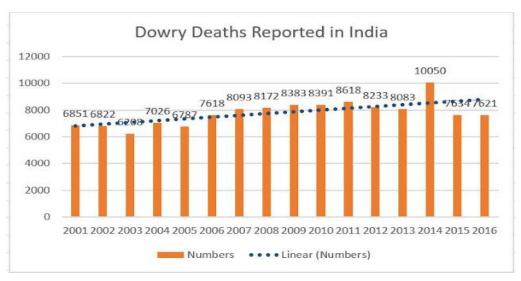
घरेलू हिंसा — घरेलू हिंसा भारत के सभी क्षेत्रों में होती है हिंसा के तरीके अलग—अलग हो सकते हैं किन्तु भारत में पारिवारिक जीवन के एक वैध हिस्से के रूप में व्यापक रूप से स्वीकार करते है। परिवार भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण इकाई है और देश के सामाजिक और आर्थिक ढांचे के केन्द्र में है बावजूद इसके महिलाओं के लिए परिवार एक सुरक्षित और सुरक्षात्मक इकाई के रूप में नहीं है बिल्क यह महिला—पुरूष भेदभाव के व्यापक स्वरूप को मजबूत करता है राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वे में पाया गया कि भारत में 15 से 49 वर्ष के आयु के बीच 34 प्रतिशत

महिलाओं ने 15 साल की उम्र के बाद और 37 प्रतिशत विवाहित महिलाओं ने हिंसा का सामना किया है। घरेलू हिंसा की जानकारी न दिये जाने के कारण घर के अंदर हिंसा की शिकार होने वाली महिलाओं की वास्तविक संख्या का भी अधिक मानी जाती है महिलाओं के खिलाफ अपराध के 92.9% मामले अदालतों में लंबित है। भारत में हर साल अंतरंग साथी या रिश्तेदारों द्वारा मारे जाने वाली महिलाओं की संख्या अज्ञात रहती है महिला हिंसा में घरेलू हिंसा एक आम तरीका है घर परिवार द्वारा आत्महत्या के लिए प्ररित करने पर महिलाओं द्वारा की जाने वाली आत्महत्या सही मायनों में हत्या है। जिसे परिवार एवं पुलिस प्रशासन द्वारा आत्महत्या कह कर फाइल बंद कर दी जाती है।

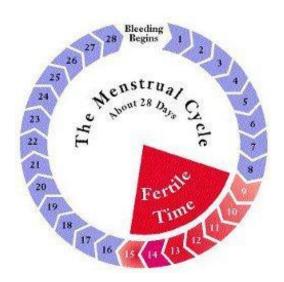


दहेज हत्या :— दहेज प्रथा भी महिलाओं के साथ भेदभाव को मजबूत करती है। और इससे संबंधित अपराध भारत में महिलाओं की सुरक्षा के लिए खतरा है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों की रिपोर्ट के अनुसार भारत में दहेज से होने वाली मौतों की संख्या एक वर्ष में 7000 से अधिक है भारतीय संस्कृति में दहेज एक सांस्कृतिक परंपरा थी जिसका मूल उद्देश्य बेटी की विदाई पर उसे उपहार स्वरूप नकद एवं उसकी आवश्यकता की वस्तुएं दी जाती थी जिससे विवाहित जीवन की शुरूआत करने वाले नये जोडों की सहायता हो सके। किंतु आज यह व्यवसाय बन चुका है शिक्षा के विकास के साथ साथ दहेज रूपी महामरी निरंतर फैल रही है भारत में प्रचलित पितृसत्ता और बढ़ती आर्थिक मांगों ने दहेज को व्यवसायिक लेन देन में बदल दिया है जो सामाजिक आर्थिक स्थित पर आधारित है। महिलाओं के प्रति यह हिंसा तब बढ़ जाती है जब कोई परिवार ष्यादी के बाद बड़े दहेज की मांग करता है या उन्हें मिले दहेज से असंतुष्टि दिखाता है हालांकि दहेज अवैध है फिर भी पूरे देश में प्रचलित है और महिलाये लगातार इस हिंसा को झेल रही है। दहेज हिंसा के आकड़े विवाह के साथ महिलाओं की उम्र, शिक्षा का स्तर एवं दूर संचार के माध्यमों पर निर्भर है और पिछड़े राज्यों में इन सभी संसाधनों का अभाव है जिससे उन राज्यों में दहेज मृत्यू दर अधिक होती है।

डॉ. गीता सिंह Sh Int S Ref Res J, January-February -2022, 5 (1): 63-66



लिंग चयनात्मक गर्भपात :— समूचे भारत में कन्या भ्रूण हत्या, पितृसत्ता और कुप्रथा की सोभा को उजागर करती है किसी भी कुप्रथा को रोकने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है किंतु भारत में साक्षरता स्तर 2011 के अनुसार पुरूष में 85 प्रतिशत और महिलाओं में 65 प्रतिशत होने के बावजूद भी कन्या भ्रूण हत्या कम होने के बजाय बढी ही है। जनगणना 2011 के अनुसार छह साल तक की अबादी में एक हजार लड़कों के मुकाबले सिर्फ 914 ही है ये तस्वीरे चिंताजनक होने के साथ ही विद्रूव सामाजिक स्थित की गवाह है ये उस बात की ओर स्पष्ट संकेत करती है जहां स्त्री को दोयम दर्जे का समझा जाता है, आखिर गर्भ में ही बिच्च्यों को मार देने की घटनायें क्यो बढ़ रही है? स्त्री को जन्म लेने के पहले से लेकर मृत्यु पर्यत क्यों कष्ट सहने पर मजबूर किया जाता है स्त्री अधिकार, स्त्री सशक्तिकरण की बात करने तक अपनी वास्तविक जिंदगी में स्त्री के प्रति अनुदार रवैया अपनाते है। सही ये होगा कि समाज अपनी मनोदशा में शीघ्र ही परिवर्तन कर ले अन्यथा कही ऐसा न हो कि विकास की दौड़ अधूरी रह जाए।



भारतीय समाज के सभी क्षेत्रों में महिलाओं के प्रति हिंसा तथा स्त्री हत्या को रोकने और पुरूषों तथा महिलाओं के बीच समानता लाने के लिए प्रयास किये जा रहे है। नये कानूनो और नीतियों के साथ साथ कानून लागू करने वाली ऐंजेंसियों और प्रबुद्ध समाज समूहों के बढते सहयोग से हिंसा और दुर्व्यवहार के मामले में सहायता लेने के लिए महिलाओं को सशक्त बनाया जा रहा है इसकें अलावा कानून के कार्यन्वयन में सुधार के प्रयास किये जा रहे है।

दहेज निषेध अधिनियम 1961 में विवाह के लिए पूर्व ष्ट्यार्त के रूप में दहेज मांगने और देने पर प्रतिबंध का प्रावधान किया गया है किंतु क्या कानून बनने के बाद दहेज प्रथा जैसी सामाजिक महामारी रूकी नहीं और निरंतर बढती जा रही है।

गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (पी.सी / पी.एन.डी.टी.) अधिनियम 1994 भ्रूण लिंग निर्धारण करने के लिए प्रसव पूर्व तकनीको के उपयोग पर रोक लगाता है इसके बावजूद प्रसव पूर्व लिंग जांच एवं भ्रूण हत्या अनवरत जारी है।

देश भर में कई गैर सरकारी संगठन महिलाओं के लिए परामर्श, कानूनी सहायता और अजीविका कार्यक्रम चलाते है तािक वे अधिक सशक्त और आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो सके। यह महिलाओं के सामाजिक और राजनीतिक सशक्तिकरण का बढावा देने के लिए सरकार की पहल के सामांनांतर है भारत में स्थानीय निकायों में महिलाओं काें 33 प्रतिशत सीटां के आरक्षण से इनके राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि हुई है गोवा में आधी सीट आरक्षित है।

ं इन प्रयासों के बावजूद स्त्री पुरूष असमानता तथा स्त्री हत्या निरंतर जारी है महिलाओं के खिलाफ हिंसा सामाजिक तथा सांस्कृतिक वैधता और उनके साथ भेदभाव को समाप्त करने के लिए भी कानून आवश्यक है हांलािक केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है।

महिलाओं के हित में कानून प्रतीकात्मकता से आगे बढे और प्रभावी ढंग से लागू किये जाये। महिलाओं कें साथ भेदभाव को देखते हुए स्त्री हत्या को रोकना बेहद मुश्किल है, वास्तव में महिलाओं के प्रति हिंसा भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ढांचे में अंतर्निहित है, स्त्री—पुरूष असमानता के प्रति प्रतिक्रिया व्यापक स्तर पर होनी चाहिए और मजबूत कानून, लिंग संवेदनशील कानून प्रवर्तन नीतियों तथा प्रोटोकॉल का विकास और कार्यन्वयन, जमीनी स्तर पर जागरूकता, हिंसा का सामना करने वाली महिलाओं और परिवारों की सहायता और महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अधिकार दिये जाने चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ -

- 1. महिला अधिकारिता : एक विश्लेषण : ऋतु सारस्वत, योजना अक्टूबर 2007 पृ.क्र. 127।
- 2. स्त्रियों : नया दौर और नयी हकीकत : डॉ. क्षम शर्मा, मनोरमा इयर बुक 2007।
- 3. इण्डिया टुडे 23 अगस्त 2006 नई दिल्ली पृ. 25।
- 4. महिला विकास : एक परिदृश्य : स्वप्निल सारस्वत नयन प्रकाशन नई दिल्ली।



महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा में दहेज कुप्रथा की भूमिका डॉ. रचना श्रीवास्तव

प्राध्यापक समाजशास्त्र, शास. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,रीवा,मध्य प्रदेश।

Article Info

Volume 5, Issue 1

Page Number: 67-72

Publication Issue:

January-February -2022

Article History

Received: 05 Feb 2022 Published: 15 Feb 2022

सारांश-वर्तमान समय पर दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों के देखने एवं विभिन्न समाचार पत्रों के अध्ययन पर ऐसा महसूस होता है कि अपना देश महिलाओं के विरूद्ध घटित होने वाले अपराधों का प्रशिक्षण केन्द्र बना हुआ है। ऐसा कोई भी दिन नहीं होता जबिक महिलाओं के विरुद्ध घटित अपराधों की एक लंबी श्रृंखला देखने को न प्राप्त हो। नववध् की हत्या एवं आत्महत्या की घटनाओं से समाचार पत्र रक्तरंजित रहते हैं। समाज में अचानक महिला विरोधी अपराधों की ऐसी बाढ आ गई है, जो विद्वानों की समझ शक्ति से परे है। इन अपराधों से लोगों की मानसिकता उजागर (स्पष्ट) हो रही है। लोगों का समाज से कोई लेना-देना नहीं है। पति-पत्नी के संबंध जिस तरह से होने चाहिए वह बिल्कुल नहीं हैं, जो परिस्थितियों को गंभीर बनाकर महिला अपराधों को बढ़ावा दे रहे हैं। समाज के लोगों का पतन हो चुका है। समाज के लोगों में धन लोलुपता का बीज जो कभी अंकुरित हुआ था, वर्तमान समय में विशाल वृक्ष का स्वरूप धारण कर लिया है। लोगों की मानसिकता मात्र धन प्राप्ति की हो चुकी है। महसूस हो रहा है कि समाज के इन विकृत छवि के लोगों के मन में पालन पोषण के समय से ही महिलाओं के प्रति नफरत के विषैले बीजों का रोपण कर दिया गया था, जो वर्तमान समय पर घरेलू हिंसा से प्रारंभ होकर दहेज के लिए हत्या जैसे विभिन्न घिनौने अपराधों के विकराल स्वरूपों तक लोगों के घर-घर तक फैली हुई है। लोगों की धनलोल्पता का आकर्षण ही लोगों को दहेज की ओर आकर्षित करती है, जिसके परिणामस्वरूप संपूर्ण समाज दहेज कुप्रथा व महिला अपराधों की ओर अग्रसर होता जा रहा है। अपराध सार्वभीम होते हैं। ये होते रहे हैं, हो रहे हैं तथा सदैव होते रहेंगे। मानवीय सामाजिक जीवन व्यतीत करने के कर (टैक्स) के रूप में अपराधों को सहन करना पड़ता है। परन्त् पिछले कुछ दशकों में नारी के प्रति अपराध एवं हिंसात्मक अपराध की घटनाओं में काफी वृद्धि हुई है। यह समाज वैज्ञानिकों, नीति–निर्धारकों, समाज सुधारकों व अन्य सभी के लिए एक गहन चिन्ता का विषय बना हुआ है। मानवीय इतिहास में होने वाली ऐसी घटनाओं की वृद्धि वस्तुतः चिन्ता का एक विषय है।

मुख्य शब्द – नारी, घरेलू, हिंसा, दहेज, कुप्रथा,कानून, सामाजिक, घटना, अपराध।

प्रस्तावना—आज नारी के प्रति अनेक प्रकार के अपराध हो रहे हैं। 'अपराध' कानूनी रूप से परिभाषित शब्द ही नहीं है अपितु सामाजिक दृष्टि से भी परिभाषित शब्द है। सामाजिक दृष्टि से इसे सामाजिक नियमों का उल्लंघन या विचलन कहा जाता है। नारी को शारीरिक व मानसिक यातनाएँ देना, उसके साथ मार—पीट करना, उसका शोषण करना, भूखा—प्यासा रखकर या जहर आदि देकर उसको दहेज की बिल चढ़ा देना निश्चित रूप से नारी के प्रति अपराध ही कहे जाएँगे। पूरे देश में नारियों के प्रति अपराधों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

सिसेर बकारिया संभवतः प्रथम अपराधशास्त्री थे जिन्होंने अपराध को एक सामाजिक रोग निरूपित किया। उनका तर्क था कि जिस प्रकार रोगी के लिए दवा की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अपराधी के लिए दण्ड की व्यवस्था आवश्यक है। इस धारणा के कारण दण्डशास्त्रियों का मानना है कि आपराधिकता से संघर्ष को दिरद्रता, शोषण, बीमारी, नशाखोरी तथा वेश्यावृत्ति के विरुद्ध संघर्ष माना जाना चाहिए। आशय यह है कि यदि समाज से इन बुराइयों को समाप्त किया जाए, तो अपराध निवारण की समस्या सरलता से हल हो सकेगी। तथापि कुछ अपराध ऐसे हैं जिनके प्रति यह प्रकल्पना लागू नहीं होती है क्योंकि वे मानव की मनोवृत्ति के कारण घटित होते हैं। दूषित मनोवृत्ति वाले अपराधियों के विषय में डॉ० पी० के० सेन द्वारा कहा गया है कि ऐसे व्यक्तियों का केवल अस्तित्व ही समाज के लिए भय और आतंक का कारण बना रहता है फिर चाहे वे कोई दुष्कृत्य करें या न करें ये अपराधी कभी भी अपराध कर सकते हैं और इस प्रकार समाज के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। अतः समाज में इनकी केवल उपस्थिति ही लोगों के लिए भय और चिन्ता का विषय बनी रहती है।

ऐतिहासिक स्थिति —िविभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन पर दहेज के संबंध में कुछ जानकारियां इस प्रकार प्राप्त होती है। ये स्त्रोत सूर्य (सूर्य की पुत्री) तथा सोम (यानि चन्द्रमा) के विवाह पर आधारित रुपक में उल्लेखित हैं। इनमें बताया गया है कि वधू सुन्दर वस्त्रों से सज धजकर नेत्रों, सिर आदि का श्रृंगार कर अपनी सिखयों के साथ अपने होने वाले पित के घर के लिए रथ में प्रस्थान करती है। उसका दहेज उसके रथ में एक बक्से में रखा होता था। इसी प्रकार अथवंवेद में उल्लेखित है जिसमें राजघरानों की वधुएं अपने साथ दहेज में सौ गाएं लाती थीं। अथवंवेद में ही एक और सन्दर्भ है जिसमें एक राजा को श्राप दिया गया कि उसकी रानी उसके लिए कोई दहेज नहीं लाएगी। एक "स्मृति" में यहां तक कहा गया है कि सौदेबाजी के आधार पर तय किया गया विवाह "पशु विवाह" है, लेकिन इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि कौन सा पक्ष धन वसूल करता था।

द्रोपदी, सीता, सुभद्रा, उत्तरा सभी को विवाह के समय उनके माता—िपता द्वारा मूल्यवान उपहार, घोड़े, हाथी और जवाहरात दिए गये थे। जातक कथाओं में भी उल्लेख है कि किस प्रकार मूल्यवान उपहार विवाह के समय वर को दिए जाते थे। तुलसीदास के रामचरित से भी यह संकेत मिलता है कि दहेज प्रथा प्रचलित थी। आज के संदर्भ में इतना स्पष्ट है कि जो उपहार विवाह के समय दिए जाते थे, वे दहेज समझे जाते थे, लेकिन उस समय यह उपहार ऐच्छिक रुप से स्नेहवश दिये जाते थे। दहेज, कन्यादान संस्कार का एक भाग होता था, जो कि आज के दहेज से बिल्कुल भिन्न था। ऐसा प्रतीत होता है कि दहेज प्रथा जैसी आज प्रचलित है, अतीत में नहीं थी। केवल राज परिवारों या कुलीन परिवारों में ही विवाह के समय वर को उपहार दिये जाते थे। हमारी स्मृतियों में आठ प्रकार के विवाहों को मान्यता दी

गई है। केवल "ब्राह्म" विवाह में ही पिता अपनी कन्या उत्तम व योग्य वर को उपहार सहित देता था। इस प्रकार दहेज में दिए जाने वाले उपहार केवल पिता की इच्छा पर आधारित होते थे।

दहेज की अवधारणा —साधारण अर्थ में ''दहेज से अभिप्राय उस धन व उपहारों एवं वस्तुओं से है, जो कि पत्नी विवाह में अपने पित के लिये लाती है''। मैक्स रेडिन के अनुसार— ''वह सम्पित्त जो व्यक्ति विवाह के समय अपनी पत्नी या उसके रिश्तेदारों से प्राप्त करता है''। ऐसी ही परिभाषा ब्रिटानिक विश्वकोश में दी गई है जिसके अनुसार दहेज "वह सम्पित्त है जो एक स्त्री को उसके विवाह के समय दी जाती है"। किन्तु विवाह में प्राप्त हुई वस्तुएं क्योंकि वधू की ही निजी सम्पित्त होती है और कुछ वर या वर के माता—पिता को दी जाती है, अतः दहेज की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है:— "वे उपहार व मूल्यवान वस्तुएं जो वधू, वर व उसके रिश्तेदारों को विवाह में मिलती है।''

प्राचीन काल में धार्मिक आधार पर दहेज "दक्षिणा (स्वेच्छा से दिया गया उपहार माना जाता था, किन्तु अब यह अनिच्छा से दिया जाता है। जगदीश चन्द्र जैन द्वारा कहा गया है कि बौद्ध काल में भी दहेज का प्रचलन था। मुस्लिम काल में भी दहेज के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं सन्त तुकाराम ने अपनी पुत्रियों के विवाह में गाँव वालों की मदद से दहेज दिया। चैतन्य महाप्रभु के श्वसुर अपनी कन्या का विवाह उनसे करने में संकोच कर रहे थे क्योंकि मध्यम वर्गीय परिवार में दी जाने वाली दहेज के उपहार जुटाने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहे थे। राजपूताना में विशेष रूप से मध्ययुग में दहेज प्रथा ने भयानक रूप धारण कर लिया था, यद्यपि यह राजा महाराजाओं तक ही सीमित था।

दहेज की देय धनराशि लडके की नौकरी व आमदनी, लडकी के पिता का आर्थिक व सामाजिक स्तर, लडके के परिवार की सामाजिक प्रतिष्टा, लडकी व लडके की शिक्षा, लडकी की नौकरी व वेतन, लडकी का सौन्दर्य व शारीरिक गठन, लड़के व लड़की के परिवार की संरचना तथा सुखद भविष्य की सुरक्षा आदि कारकों को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाती है। इसमें महत्वपूर्ण बात यह है कि कन्या के माता-पिता रुपया और उपहार न केवल विवाह के समय देते हैं, बल्कि वे पित के परिवार को उपहार जीवन भर ही देते रहते हैं। मेक्किम मेरियट का मानना है कि इसके पीछे भावना यह है कि व्यक्ति की पुत्री या बहन दूसरे नातेदारी समूह की असहाय सम्पत्ति बनकर रह जाती है। अतः उसके ससुराल वाले उसको सुखी रखें, इस उद्देश्य से कन्या के माता–पिता वर पक्ष के लोगों की समय समय पर खूब आवभगत करते हैं। घरेलू हिंसा –आज नारी के प्रति आपराधिक हिंसा ही नहीं बढ़ रही है, अपितु घरेलू हिंसा में भी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। घरेलू हिंसा का सम्बन्ध घर–गृहस्थी में नारी का किया जाने वाला शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न है। विवाह के समय नारी सुनहरे स्वप्न देखती है कि अब प्रेम, शान्ति व आत्म–उपलब्धि का जीवन प्रारम्भ होगा। परन्तु इसके विपरीत सैकड़ों विवाहित नारियों के यह सपने क्रूरता से टूट जाते हैं। वे पित द्वारा मार-पीट और यातना की अन्तहीन लम्बी अंधेरी गुफाओं में अपने आपको पाती हैं, जहाँ उनकी चीख-पुकार सुनने वाला कोई नहीं होता। दुःख तो यह है कि ऐसी मार-पीट का जिक्र करने में भी उन्हें लज्जा अनुभव होती है और यदि वे शिकायत भी करें तो खुद उन्हें ही दोषी माना जाता है या उन्हें भाग्य के सहारे चूपचाप सहने की सलाह दी जाती है। पड़ोसी ऐसे मामलों में प्रायः हस्तक्षेप नहीं करते क्योंकि यह पति-पत्नी के बीच एक निजी मामला समझा जाता है। यदि पुलिस में रिपोर्ट करने जाएँ तो वहाँ भी रिपोर्ट लिखने में आनाकानी की जाती हैं। पुरुष को पत्नी की पिटाई का अधिकार है, आम आदमी यह मानकर चलता है। दुर्भाग्य की बात है कि ऊपर से शांत और सम्मानित प्रस्थिति वाले अनेक परिवारों में, जहाँ पति-पत्नी दोनों शिक्षित और आत्म-निर्भर हैं, वहाँ भी मार-पीट की घटनाएँ होती हैं। ऐसी स्थिति में सामाजिक दृष्टि से नारी बड़ा असहाय महसूस

करती है क्योंकि वह जहाँ कहीं शिकायत करें पड़ोसी, उसके सगे—सम्बन्धी, पुलिस, वकील या जज, सभी उसे समझौता करने की ही सलाह देते हैं।

सोनल के अनुसार इस घरेलू हिंसा के विरुद्ध संगठित प्रयास किया जाना जरूरी है। नगरों में नारियों को परस्पर बातचीत करना सीखना चाहिए और एक—दूसरे के अनुभवों से फायदा उठाना चाहिए। सबसे बड़ी जरूरत तो ऐसे संरक्षण गृहों की है, जहाँ ऐसी परिस्थिति में नारी अपने बच्चों के साथ सिर छिपा सके और फिर इसी दशा में आवश्यक कदम उठा सके। यहाँ यह बता दिया जाना आवश्यक है कि कानून की दृष्टि से नारी के प्रति यह घरेलू हिंसा एक अपराध है और पुलिस का यह दायित्व है कि ऐसे मामलों की जाँच करे। किसी भी व्यक्ति के प्रति हिंसा निजी विषय नहीं हो सकती, यह तो सार्वजनिक मामला है। घरेलू हिंसा में दहेज हत्याएँ, पत्नी को पीटना, मानसिक प्रताड़ना, विधवाओं तथा बुजुर्ग नारियों पर अत्याचार इत्यादि को प्रमुखतः सम्मिलित किया जा सकता है।

दहेज कुप्रथा के कारण अन्य अपराध —समाज में दहेज रूपी कुप्रथा होने के कारण बहुत से ऐसे अपराध समाज में घटित होते हैं जो सीधे—सीधे लोगों के निगाह में नहीं आ पाते परन्तु समाज में इसके भविष्य में अनेक दुष्परिणाम प्राप्त होते हैं जिन्हें निम्न स्वरूपों में अध्ययन किया जा सकता है।

- (1) दहेज की आशंका के कारण अनेक माता-पिता अपने बच्चियों को उच्च शिक्षा से वंचित रखते हैं।
- (2) दहेज के लिये पैसा बचाने के उद्देश्य से बच्चियां कोचिंग आदि स्विधाओं से वंचित रह जाती हैं।
- (3) इसी तरह के अनेक छोटे—छोटे खर्चों पर लोग नियंत्रण करके बिच्चयों की अनेक जरूरतों को रोककर उनके दहेज की रकम एकत्रित करते हैं और बिच्चयों के बचपनों की आवश्कताओं पर अकारण रोक लगाई जाकर उनके बचपन के अधिकारों से वंचित कर उनके साथ एक ओर अपराध किया जाता है।

इसी प्रकार समाज में बच्ची के जन्म के पश्चात् ही अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं जिसकी मुख्य जड़ दहेज कुप्रथा ही है।

दहेज हत्याएँ — भारतीय समाज में नारी के लिए विवाह में दहेज अनिवार्य माना जाता है, इसलिए यह एक भयंकर समस्या बनती जा रही है। आए दिन समाचारपत्रों में दहेज की शिकार अभागी नारियों के जलाने की घटनाओं का विवरण छपा होता है। पिछले कुछ वर्षों में ऐसी घटनाओं का प्रतिशत बढ़ता ही जा रहा है और दहेज का समाज के प्रत्येक समुदाय में प्रसार भी होता जा रहा है। इसके विरुद्ध हाल ही में कठोर कानून भी बनाए गए हैं, पर पित के परिवार में अकेली नारी क्या करे, पिता या भाई भी कब तक विवाहित बेटी या बहन को अपने घर पर रखे। कहीं—कहीं आर्थिक किठनाई उन्हें मजबूर करती है कि वे उसे पित के घर वापस भेज दें और कहीं—कहीं सामाजिक निन्दा उन्हें मजबूर करती है कि वे बेटी के लालची ससुराल वालों के साथ समझौता करने का प्रयत्न करते रहें। परिणाम अभागी नारी की मृत्यु व प्रताड़ित होना ही होता है।

अधिकांश दहेज हत्याएँ पित के घर में पित पक्ष के लोगों द्वारा एकान्त में की जाती हैं। इनका कोई अधिक ठोस प्रमाण न मिल पाने के कारण पित तथा पित पक्ष के लोग ऐसा करने पर भी कई बार बच जाते हैं। अनेक दहेज हत्याओं को सामान्य मृत्यु बता दिया जाता है और इस प्रकार से उनकी कोई सूचना भी प्राप्त नहीं हो पाती।

राम आहूजा द्वारा दहेज हत्याओं के संबंध में निम्न जानकारी दी गई है:-

- मध्यम वर्ग की नारियों में दहेज हत्याएँ निम्न तथा उच्च वर्ग की नारियों की तुलना में अधिक होती हैं।
- 70 प्रतिशत दहेज हत्याओं की शिकार नारियाँ 21 से 24 वर्ष की आयु की होती हैं।
- दहेज हत्या एक उच्च जाति प्रघटना है न कि निम्न जाति की समस्या ।
- दहेज हत्या से पहले युवा दुलहनों का अनेक प्रकार से उत्पीड़न किया जाता है।
- दहेज हत्याओं के प्रमुख प्रेरक पित का स्वेच्छाचारी व्यक्तित्व, प्रभुताशाली प्रकृति व व्यक्तित्व में असामंजस्य इसके
 लिए उत्तरदायी प्रमुख हैं।
- दुलहन की शिक्षा व उसकी दहेज हत्या में कोई सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है।
- दुलहन को जिन्दा जला देने के मामलों में परिवार की रचना प्रमुख भूमिका निभाती है।

दहेज कुप्रथा नियंत्रण के सुझाव —िजस कार्य को समाज करने में अक्षम या असमर्थ हो वहाँ पर सरकार को समाज हित में नये कानूनों का निर्माण किया जाकर उन्हें शक्ति से पालन कराने के प्रयास किये जाने चाहिए। देश की पचास प्रतिशत आबादी महिलाओं व बच्चियों की है जिनकी सुरक्षा जो समाज हित में भी है, इसके लिए सरकार को कठोर निर्णय लिये जाने चाहिए जिसके लिये कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार हैं —

- (1) बच्चियों को किसी भी स्थिति में पढ़ाई से वंचित नहीं होने दिये जाने का अधिनियम बनाया जाना चाहिए।
- (2) किसी भी घर में जन्मे पुत्र व पुत्री में किसी भी तरह पुत्री की पढ़ाई का स्तर कम नहीं होना चाहिए।
- (3) पुत्री की पढ़ाई में कमी करने वाले लोगों को शासन की योजनाओं के लाभ से वंचित किया जाना चाहिए।
- (4) ग्रामीण क्षेत्रों में वर्तमान में भी लड़िकयों को कम पढ़ाया जा रहा है लोगों को बिच्चयों को पढ़ाने हेतु जागरूक किया जाना चाहिए।
- (5) जो लोग बच्चियों को न पढ़ा रहे हों उन्हें समाज के कार्यों से बहिष्कृत किया जाना चाहिए।
- (6) शिक्षा ही वह शस्त्र है जिससे हर प्रकार के युद्ध जीते जा सकते हैं, अतः बिच्चयों को शिक्षित ही नहीं बिल्क उच्च शिक्षित किये जाने के प्रयास से ही दहेज रूपी कुप्रथा से विजय प्राप्त की जा सकती है।

उपसंहार —नारियों के प्रति हिंसा इसलिए महत्त्वपूर्ण मानी जाती है कि जिससे उसे प्यार करने व संरक्षण प्रदान करने की आशा की जाती है वही उसे पीटना शुरू कर देता है। यह पित पर पत्नी के विश्वास को पूर्णतः भंग कर देता है। कई बार ऐसी घटनाएँ पित नशे में भी अधिकतर करते हैं परन्तु सामान्यतः भी ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। वह सारा अत्याचार चुपचाप सहन करती है और अपने भाग्य को कोसती रहती है।

समाज में दहेज ही ऐसी कुप्रथा है जो महिलाओं को घरेलू हिंसा से प्रारंभ होकर हत्या तक के अपराधों से पीड़ित कर रखा है। वास्तविकता यही है कि यदि विवाह पश्चात् लड़की पक्ष से दहेज की लालसा न हो तो निश्चित है कि महिलाओं की अनेक समस्याएं स्वमेव समाप्त हो जावेगी महिला अपराधों की नींव ही दहेज कुप्रथा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1. अग्रवाल जी.के.-सामाजिक विघटन, आगरा बुक स्टोर आगरा, तृतीय संस्करण 1982
- 2. आहूजा राम –भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर 1999
- 3. परांजपे डॉ. ना.वि.—अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन सेंट्रल लॉ. पब्लिकेशंस इलाहाबाद 2003
- 4. महाजन डॉ. धर्मवीर— अपराध शास्त्र, विवेक प्रकाशन दिल्ली 2013 एवं डॉ. कमलेश
- 5. मिश्रा डॉ. आराधना अपराधशास्त्र एवं न्यायिक विज्ञान, अनिल प्रिंटर्स एण्ड एवं डॉ. शालिकरामस्टेशनर्स रीवा 2020
- 6. वरे डॉ. एस.एल. –भारतीय इतिहास में नारी, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल 2009



Perception of Environmental Consciousness in Vedic Literature

Dr. Amit Kumar Tiwari

Assistant Professor, Rana Pratap P.G. College, Sultanpur, U.P., India

Article Info

Volume 5, Issue 1

Page Number: 73-78

Publication Issue:

January-February -2022

Article History

Received: 05 Feb 2022 Published: 15 Feb 2022 Abstract - Environment is surrounding the whole gamut of diverse. It includes the land, water, vegetation, air and the whole range of the social order and covers all the disciplines that effect and describe these interactions. Our mother earth is currently facing a lot of environmental concerns like global warming, acid rain, air pollution, waste disposal, pandamic, water pollution, ozone layer depletion and many more affect every human, animal and nation on this planet. The Vedic literature give us the genuine principles to adjust with our environment and lead a spiritual life full of blies. While things have changed for the worse over time and contemporary society is for removed from the environment, ancient India is a splendid contract. Indian life rotates around Indian literature contain in Vedas, Upanishads, Epic and the Puaranas with Dharmshastras in the backgrowd. Veda is considered the main source of knowledge it is the need of the hour that we look back into our past and adopt the rich tradition that will enable us to live in harmony with nature.

Keywords - Rigveda, Yajurveda, Atharva Veda, Upanishadas, Aaranyaks, Brahmans, Bio-diversity, Ecological, Conservation, Atmosphere, Traditions, Spiritual, Consciousness, Sustainable.

Environmental conservation and natural resource management has been in the traditions of the Indian society, expressing itself variously in the management and utilization practices. This evolved through the continued historical interaction of communities and their environment, giving rise to practices and cultural landscapes such as sacred forests and groves, sacred corridors and a variety of ethno forestry practices. This has also resulted in conservation practices that combined water, soil and trees. Nature society interaction also brought about the socio cultural beliefs as an institutional framework to manage the resultant practices arising out of application of traditional knowledge. The attitude of respect towards earth as mother is widespread among the Indian society. Biodiversity is defined as variability and variety in life form including genes, species and ecosystems. Biological resources feed and clothe us and

provide housing, medicine and spiritual nourishment. Biodiversity conservation seeks to maintain life support systems provided by nature. There are many references scattered in ancient Indian literature emphasizing the conservation of environment. These references and descriptions go well with India's cultural heritage which in essence has been conservational in approach.

The Vedas are the best source of knowledge of ancient civilizations, and they are replete with instances of how learned men in those times devoted their lives to understanding the bond between nature and man. The very last volumes and annexure of the Vedas, which are also known as the Upanishads or Aaranyaks, also stress on the importance of prayer. For instance, the Mundakponishad states that meditation and deep thinking expands the human consciousness and that increases our productive capabilities. It implies that by adhering to these dharmic principles we uphold virtue and move closer to immortality. The Brihadaranyopanishad describes the creation of the cosmos. It says, "In the beginning, there was water everywhere. It is from this water that life originated. Lord Brahmha guided all creation and anointed Prajapati the King of all Gods. It was this Prajapati who then created the other Gods, who in turn melded the Life force into various shapes, colours and textures." This description is carried forth in the Taittiriya Upanishad, where the verses state that the universal consciousness created the sky, the natural environment and man and that this one singular soul was imbibed by every single creature created. Thus we are all one. But perhaps the most significant verse, for the purpose of our present discussion, is one from the Brihadaranyopanishad that clarifies that this universal consciousness that is responsible for all creation is none other than nature.

Rigveda especially mentions about environment on several occasions. A verse from the Rig-Veda states that "The sky is like father the earth like mother and the space as their son. The universe consistence of the three is like a family and any kind of damage done to any one of the three throws the universe out of balance¹." Vedic culture and Vedic scriptures reveal a clear concept about the earth's ecosystems and the necessity for maintaining their balance. Another verse from Rig-Veda says, "Thousands and Hundreds of years if you want to enjoy the fruits and happiness of life then take up systematic planting of trees." These verses carry a message to desist from inflicting and injury to the earth and embark upon constant a forestation for survival or else the ecological balance of the earth would be jeopardized. Rig Veda has dwelt upon various components of the ecosystem and their importance. "Rivers occasion widespread destruction if their coast and damaged or destroyed and therefore trees standing on the coast should not be cut off or uprooted." Modern civilization is experience the wrath of flood due to erosion of river embankments everywhere and only tree plantations along river banks cannot prevent erosion.

The Athrava Veda also mentions about the importance of the water and green plants essential for human existence. Although there was as such no concept of the word "Pollution" those days dust was referred in terms of "poisoning" of environment. The Athrav Veda recalls that three things cover the universe the air, water and plants and they are essential for all lives on earth to exist. "Plants and herbs destroy poisons (pollutants).²" Purity of atmosphere checks poisoning (pollution)³." Some herbs purify the air. The fragrance of guru (commiphora Mukul) purifies the air and cure diseases⁴. Athrava Veda has also warned not to dirty and add toxic substances into water bodies as it may lead to spread of diseases. "He

who dirties or spoils ponds, lakes, rivers, etc. or cause smell near residential areas is liable to chastisement." This is very relevant in the context of pollution of rivers and lakes and the resulting ecological diseases which the modern civilization is experiencing. Great significance is being attached to the peepal tree with respect to environment. The National Botanical survey of India (NBRI) Lucknow has identified about 150 trees and herbs including peepal which are pollution fighters. They are able to intercept several toxic gases and dusts and also infuse the atmosphere with plenty of oxygen. Athrava Veda (12.1.11) hymn somewhere amidst deep forests reads. "O Earth! Pleasant by thy hills, snow clad mountains and forests. O numerous coloured firm and protected Earth! On this earth I stand, unsling and unhurt."

The Yajurveda too mentions about plants and animals the ill effects of cutting of trees and the poisoning of the atmosphere. but it also discusses about energy relations of the global ecosystem. "No persons should kill animals helpful to all5." "O King you should never kill animals like bullocks useful in agricultural or like cows which gives us milk and all other helpful animals and must punish those who kill or do harm to such animals⁶." "The oceans are treasure of wealth protect them⁷." "Do not poison (pollute) water and do not harm or cut the trees8." "Do not disturb the sky and do not poison the atmosphere9." About the flow of energy in the global ecosystem the Yajurveda says the whole universe is full of energy in which the sum is at the centre and the ultimate source of energy for all living organisms on earth. The net energy flows from the point of production to the point of consumption through the plants, animals human beings, the air, water and land is completely under the control of almighty. While energy flow and balance is maintained in the universe yet some imbalance this causes several natural disturbances like untimely rain, heavey rain, drought and flood, warm winter and cool summer. "The earth provides surface for vegetation which controls the heat build-up. The herbs and plants having union with sun rays provide congenial atmosphere for the life to survive10." Now global warming is an established phenomenon. The carbon dioxide build up in the atmosphere (due to burning of fossil fuels) and the global deforestation are major factors of global warming. The green plants (forests) through the process of photosynthesis works as a natural sink absorbing all the carbondioxide and help in reducing the warming effect. Green plants give out plenty of oxygen during photosynthesis and also directly absorb the solar heat radiation of the atmosphere to give out water vapour in the process of transpiration. The combined effects of the two process make the environment cool and congenial for survival of all life.

The Upanishads are the final stage in the development of Vedic literature consisting of answers to some philosophical questions. The Upanishads sages perceived the existence of God in trees and other plants and those they were gifted to man as a companion for natural survival. "The God who exists in the universe, live in air, water, in fire and also in trees and herbs, men should have reverence for them." Brihadaranyaka Upanishad¹¹ equates trees with human beings as follows "Just like a tree, the prince of the forest so the man is in truth. In the Taittariya Upanishad¹² certain norms were prescribed for human beings to keep the environment clean. "One should not cause urine and stool in water, should not spit in water and should not take bath without clothes." The Isopanishad has revealed the secrets of existence of life on earth and the importance of every organism for mutual survival. "The universe along with its creatures belongs to the Lord. No certain is superior to any other. Human beings should not be above nature. Let no one species encroach into the rights and privileges of other species." These verses from the

Isopanishad uttered thousands of years ago is true and have become even more relevant today as the modern human civilization armed by the technological weapn made arrogant of his scientific knowledge and compelled by the every increasing greed for material achievement is systematically encroaching into the living rights of all other life forms on earth by using, misuing, exploiting and over exploiting the finite and scares natural resources of earth. The concept of 'sustainable development' which the modern environmentists are harping upon to use the natural judiciously for a more stable development and without impairing with the abilities of the future generations to use those resources and without interfering into their living rights was perhaps inspired by these verses of the Isopanishad.

The age of Upanishads was followed by the age of the 'Brahmans' text which elucidated aspects of human nature like the thirst for knowledge wisdom, respect for others, gratitude and other conduct within human society. Once again people began directing all their energies towards social intercourse and the pursuit of happness, and became for removed from their natural surroundings. But the more people pursued pleasure the more society was afflicted with violence, unhappiness, hurt, pain and general degradation. Power structures fell into the hands of people who had no respect for nature, and saw it merely as a source of personal riches. People entrapped by greed and arrogance, began competing for these resources.

The Pauranic literature belonging to 4th Century A.D. also contains messages related to the conservation of environment. In Narasimhapuran killing of birds for eating was prohibited. "O, wicked men if you kill a bird then you are bathing in a river, pilgrimage, worship and yangs are all useless." God Keshava is pleased with a person who does not harm or destroy other creatures or animals (Vishnu Purans). The puranas also recalls the virtues of plants and trees and stressed on the need to tree plantations. "The inhabitants of a house which has sacred basil (osmium sanctum) are fortunate¹³." "The Yama do not enter a house where sacred basil is worshipped every day¹⁴." The Varah Puran says that One who plants a peepal, one neem, one Banayan, Two pomegranates, two orange, five mango trees and ten flowering plants or creepers shall never go the hell¹⁵. The practice of Vanmahotsava (Tree plantation ceremony) is over 1500 years old in India. The Matsya puran tells about it. Agnipuran says that the plantation of trees and creations of gardens lead to eradication of sin. In Padma Puran the cutting of a green tree is an offence punishable in hell¹⁶.

Water management and associated tree growing has been the subject of ancient text. Tanks have been the most important source of irrigation in India. Some tanks may date as far back as the Rig Vedic period, around 1500 BC. The Rig Veda refers to lotus ponds, ponds that give life to frogs and ponds of varying depths for bathing¹⁷. Reference to the tanks is also found in the Arthashastra of Kautilya. The Arhastastra refers to the ownership and management of the village tanks in the following verses: Waterworks such as reservoirs, embankments and tanks can be privately owned and the owner shall be free to sell or mortgage them. The ownership of the tanks shall lapse, if they had not been in use for a period of five years excepting in case of distress. Owners may give water to others in return for a share of the produce grown in the fields, parks or gardens. In the absence of owners either charitable individuals or the people in village acting together shall maintain waterworks. No one will sell or mortagage, directly or indirectly a bund or embankment built and long used as a charitable public undertaking except when it

is in ruins or has been abandoned¹⁸. The earliest scholar to have commented on the relationship of tanks and trees in Varahamihira who described the detailed technical instructions for the tank constructions in his famous work Brihatsamhita. Without the shade of the trees on their sides water reservoirs do not look charming therefore one ought to plant the gardens on the banks of the water¹⁹. Commenting on the species to be planted on the embankments of the tank, after its construction, Varahamihira writes: The shoreline of the tanks hould be shaded with the mixed stands of Arjun (Terminalia arjuna), Vata (Ficus benghalensis), Aam (Mangifera indica), Pipal (Ficus religiosa), Nichul (Nauclea orientalis), Jambu (Syzygium cuminii), Neem (Mitragyna parvifolia), Kurvak, Tal (Borassus flabellifer), Ashok (Saraca asoka), Madhuk (Madhuca indica) and Bakul (Mimusops elengi)²⁰.

In conclusion it is clear that the Indian consciousness has always recognized the power and supremacy of nature. While things have changed for the worse over time and contemporary society is far removed from the environment, ancient India is a splendid contrast. Ancient civilizations respected nature, as reflected both by their lifestyles and the complex web of mythology and legends that have been passed down to us from those days. This love for nature coexisted with a deep reverence for God. At regular intervals in history, societies grew more complex and less intimate with nature. Yet each time that human kind forgot the power of nature, it was only divine intervention that prevented certain apocalypse. Today's society, unfortunately, is neither nature loving nor God- fearing. We worship only material wealth and think nothing of exploiting our natural surroundings in order to increase this wealth. Today we are standing on the verge of another great cataclysm, but it is unlikely that God will intervene this time to rescue a people who have forgotten him and have discarded their traditions so completely. It is the need of the hour that we look back into our past and adopt the rich traditions that will enable us to live in harmony with nature. We must rediscover our roots, value morality and strength of character more than we value money and we must strive to follow the ancients path of virtue and righteousness, which will lead to God. The Mahabharata, Ramayana, Vedas, Upanishads, Bhagavad Gita, Puranas and Smriti contain the earliest messages for preservation of environment and ecological balance. Nature or Earth, has never been considered a hostile element to be conquered or dominated. In fact man is forbidden from exploiting nature. He is taught to live in harmony with nature and recognize that divinity prevails in all elements, including plants and animals. The rishis of the past have always had a great respect for nature. Vedic message is clear that environment belongs to all living beings, so it needs protection by all, for the welfare of all.

REFERENCES –

- 1 Rigveda, 7.49.2
- 2 Athrava Veda, 8.7.10
- **3** Ibid, 8.2. 25
- 4 Ibid, 19.38.1
- 5 Yajurveda, 13.37
- 6 Ibid, 13.49

- **7** Ibid, 38.22
- **8** Ibid, 6.33
- **9** Ibid, 5.43
- 10 Athrava Veda, 5.28.5
- 11 Brihadaranyakopnishad, 3.9.28
- 12 Taittiriya Upanishad, 5.101
- 13 Padampuran, 59.7
- 14 Skandpuran, 21.66
- **15** Varahpuran, 172.39
- **16** Padmapuran, 56.40-41
- **17** Rigveda, 5.78.7, 7.103.2, 10.71.7
- **18** Arthashastra, 3.9.32 35, 3.10. 1-3
- 19 Brihatasmhita, 55.1
- **20** Ibid, 54.119



अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति

मयंकपाण्डेय.

शोधच्छात्रः, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नई दिल्ली

सारांशिका- अस्मिन् शोधपत्रे अभ्यासिवकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्तीति परिभाषेन्दुशेखरस्थां परिभाषामाश्रित्य कोटिक्रमेण परिभाषाप्रतिपाद्यविषयाणां विचार: कृतो वर्तते। तत्र विचारकाले तत्त्तट्टीकाकृतां मतमाश्रित्य युक्तायुक्तत्वविमर्शोऽपि यथास्थानं निबद्धं वर्तते। अत्र पत्रे नागेशगूढाभिप्रायं प्रदर्श्य अन्ते कैयटमतसमीक्षणं च विहितमस्ति। अन्ते च सर्वमतसाधारण्येणोपसंहारश्च कृतो वर्तते।

मुख्यशब्द:-बाध्यबाधकभाव:, कैयटमतम्, नागेश:, परिभाषेन्दुशेखर:, धातो:, लोप:, सूत्रम्।

भूमिका - गण (संख्याने) धातो: सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेनालोमत्वचवर्मवर्णचुरादिभ्यो णिच् इति सूत्रेण णिचि आर्धधातुकोपदेशे यददन्तं तस्यातो लोपः आर्धधातुके इत्यर्थकेन "अतो लोपः" इति सूत्रेण लकारोत्तरवर्तिनः अकारस्य च लोपे गणि इति जाते , ण्यन्तत्वात् " सनाद्यन्ता धातवः " इति सूत्रेण धातुसञ्ज्ञायां सत्यां "लुङ्" इति सूत्रेण लुङि च कृते अ गण् इ त् इति जाते तदनन्तरं "च्लि लुङि" "णिश्रिद्रुसुभ्यः कर्तरि चङ्" आभ्यां सूत्राभ्यां क्रमेण च्लिप्रत्यये तत्स्थाने चङादेशे च कृते अ गण् इ अ त् इति स्थितिर्भवति। अतः परं "चिङ्"इति सूत्रेण द्वित्वे कृते "णेरनिटि" इति सूत्रेण णिलोपे च जाते अ गण् गण् अ त् इति स्थितिर्भवति।इदानीं हलादिश्शोषे "ई च गणः" इति सूत्रेण ईत्वे "चो:कुः" इति सूत्रेण कुत्वे च कृते अजीगणत् इति रूपं सिद्धयति। किन्तु अत्रेदं चिन्तनीयं यत् अ गण् गण् अ तु इत्यवस्थायां यदि पूर्वं हलादिश्शेष: स्यात्तर्हि गणरूपस्य अभ्यासस्य अभावेन गणरूपाभ्यासस्य अन्त्यस्य ईत्वं स्यात् इत्यर्थकेन ई च गण: इति सूत्रेण ईत्वस्य प्राप्ति: न स्यात्।तथा सित इदम् ईत्वं निरवकाशत्वात् यत्कर्तृकावश्यप्राप्तौ यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति इत्यर्थकेन येन नाप्राप्तन्यायेन हलादिश्शेषं बाधेत।एवञ्च अपवादत्वात् हलादिश्शेषात् पूर्वं अभ्यासस्य अन्त्यस्य णकारस्य ईत्वे गुणे ह्रस्वे च कृते अजिगणत् इति अनिष्टं प्रसज्जेत। अतस्तद्दोषवारणाय श्रीमता भगवता भाष्यकृता मुनिना पतञ्जलिना "अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति " इति परिभाषा अङ्गीकृता। परिभाषा स्वीकारे च कथं दोषाभाव इति किञ्चित्रिरूपिते। अनया परिभाषया अभ्यासिवकारेषु कार्येषु परस्परं बाध्यबाधकभावस्याभावः बोध्यते।एवञ्च पूर्वं हलादिश्शेषे ततः अकारस्य ईत्वे अजीगणत इति इष्टस्य रूपस्य सिद्धिः।न च इदानीं पूर्वं हलादिश्शेषे गणरूपस्य अभ्यासस्याभावात ईत्वानापत्तिरिति वाच्यम्।इति चेन्न ईत्वविधायकसूत्रारम्भसामर्थ्यात् गणपदार्थस्य अभ्यासपदार्थेन सह वैयधिकरण्येन अन्वय इति स्वीक्रियते। एवञ्च गणसम्बन्धिनः अभ्यासस्य अन्त्यस्य ईत्वम् इत्यर्थस्य च जायमानत्वेन सुतराम् ईत्वं सिद्धयति।

दीर्घोकित इत्यत्र अकिद्ग्रहणम् अस्यां परिभाषायां मानम्। तद्धि यंय्यम्यते इत्यत्र दीर्घव्यावृत्त्यर्थं कृतम्। अस्याः परिभाषाया अभावे अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य अदन्ताभ्यासस्य नुग्स्यात् यङ्यङ्लुकोः परत इत्यर्थकस्य नुगतोनुनासिकान्तस्य इति शास्त्रस्य दीर्घोऽिकत इत्यस्य अप्राप्तियोग्यस्थले अचिरतार्थत्वेन निरवकाशत्वादीर्घोकित इत्यस्य बाधात् अभ्यासस्य अजन्तत्वाभावेन दीर्घस्य अप्रसक्त्या तद्व्यावृत्त्यर्थं कृतम् अकिद्ग्रहणं व्यर्थं सत् अभ्यासिवकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्तीतीमां परिभाषां ज्ञापयित। परिभाषार्थस्तु अभ्यासिवकारप्रयोजकत्वेन अभिमतबाधकशास्त्रेण अभ्यासिवकारप्रयोजकत्वेनाभिमतबाध्यशास्त्रस्य

बाधो न भवतीति। ज्ञापितायाञ्चास्यां परिभाषायां नुगतोनुनासिकान्तस्य इति बाधकत्वेनाभिमताभ्यासिवकारप्रयोजकीभूतेन शास्त्रेण बाध्यत्वेनाभिमताभ्यासिवकारप्रयोजकीभूतस्य दीर्घोकित इति शास्त्रस्य बाधो न भवति। तथा च नुगागमात् पूर्वमेव दीर्घो यथा न स्यात् तदर्थम् अकिदग्रहणं स्वांशे चरितार्थं भवति।

अत्रेयमाशङ्का जायते यत् नुगागमात्प्राग् अभ्यासस्य अिकत्त्वात् अिकदिति निषेधस्याप्रवृत्त्या कृतेपि अिकद्ग्रहणे यंयम्यते इत्यत्र दीर्घो दुर्वार एवेति अिकद्ग्रहणस्य स्वांशे चारितार्थ्याभावादिकद्ग्रहणस्य न परिभाषाज्ञापकत्वं सम्भवतीति चेदत्रोच्यते – अिकद्ग्रहणे कृते यदि दीर्घो न स्यात्तर्हि नुगतोनुनासिकान्तस्येत्यनेन नुगागमे कृते सित अिकदिति निषेधः स्यादित्युत्सर्गशास्त्रप्रवृत्त्यभावसम्भावनाप्रयोज्याया अिकदित्यपवादशास्त्रप्रवृत्तिसम्भावनायाः सत्त्वेन उत्सर्गशास्त्रप्रवृत्त्यभावसम्भावनाप्रयोज्या यत्र अपवादशास्त्रप्रवृत्तिसम्भावना तत्र उत्सर्गशास्त्रस्य पूर्वमप्रवृत्तिरित्यर्थिकाया उपसञ्जनिष्यमाणनिमित्तोप्यपवाद उपसंजातिनिमत्तमप्युत्सर्गं बाधते इत्यस्याः परिभाषायाः प्रवृत्त्या नुगागमात्प्रागि दीर्घस्य अप्रवृत्त्या यंयम्यते इत्यादिप्रयोगाः सिद्ध्यन्ति। अिकद्ग्रहणाभावे तु यदि दीर्घो न स्यात्तर्हि नुगतोनुनासिकान्तस्येत्यनेन नुगागमे कृते सित अिकदिति निषेधः स्याद् इत्युत्सर्गशास्त्रप्रवृत्त्यभावसम्भावनाप्रयोज्याया अिकदित्यपवादशास्त्रप्रवृत्तिसम्भावनाया अभावेन दीर्घो दुर्वारस्स्यादिति दीर्घव्यावृत्त्यर्थं भवति अिकद्ग्रहणं स्वांशे चिरतार्थम्। इति चेदत्रेदमाशंक्यते –

एवमिप नुिक कृते अजन्तत्वाभावादेव दीर्घस्य प्रसक्तेरभावात् तद्व्यावृत्त्यर्थं कृतमिकद्ग्रहणं व्यर्थमेवेति चेदत्रोच्यते परिभाषाज्ञापनोत्तरमिप स्वांशे चारितार्थ्याभावात् यावता विना न चिरतार्थं तावता तत्सर्वमनेन ज्ञाप्यते इति न्यायेन अिकद्ग्रहणेन दीर्घोकित इति सूत्रे वैयिधकरण्येनान्वयोपि ज्ञाप्यते। एवं च अिकतोभ्यासावयवस्य अचो दीर्घस्स्यादिति सूत्रार्थात् नुिक कृतेपि अभ्यासावयवस्याचो दीर्घप्राप्त्या तद्व्यावृत्त्यर्थं कृतमिकद्ग्रहणं स्वांशे चिरतार्थम् भवति।

ननु परिभाषाज्ञापनोत्तरमपि दीर्घव्यावृत्तये अिकद्ग्रहणसार्थक्याय च वैयधिकरण्येनान्वयज्ञापनस्य अवश्यकरणीयतया आवश्यकत्वात्तदेव ज्ञाप्यतां तेनैव च अिकद्ग्रहणसार्थक्यसम्भवात् अिकद्ग्रहणस्य परिभाषाज्ञापकत्वं न सम्भवतीति चेदत्रोच्यते – तदप्राप्तियोग्ये स्थले अचिरतार्थत्वे सित कृते चिरतार्थत्विमत्येवंरूपो यो तक्रन्यायः तेन नुका दीर्घस्य बाधनात् नुगुत्तरं दीर्घस्याप्राप्त्या अिकद्ग्रहणस्य वैयर्थ्येन अिकद्ग्रहणस्य परिभाषाज्ञापकत्वसम्भवात्।

ननु एवमिप नुगतोनुनासिकान्तस्य इति सूत्रे अत इत्यत्र तपरकरणेन दीर्घाकारस्य व्यावृत्त्या कृते दीर्घे नुगागमस्य प्राप्तेरभावात् तक्रन्यायिवषयाभावेन न तेन न्यायेन नुका दीर्घस्य बाधः सम्भवित तथा च निरवकाशत्वादेव नुका दीर्घस्य बाधो वक्तव्यः तथा च वैयधिकरण्येन अन्वयस्य सत्त्वात् नुगुत्तरमिप दीर्घस्य प्राप्तेः तद्वयावृत्त्यर्थं चिरतार्थस्य अिकद्ग्रहणस्य न पिरभाषाज्ञापकत्वं सम्भवतीति चेदत्रोच्यते – अभ्यासे सर्वत्र हस्व इतिसूत्रेण हस्वस्यैव सत्त्वात् नुगतोनुनासिकान्तस्येत्यत्र तपरकरणस्य व्यावर्त्यालाभेन तपरकरणसामर्थ्यात् तस्य औपदेशिकदीर्घादिव्यावर्तकत्वस्यैव वक्तव्यतया ययम्यते इत्यत्र दीर्घोक्तित इति सूत्रेण विहितस्य दीर्घस्य अव्यावर्तकत्वात् दीर्घोत्तरमिप नुक्प्राप्तेस्तक्रन्यायविषयतायाः वक्तुं शक्यत्वेन तेनैव न्यायेन दीर्घस्य बाधे सित पुनर्दीर्घस्याप्रसक्त्या अिकद्ग्रहणस्यवैयर्थ्येन तस्य एतत्परिभाषाज्ञापकत्वसम्भवात्। नुगतोनुनासिकान्तस्येत्यत्र तपरकरणस्य फलं तु बाभाम्यते इत्यत्र नुगभावः।

ननु अनया रीत्या परिभाषाया ज्ञापनं न सम्भवित अनया रीत्या परिभाषाज्ञापने चक्रकापित्तः स्यात्, तथाित – अिकद्ग्रहणवैयर्थ्ये परिभाषासत्त्वम्, अिकद्ग्रहणवैयर्थ्यं च तक्रन्यायेन नुग्विधायकशास्त्रस्य दीर्घविधायकशास्त्रबाधकत्वमूलकम्, तक्रन्यायप्रवृत्तिश्च नुगतोनुनािसकान्तस्य इत्यत्र तपरकरणस्य औपदेशिकदीर्घव्यावर्तकत्वमूलिका, तपरकरणस्यौपदेशिकदीर्घव्यावर्तकत्वं च सर्वत्र हस्व इति शास्त्रप्रवृत्तिमूलकं, हस्व इति शास्त्रप्रवृत्तिश्च प्रकृतपिरभाषाधीना, प्रकृतपिरभाषा च अिकद्ग्रहणवैयर्थ्यमूलिकेति रीत्या चक्रकापत्त्या न अिकद्ग्रहणस्य परिभाषाज्ञापकत्वं सम्भवित। एवं च अस्यां परिभाषायां प्रमाणाभावात् नुगतोनुनािसकान्तस्येति शास्त्रस्य हस्व इति शास्त्रबाधकत्वेन बाभाम्यते इत्यत्र हस्वाप्रवृत्या तत्र नुग्वारकतया तपरकरणस्य औपदेशिकदीर्घमात्रव्यावर्तकत्वस्य वक्तुमशक्यतया सर्वविधदीर्घव्यावर्तकत्वस्यैव वक्तव्यतया बाभाम्यते इत्यत्र नुग्वारणेपि

ययम्यते इत्यवस्थायां कृते दीर्घे नुग्प्राप्तेरभावात् तक्रन्यायविषयत्वाभावेन निरवकाशत्वेनैव नुका दीर्घबाधस्य वक्तव्यतया निरवकाशत्वान्नुकि कृते दीर्घोकित इत्यत्र वैयधिकरण्येन अन्वयस्य सत्त्वात् पुनः दीर्घस्य प्रसक्तौ तद्व्यावृत्त्यर्थमिकद्ग्रहणं चिरतार्थमिति न कथंचिदिप अकिदग्रहणस्य परिभाषाज्ञापकत्वं सम्भवतीति चेदत्रोच्यते –

वनीवच्यते, चरीकर्तीत्यादौ तक्रन्यायेनैव नीगादिना दीर्घस्य बाधात् दीर्घाप्राप्तेः यंयम्यते इत्येतन्मात्रार्थकत्वे न ह्येकमुदाहरणमिति न्यायात् अनुक इत्येव सिद्धे अकिद्ग्रहणं व्यर्थं सत् परिभाषां ज्ञापयति।

नन्वेवमिष अिकद्ग्रहणं न ह्येकमुदाहरणं योगारम्भं प्रयोजयतीति न्यायेन अिकद्ग्रहणस्य परिभाषाज्ञापकत्वं न सम्भवित, उदाहरणान्तरस्यापि सत्त्वात्, तथाहि - छो धातोः यिङ कृते आत्त्वे च कृते तस्य द्वित्वे अभ्यासहस्वत्वे चछायते इत्यवस्थायां दीर्घोकित इत्यनेन दीर्घे प्राप्ते छे च इत्यनेन तुकि च प्राप्ते अन्तरङ्गत्वात् तुकि कृते अभ्यासस्य कित्त्वात् तस्य दीर्घवारणार्थम् अिकद्ग्रहणस्य आवश्यकत्वेन न ह्येकमुदाहरणिमितिन्यायिवषयताया अभावात् पूर्वोक्तरीत्या अिकद्ग्रहणस्य परिभाषाज्ञापकत्वं न सम्भवित इति चेदत्रोच्यते दीर्घोकित इति सूत्रे अनुवर्तमानाभ्यासपदस्य आवृत्त्या अभ्यासत्वाविच्छन्नोद्देश्यताकिकद्विटितिभन्नस्येत्यर्थस्वीकारेण तुगागमे कृते सत्यिप तुकः अभ्यासत्वाविच्छन्नोद्देश्यताकत्वाभावात् अकिदिति निषेधविषयताया अभावेन पूर्वोक्तरीत्या अिकद्ग्रहणस्य वैयर्थ्येन परिभाषा ज्ञाप्यते ज्ञापितायां च अस्यां परिभाषायां ययम्यते इत्यवस्थायां दीर्घोकित इत्यनेन दीर्घे प्राप्ते तद्वयावृत्यर्थं अिकद्ग्रहणं चिरतार्थं भविति।

नन्वेवमिप नुगागमात्प्राक् अभ्यासस्य अभ्यासत्वाविच्छन्नोद्देश्यताकिकद्घटितिभन्नस्यैव सत्त्वात् अकिदिति निषेधस्याप्रवृत्त्या कृतेपि अिकद्ग्रहणे तस्य न स्वांशे चारितार्थ्यमिति चेदन्नोच्यते अिकदित्यस्य किदुद्देश्यघटितिभन्नस्य इत्यर्थस्वीकारेण नुगागमात् पूर्वमनन्तरं वा किदुद्देश्यघटितत्वस्यैव सत्त्वेन दीर्घापत्तिवारणसम्भवात्।

सन्दर्भग्रन्थसूची -

- 1. परिभाषेन्दुशेखरः भूतितिलकव्याख्यानम्
- 2. परिभाषेन्दुशेखरः विजयाटीका
- 3. परिभाषेन्दुशेखरः भैरवीटीका
- 4. परिभाषेन्दुशेखर: दुर्गाव्याख्यानम्
- 5. श्रीमद्भगवद्गीताशाङ्करभाष्यम्
- 6. अमरकोश:
- 7. शब्दकल्पद्रमः
- 8. पाणिनीयाष्टाध्यायी
- 9. पातञ्जलमहाभाष्यम्
- 10. सिद्धान्तकौमुदी
- 11. लघुशब्देन्दुशेखरः
- 12. अष्टाध्यायी काशिकाव्याख्यानम्



तत्त्वचिन्तामणौ न्यायलक्षणस्य तुलनात्मकमध्ययनम्

राजेश्वर विश्वासशास्त्री देशमुख

शोधच्छात्रः, संस्कृतकोशशास्त्रविभागः, डेक्कनमहाविद्यालयः, पुणे।

सारांशिका - इह शोधपत्रिकायां तत्विचन्तामणिस्थस्य अनुमानखण्डान्तर्गतस्य अवयवप्रकरणस्थस्य न्यायलक्षणस्य तुलनात्मकमध्ययनं कृतमस्ति। प्रायः सप्ताधिकन्यायलक्षणव्याख्यातॄणां मतान्यत्र आलोच्यन्ते। प्रथमतः लक्षणसमन्वयरीतिमालोच्य अनन्तरं दोषः अस्ति न वा इत्यपि चिन्तितमस्ति। अन्ततश्च दीधितिकारमतमेव सिद्धान्तितमस्ति। मुख्यशब्दः – तत्विचन्तामणिः, न्यायलक्षणम्, शास्त्रम्, संज्ञा, आन्वीक्षिकी, हेतुः, अर्थः।

षट्सु शास्त्रेषु मध्ये न्यायशास्त्रम् अनन्यसाधारणं दरीदृश्यते। एतस्य संज्ञायां न्यायपदप्रवेशोऽस्ति। तस्य च अनेकैः अनेकेऽर्थाः वर्णिताः सन्ति। यथा ¹प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः, ²प्रत्यक्षागमित्रितमनुमानं न्यायः, ³परार्थानुमानं ⁴आन्वीक्षिकी विद्या, ³साधनीयस्यार्थस्य यावित शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते स पञ्चावयवोपेतवाक्यात्मको न्यायः इत्यादिः। पूर्वोक्तेषु सर्वेष्वर्थेषु न्यायपदव्यवहारेऽपि परार्थानुमाने एव तत्पदं मुख्यम् अन्यत्र तत्सम्बन्धादेव प्रवृत्तिरिति गौणम्। तथा च न्यायपदमुख्यार्थस्य परार्थानुमानस्य लिङ्गपरामर्शरूपस्य मानसबोधात्मकस्य यादृशैः वाक्यैरुत्पत्तिः तत्समूहस्यापि न्यायपदार्थत्वात् तत्प्रतिपादकत्वादेव शास्त्रमिदं न्यायशास्त्रसंज्ञामलभत। तादृशस्य पञ्चावयवसमुदायस्य तत्त्वचिन्तामणौ लक्षणं व्यरचि – " 6 अनुमितिचरमकारणितङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकवाक्यिति", " 7 समस्तरूपोपन्नितङ्गप्रतिपादकवाक्यत्विमिति" लक्षणस्य १दूषणं च । तत्र च मण्युक्तलक्षणव्याख्यानम् अनेकैः अनेकप्रकारैः कृतम्। तत्र प्रमुखानि कानिचिन्मतान्यनृद्य तुल्यामि।

तत्र ⁹वर्धमानोपाध्यायै: लक्षणघटकप्रयोजकपदस्य जनकत्वमेवार्थ: चरमकारणत्वस्य च स्वोत्तरोत्पन्नभाविज्ञानानपेक्षत्विमत्यर्थो वर्णित:। ¹⁰जयदेविमश्रै: प्रयोजकपदस्य जनकजनकत्विमत्यर्थो वर्णित:, चरमकारणत्वस्य च पूर्वोक्त एव। ¹¹रुचिदत्तिमश्रै:

¹ न्या.वा. पृ. क्र. 13

² न्या.वा. पृ. क्र. 13

³ न्या को पू क्र 447

⁴ वात्स्यायनभाष्यम् पृ क्र 6

⁵ वात्स्यायनभाष्यम् पृ क्र 9

⁶ तत्त्वचिन्तामणि पृ क्र 1460

⁷ कु प्र पृ सं 4

⁸ तत्र न समस्तरूपोपन्नलिङ्गप्रतिपादकं वाक्यम्। अत्रैव वाक्येऽतिव्याप्ते: इति मणिपङ्क्त्या पूर्वोक्तस्य लक्षणस्य दूषणं कृतम्।

⁹ त चि र पृ क्र 692

प्रयोजकपदस्य जनकज्ञानजनकत्विमत्यर्थो वर्णितः, चरमकारणत्वस्य च पूर्वोक्त एव। ¹²जगदीशतर्कालङ्कारैस्तु अनुमितिपदं यादृशयादृशानुपूर्व्यवच्छित्रवाक्ये नैय्यायिकानां प्रकृतपक्षकप्रकृतसाध्यकन्यायव्यवहारः तादृशतादृशानुपूर्व्यवच्छित्राभावकूटसाध्यकानुमितिपरम्। तच्चरमकारणीभूतः यः लिङ्गपरामर्शः तादृशतादृशानुपूर्व्यवच्छित्राभावकूटव्याप्यघटपदत्ववान् इत्याकारः। तस्य प्रयोजकं तज्जनकं यद्व्याप्तिज्ञानं तज्जनकं यच्छाब्दज्ञानं शब्दप्रकारकं ज्ञानमित्यर्थः। तज्जनकं तज्जनकतावच्छेदकं यद्वाक्यं तत्त्विमिति व्याख्यातम्। अनया रीत्या सर्वांशोऽन्यथा एव लक्षणं व्याख्यातम्। ¹³ मथुरानाथैः चरमकारणत्वं स्वोत्तरोत्पन्नभाविविज्ञानानपेक्षत्वम्। प्रयोजकत्वञ्च जनकजनकत्वम्। ¹⁴केचितु चरमकारणपदं विजातीयकारणताश्रयपरम्। तेन तादृशशाब्दबोधत्वेन कारणता लभ्यते इति। ¹⁵नवीनैस्तु न्यायजन्यशाब्दबोधप्रयोज्यानुमितिव्यक्तिं तद्व्यक्तित्वेन आदाय तादृशानुमितिफलोपधायकत्वमेवेति। एतावता पूर्वोक्तानि सप्तमतानि मण्युक्तलक्षणस्योपपादनार्थं तद्घटकदलानां स्वकीयरीत्यार्थं वर्णयाञ्चक्रः।

विधितिकारैस्तु लक्षणिमदं दूषियत्वा स्वीयमेव अपूर्वलक्षणं प्रणिणािय। तच्च "उचितानुपूर्वीकप्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्विमिति"।

पूर्वोक्तसप्तव्याख्यानानि प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैः एकवाक्यतया विशिष्टैकार्थज्ञानं जन्यते इति प्रमेयम् अङ्गीकृत्य प्रवृत्तानि। अतः तदेव यदि दूष्यते तदा निरुक्तमतानां पृथग्दूषणस्य अपेक्षा नास्ति अतः दीधितिकारैः स एवांशः निरस्यते। तथाहि – प्रतिज्ञानिगमनयोः न एकविशिष्टार्थप्रतिपादकत्वम्। पर्वतो विह्नमान् इति प्रतिज्ञा तस्मात् विह्नमानयमिति निगमनम्। प्रतिज्ञाहेत्वोः धूमज्ञानज्ञाप्यविह्नमदिभिन्नः पर्व्वतः इति बोधः। उभयोरिप समानाकारकत्वात् उभाभ्यां धूमज्ञानज्ञाप्यविह्नमदिभिन्नपर्व्वतः धूमज्ञानज्ञाप्यविह्नमदिभिन्नपर्व्वताभिन्नः इत्याकारकः स्यात्। स च न सम्भवति अभेदान्वयबोधस्य ¹⁷विरूपोपस्थितयोरेव सम्भवात् प्रकृते च विरूपोपस्थितेः असत्त्वात् इति।

एवम् उदाहरणेनेव एकः विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधः न सम्भवति कथं वाक्यान्तरेणेकवाक्यतया विशिष्टैकार्थप्रतिपादकत्वं स्यात्। अतः कथमपि पञ्चावयवानामेकवाक्यताया असम्भवात् अनुमितिचरमकारणिलङ्गपरामर्शस्य प्रयोजकः शाब्दबोधः एकः पञ्चभिर्वाक्यैः जायमानः विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही न सम्भवति अतः तद्घटितलक्षणमि सदोषमिति पूर्वोक्तानि सप्तमतान्यिप दूषितानि भवन्ति। तत्र एकः विशेषः यत् जगदीशतर्कालङ्कारमतं पूर्वोक्तदूषणेन दूषितं न भवेत्। तथाहि – अनुमितिः घटपदं तत्तदानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्याप्यघटपदत्वविदित तत्प्रयोजकत्वं तज्जनकव्याप्तिज्ञानजनकत्वम्। व्याप्तिज्ञानं तत्तदानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावव्याप्यं घटपदत्विमिति। तादृशव्याप्तिज्ञाने तत्तदानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावः विषयः तद्विषयकं ज्ञानम् अभावांशे तत्तदानुपूर्वीविशिष्टवाक्यप्रकारकं ज्ञानं व्याप्तिज्ञानं प्रति कारणिमिति तत् परामर्शप्रयोजकं भवित। तं प्रति

¹⁰ त चि प्र व्या (तर्कचूडामणि:) पृ क्र 542

¹¹ त चि प्र पृ क्र 541

¹² जगदीशतर्कालङ्काराणां दीधितिव्याख्यानवत् साक्षात् मणाविप व्याख्यानं वर्तते। तत्र केवलमवयवस्यैव तद्व्याख्यानं तत्विचन्तामणिरहस्यटिप्पण्यां मुद्रितमस्ति। त चि र टि पृ क्र 690

¹³ त चि र पृ क्र 693

¹⁴ त चि र टि पृ क्र 690

¹⁵ त चि र टि पृ क्र 691

¹⁶ दीधिति पृ क्र 1460

¹⁷ व्युत्पत्तिवाद: पृ क्र 48

प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टप्रतियोगिज्ञानविधया तत्तदानुपूर्वीविशिष्टवाक्यज्ञानं कारणं कारणतावच्छेदकञ्च विषयतासम्बन्धेन वाक्यमिति न्याये लक्षणसमन्वय:।

पूर्वोक्तरीत्या समन्वयकरणे शाब्दज्ञानपदेन शब्दप्रकारकज्ञानस्य स्वीकृतत्वात् पञ्चानामेकवाक्यतया अनुमितिपरामर्शपदयो: शाब्दबोधाजनकत्वेऽपि न क्षतिरिति। परन्तु विशेषपरत्वं लक्षणया शब्दप्रकारकज्ञानपरत्वं च वर्णनीयम्। अनया रीत्या लक्षणया अर्थवर्णने क्रियमाणे कस्यापि लक्षणस्य परिष्कारः सम्भवति। एवं मणिकुन्मतसमर्थनमपि न सम्भवति। लक्षणसमन्वयस्य शाब्दबोधमनादायैव सम्भवात्। एवं सुलभतया रीत्या प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वस्यैव लक्षणत्वसम्भवेन पूर्वोक्तरीत्या क्लिष्टकल्पनां कृत्वा लक्षणपरिष्कारोऽनुचित इति प्रतिभाति। तथा च अनया रीत्या दीधितिकारोक्तदूषणेन स्वोक्तदूषणेन च पूर्वोक्तानि सप्तव्याख्यानानि दूषितानि भवन्ति। चिकित्सा दीधितिकारेणोद्भावितदुषणस्य क्रियते। यदि विशिष्टैकार्थप्रतिपादकत्वं एकवाक्यत्वं तदा

पूर्वोक्तदूषणसम्भवेऽपि

तदुत्थाप्याकाङ्क्षानिवर्तकत्वतन्निवर्तनीयाकाङ्काक्षोत्थापकत्वैतदन्यतरवत्त्वमेकवाक्यत्विमत्यङ्गीकारे पञ्चस्वपि वाक्येष्वन्यतरस्य सत्त्वात् एकवाक्यत्वमुपपन्नम्। अतः सर्वथैकवाक्यता नैव सम्भवतीति कथनम् अयुक्तमिति भाति। पूर्वोक्तरीत्या दूषणेऽभिहिते दीधितिकारै: स्वकीयन्यायलक्षणमभिधीयते – "19 उचितानुपूर्वीकप्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्विमिति। उचितानुपूर्वीकत्वञ्च स्वाश्रयीभूतप्रतिज्ञाद्यव्यविहतोत्तरत्वशून्यहेत्वादिवृत्तियद्यत्समुदायत्वं तदन्यत्वं समुदायत्वविशेषणम्। तेन यत्किञ्चदवयवशून्यप्रतिज्ञादिसमुदायस्य नानान्यायान्तर्गतप्रतिज्ञादिसमुदायस्य व्युत्क्रमप्रयुक्तप्रतिज्ञादिपञ्चकस्य भवति।एवमपि भूतलं घटविदत्यादि उदासीनवाक्यघटकप्रतिज्ञादिसमुदायस्य वारणं न सम्भवति अत: तस्यापि प्रतिज्ञादिवृत्तित्वं वाच्यम्। तद्वारणार्थं समुदायत्वे निवेश्यते। प्रतिज्ञात्वादिपर्याप्यवच्छेदकयत्किञ्चद्धर्मपञ्चकव्यापकत्वम्। आदिपदेन हेतुत्वम् उदाहरणत्वम् उपनयत्वं निगमनत्वञ्ञ ग्राह्यम्। एतावता परिष्कृतलक्षणस्य समन्वयः क्रियते।

पूर्वीक्तोचितानुपूर्वीकत्वशरीरे व्युत्क्रमप्रयुक्तप्रतिज्ञादिवृत्तिसमुदायत्वं प्रतियोगिनि प्रविष्टमिति स्वपदेन स्वत्वं यत्किञ्चिदवयवशून्यप्रतिज्ञादिसमुदायत्वं नानान्यायान्तर्गतप्रतिज्ञादिसमुदायत्वं तत्स्वाश्रयप्रतिज्ञाद्यव्यवहितोत्तरत्वशून्यहेत्वादिवृत्तियद्यत्समुदायत्वपदेन धर्तुं शक्यते। अतस्तदन्यत्वं न पूर्वोक्तेषु समुदायेषु अपितु प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वे एव । तत्र च प्रतिज्ञादिपञ्चकवृत्तित्वमप्यस्ति। तदाश्रयत्वं प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदाये इति लक्षणसमन्वयः। लक्षणेऽस्मिन् पञ्चानामेकवाक्यतया शाब्दबोधाजनकत्वेऽपि न दोषः।

प्रतिज्ञात्वेनैव प्रवेश:। प्रतिज्ञादीनां न तत्तद्व्यक्तित्वेन तु प्रकृतपक्षकप्रकृतसाध्यकप्रकृतहेतुकस्थलेऽपि अनेकविधप्रतिज्ञादीनां सत्त्वे न्यायलक्षणस्यानुगमो न स्यात् अत: प्रतिज्ञात्वादिनैव प्रवेश: वक्तव्य:। तथासित ²⁰प्रतिज्ञात्वशरीरे ²¹न्यायान्तर्गतत्वस्य प्रविष्टत्वात् ²²आत्माश्रय इति न च वाच्यम्। प्रतिज्ञालक्षणे उदासीनप्रतिज्ञासमानानुपूर्वीकवाक्ये अतिव्याप्तिवारणार्थं न्यायान्तर्गतत्वम प्रविष्टं तस्या प्रकृतेऽसम्भवादेव

¹⁸ गादा न्या प्र प्र क्र 1462

¹⁹ दीधि अव प्र पृ क्र 1460

²⁰ प्रतिज्ञात्वञ्च प्रकृतान्यायावयवत्वे सति प्रकृतानुमित्यन्यूनानितिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वम्। न्यायावयवत्वञ्च न्यायान्तर्गतत्वे सति प्रतिज्ञाद्यघटकत्वे सतिउभयघटकभागद्वयाघटितत्वम्। तथा च प्रतिज्ञात्वलक्षणे न्यायावयवत्वघटकतया न्यायान्तर्गतत्वं प्रविष्टम् इति।

²¹ न्यायान्तर्गतत्वञ्च न्यायत्वाश्रयत्वमेव।

²² आत्माश्रयत्वञ्च स्वज्ञप्त्यधीनज्ञप्तिविषयत्वम्।

न्यायलक्षणप्रविष्टप्रतिज्ञात्वे न्यायान्तर्गतत्वं न निवेश्यते अतो नात्माश्रयः। तथा च दीधितिकारमतानुसारेण मण्युक्तलक्षणं दुष्टमेव। अन्यैश्च व्याख्यातृभिः दीधितिकृदभिहितदूषणस्य निरासः न कृतः। अतस्तेषां व्याख्यानमपि तेनैव दुष्टमिति निर्दुष्टलक्षणं दीधितिकृतामेव प्रतिभाति।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- 1. द्विवेदी विन्ध्येश्वरीप्रसाद, 1916, न्यायवार्तिकम्, वाराणसी, सेठ श्री जयकृष्णदास, विद्याविलासप्रेस।
- 2. अभ्यंकर, महामहोपाध्याय वासुदेवशास्त्री, 1978, न्यायकोश:, पुणे, भंडारकर ओरिएन्टल् रिसर्च् इन्स्तिट्यूट्।
- 3. शास्त्री, स्वामी द्वारिकादास, 1976, वात्स्यायनभाष्यसंवलितं गौतमीयं न्यायदर्शनम्, वाराणसी, बौद्धभारती ग्रन्थमाला-11
- 4. झा पं कीर्त्यानन्द, 1970, गादाधरी तत्वचिन्तामणिना दीधित्या च गर्भिता वाराणसी, चौखम्बा संस्कृतग्रन्थमाला
- 5. शास्त्री न्यायाचार्य ढुण्ढिराज, 1957, न्यायकुसुमाञ्जलिः, बोधन्या प्रकाशेन प्रकाशिकया मकरन्देन टिप्पण्या च समुल्लिसतः, वाराणसी काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
- 6. तर्कवागीश, श्रीकामाख्यानाथ, 2010, तत्वचिन्तामणिरहस्यनामकटीकासहित:, दिल्ली, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
- 7. ताताचार्य एन एम रामानुज, 1982, तत्विचन्तामणि: तर्कचूडामणिसहितप्रकाशसहित:, तिरुपित:, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
- 8. मेहता, चीमनलाल, (वि सं 1988), व्युत्पत्तिवाद:, प्रकाशसहित:, अहमदाबाद, चौखम्बा संस्कृत सीरिज।



E- Commerce Business in India and Customer Liability's

Dr. Neha Jaiswal

Assistant Professor, Commerce Rajiv Gandhi South Campus, B.H.U., India

ABSTRACT- E-commerce has transitioned to become a multi-billion industry covering variety of goods and services – perhaps each and every product is available online today. It has also helped the manufacturers, big and small to reach out customers in every nook and corner of the country bringing unthought-of logistical dimensions. This paper is an attempt to understand various aspects of E-commerce. For theoretical reasons, it rehashes what is e-commerce, its working models and its types based on operations. The paper dwells on hurdles in e-commerce that is further bifurcated into operational challenges and technical challenges. Aspects related to accounting and compliances applicable to e-commerce in India are also provided.

Keywords - E-Commerce, Business, India, Customer, Liability.

1. **INTRODUCTION-** E-commerce in India is growing rapidly and according to some estimates, it is likely to grow to 200 Billion US dollars by the year 2027. E-commerce businesses have immense growth potential which is evident from countless e-commerce businesses that have started in last decade. It is also estimated that e-commerce will grow at 27 per cent CAGR over next 4-5 years with online grocery as the biggest growth driver. E-commerce is also seen as solution to some of the policy challenges being faced by the country. Recently, National Small Industries Corporation Ltd. has launched an e-commerce platform in the form of www.msmeshopping.com for Micro, small and medium enterprises as a means of aatmanirbhar bharat. In simple words E-Commerce is "selling or buying of goods and services" over the Internet. E-Commerce is grown up version of traditional commerce in which the complete flow of transactions "right from selecting the product till the payment processing" is completed over internet. The scope of the e-commerce is unlimited. Practically every thinkable product or service is offered through e-commerce. E-commerce transactions in case of physical goods are supported by efficient supporting logistical infrastructure. At the same time many services are also being delivered over internet for speedy delivery overcoming physical barriers. In these times of pandemic, education and medical services are extensively using internet for delivery.

E-commerce based on "their model of work", can be classified as follows:

i) Direct selling of own goods and services on the internet is the first working model in ecommerce. In this model own goods and services are sold online though website or other

- available means. For Example, A designer is selling designer clothes through own exclusive website. This form of E-Commerce is commonly known as E-Shops. Example of E-shops are microsoft. com, dell.com, puma.com, etc.
- ii) Marketplace on internet is another model of E-commerce is another model. Here buyers and the sellers are gather on a platform e market place to buy or sell their goods and services. For Example, Amazon, Flipkart, Snapdeal, etc. where sellers can register and sell their products or services to the customers who visit that website. This form of e-commerce is called the electronic retailing or E-tailing.

TYPE OF E-COMMERCE

- i) B2B: In B2B (Business to Business) e-commerce, trade takes place between two businesses such as between manufacturer and wholesaler or wholesaler and retailer. For example, www.msmemart.com is a B2B market platform by National Small Industries Corporation Ltd.
- ii) B2C: B2C (Business to Customer) e-commerce means offering the goods and services directly to the customer. Examples of B2C e-commerce are flipkart. com and Spotify.com.
- iii) C2C: C2C (Customer to Customer) e-commerce brings customers together on a platform to buy and sell from each other. Examples of C2C e-commerce are olx. com and quickr.com.
- iv) C2B: C2B (Customer to Business) e-commerce is a platform that facilitates customers to contact the businesses to buy the goods and services. Examples of C2B e-commerce are upwork.com and cj.com (Commission junction).

HURDLES IN E-COMMERCE - Operational Challenges

- i) **Product Assortment:** Product assortment means picking the right product and services to offer to the buyer. E-commerce gives option to choose from countless alternatives but also limits the way of buying, that is by viewing the images of the products and reading the description of product and services. Hence product assortment is a new challenge to offer only those products and services that fit best to the customer.
- Pricing Model: Best pricing is a strategy that will bring back the buyer to the website. But what is the best price? is the biggest question. E-commerce provides effortless price comparison option which makes "Best Pricing" more important to sustain in the market. Also, e-commerce refrains the right to bargain from the customer. Accordingly, Pricing Model should be designed in way that makes the buyer satisfied with the prices even without bargain.
- iii) Order Management: E-commerce had shattered the barrier of "time to shop" and nowadays one can go for shopping at anytime from anywhere. This brings another

challenge for the e-commerce is order management. Each order is important, and it should be delivered on time is the key to success in e-commerce but on the contrary order management is the also biggest challenge for e-commerce. Only way to handle this challenge is to treat "Every Customer as GOD" and treat every order on maximum priority without thinking about any other factor like order value, order volume, order margin etc.

iv) **Customer Management:** E-commerce had made buying quite simple and easy for the customers. Customer is expecting services related to the product, delivery, refund, return, replacement, warranty, copyright, and other similar issues on priority. Highlevel Expectations by customers makes customer management extremely complex and critical task. The only way of customer management is "minimal human interventions" and "more automation".

Technical Challenges

- i) **Data Management:** E-commerce is largely based on the data collected during each transaction. What makes data management complex?
 - Size of data that becomes bigger and bigger as the business grows.
 - Dynamic Nature of data that will keep the data updated on real time basis.
 - Storage of data Structure which provide the data whenever asked for.
 - Sorting and filtering of data to keep only valuable data.
 - Backup of data to keep it secure.

Data should be management in way that optimizes its size by eliminating all the non-useful information and stored in robust and secured structure.

Data Privacy and Security: Customer's shares various personal data while transacting on e-commerce platform. Personal data is private information of the customer merely shared for completing such transaction. To keep customer's trust intact each detail collected should be stored and processed in a way in which our own personal data is stored.

Following practices should be followed to comply with the best practices or regulations related to data privacy:

- Explicit consent must be taken from the customer for the data to be collected.
- Notice must be given to the customer stating the purpose, use and time for retention of data to be collected.

RISK ASSOCIATED WITH E-COMMERCE BUSINESS -Risk in intrinsic in every business so as in e-commerce. To mitigate the risks of e-commerce, first step is to understand the associated risks.

- i) **User's Privacy:** Customer's data could be compromised even after having a secure database due to reasons like hacking, cyber-attack, security failure, and malware, etc. and could be used for spamming, identity theft and unsolicited marketing.
- Data integrity, authentication, and transactional risk: E-commerce delivers the order only if the basic authentications like phone number and e-mail verifications are completed. But who knows that even after such verification the order placed is genuine or not, actual sale or not, payment will be received or not? Nobody knows until the order is successfully delivered there is always a question mark on the data integrity, authentication, and transactional risk.
- iii) Customer Loyalty: Customers are more loyal towards the brands not towards the e-commerce services. Customer can easily switch to competitors because every e-commerce provides the same product or services what customer buys. Then what makes the customer loyal towards e-commerce? An extra effort by e-commerce to retain the customer can minimize this risk in the competitive world of e-commerce but cannot reduce it to zero.
- iv) Product Warehousing and Logistics: "Committed to timely delivery" is one of the most satisfying attribute of e-commerce and to manage this e-commerce have to assume the risk of loss, theft, damage and many more associated with managing the warehousing and logistics. In case e-commerce does not manage warehouse and logistics than at every order e-commerce have to confirm the seller about the inventory and wait for seller to confirm the product as "ready to ship" and then fully depend on logistics partner to pickup the order and deliver on timely basis but even after so much struggle e-commerce cannot guarantee delivery on time. Hence risk associated with product warehousing and logistics management is directly proportional to guarantee to on-time delivery.
- v) Customers Charge backs and Disputes: In e-commerce rate of customer dissatisfaction is higher owing to the fundamental property of e-commerce i.e. no personal interface between the seller and the buyer which begins various confusions and misunderstanding. These confusions and misunderstandings give rise to disputes and charge backs which not just results in monetary loss but also the brand image loss.
- vi) **Intellectual Property Rights:** Photo's, video's, content, description, logos as well as the products could be copied easily or violate someone else's intellectual property.

ACCOUNTING AND COMPLIANCES

ACCOUNTING- Accounting of E-commerce companies are guided by the Accounting Standard issued by ICAI and notified by the Ministry of Corporate Affairs. Accounting standard 9 "Revenue Recognition" and Indian Accounting Standard 115 "Revenue from contracts with customer" will be applicable for E-commerce companies to recognize the revenue. As of now,

there is no specific accounting standard issued by ICAI for "Accounting for E-commerce". Recently, an Exposure Draft is issued by ICAI specifically for "E-commerce accounting" as ICAI proposes a comprehensive Guidance Note on accounting in e-commerce and cloud services.

REVENUE RECOGNITION- Service Sector: As per Accounting Standard-9 and Indian Accounting Standard -115, in case of selling services revenue will be recognized only when the services are provided and there is no uncertainty on the realization of payments from the customer.

Further as per Ind AS-115, if a certain amount is received at the time of proving services for after support services like maintenance of software after the sale then revenue relating to support services will be recognized only after providing the support services.

WHOLESALING AND RETAIL SECTOR (E-TAILING): - As per Accounting Standard-9 and Indian Accounting Standard-115, in case of selling goods revenue will be recognized only when the ownership/ control of the goods is transferred and there is no uncertainty on the realization of payments from the customer. In the case of sale of goods through e-commerce, an option of return is given which impacts the revenue of the e-commerce. Accordingly, there are two ways to book the revenue:

- a. Revenue should be booked after the expiry of the return period or
- b. Revenue should be booked after deducting the average amount of return.

RECOGNITION OF CUSTOMER'S LIABILITY

Customer's liability means the amount that belongs to the customer until the service/ goods are not provided, but this amount cannot be treated as an advance in case the e-commerce is not the actual seller.

For Example, an e-commerce platform is providing online digital content from a registered seller to a particular customer. E-commerce is accepting only prepaid orders. Till the time content for customer is not delivered by the seller, the amount received by the platform will be lying in a nodal account named as "Customer's Liability".

When the seller transfers the content to the customer only then e-commerce platform will transfer the amount from Customer's Liability Account to Seller's Account after booking its service income for providing e-commerce platform.

Compliances E-commerce is working under a bundle of regulatory requirements in India. Apart from the normal regulatory requirements that an e-commerce must comply with GST Act, Income Tax Act, ROC regulations if registered as a company, etc. following are the regulations specifically apply on e-commerce in India:

i) GST -TCS:

GST-TCS means tax collected as a source as per the GST Act. As per section 52 of the CGST Act, 1% of the sale amount (Sale Price excluding GST) transferred to sellers should be deducted as GST-TCS and paid to the GST department on seller's behalf.

For Example: On an e-commerce platform, one of the sellers is selling handmade pen for Rs. 1000. While transferring the payments to the seller, the platform provider must deduct GST-TCS @1% i.e Rs. 10 and deposit the amount with the government on behalf of seller.

ii) TDS:

As per the Finance Act 2020, section 194O was introduced to impose TDS liability on e-commerce operators. From 1st October 2020 onwards, every e-commerce must deduct 1% TDS on the gross amount transferred to the seller for providing goods services through the e-commerce platform.

If the seller registered on the e-commerce platform is an Individual and HUF, then TDS should not be deducted if the sales amount transferred to the seller is up to ` 5 lacs in a year provided the PAN or the Aadhar is provided. TDS Rate will be increased to 5% in case PAN or Aadhar is not provided by any seller.

For Example: One seller is providing tuition services through online platform to a student. After rendering the services by the seller, platform provider will transfer the fee amount to the seller after deducting TDS @1% if the total amount transferred in a year is more than Rs. 5 lacs. If PAN or Aadhar is not available seller, the TDS rate will be 5%.

CONCLUSION- On such basis it is concluded that Customer's liability means the amount that belongs to the customer until the service/ goods are not provided, but this amount cannot be treated as an advance in case the e-commerce. Traditional commerce businesses e-commerce businesses have their own nuances, advantages, challenges, and risks that run together. E-commerce has also entered the area finance in a big way. Banking services, investments, loans, share transactions, tax advisory and many more services are being delivered using internet. With technology moving evolving at stupendous speed and with the potential of Indian economy, e-commerce business shall continue to grow.

REFERENCES

- 1. Nisha Chanana and Sangeeta Goele "Future of E-commerce in India", International Journal of computing and business research, 2012.
- 2. Abhijit Mitra "E-Commerce in India-A review", International Journal of Marketing, Financial services and Management Research, 2013.
- 3. Sarbapriya Ray "Emerging Trends of E-commerce in India: Some Crucial Issues Prospects and Challenges", Journal of Computer Engineering and Intelligent Systems 2011.

- 4. Muhammad Awais and Tanzila Samin "Advances SWOT Analysis of E-commerce", International Journal of Computer Science Issues, 2012.
- 5. Mr. Harjot Kaur and Mrs. Daljit Kaur "E-commerce in India Challenges and Prospects", International Journal of Engineering and Techniques, 2015.
- 6. Bhavya Malhotra "E-Business: Issues and Challenges in Indian Perspective", Global Journal of Business Management and Information Technology, 2014.
- 7. Tryambak Hiwarkar "E-commerce impact on Indian Market: A Survey on social impact", International Journal of Advanced Research in Computer Engineering and Technology, 2013.
- 8. Dr. Anukrati Sharma "A study on E-commerce and Online Shopping: Issues and Influences", International Journal of Computer Engineering and Technology (IJCET), 2013



वैष्णवरामदासविरचितगोपालदासचरितकाव्ये लोकोपकाराणि सुभाषितानि। पातकोटिसुब्बाराव

शोधच्छात्रः, साहित्यविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः।

सारांशः- कवेः कर्म काव्यम्', अर्थात् कवेः सारस्वतसृष्टिः काव्यम् भवित। किवः स्वीयनैसिर्गिकप्रतिभया यित्कमिप पश्यित तत्सर्वं दृष्ट्वा अनुभवञ्च कृत्वा सामाजिकं सांस्कृतिकं सत्साहिव्यं संरचियतुं सततं प्रयत्नशीलो भवित। पुनश्च सामाजिकभावानां सामाजिकविचाराणां च अभिव्यक्तये साहित्यं समाजस्य दर्पणोऽस्ति इत्युच्यते। तत्साहित्येषु च वैष्णवरामदासेन विरचितं गोपालदासचिरतकाव्यमन्यतमं वर्तते। अत्र च समाजिहतकारकाणि नैकानि सुभाषितानि वर्तन्ते। तदेव मया शोधलेखरूपेण संक्षेपेण प्रस्तूयते।

मुख्यशब्दः - कविः, शब्दब्रह्मणः, गोपालदासचरितकाव्यम्, काव्यम्, वैष्णवरामदासः, सुभाषितानि ।

सर्वं जगदिदं परब्रह्मणो विवर्तरूपमिति महर्षीणां मतम्। शब्दब्रह्मण उपासनेन परं ब्रह्म अधिगन्तुं शक्यते इति महर्षिवचनम्।

द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये शब्दब्रह्म तथापरम्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।

एवं विधस्य शब्दब्रह्मणः उपासनप्रकारः बहुधा वर्तते। शब्दब्रह्मणः आदिस्वरूपम् ॐकारः। ततो वेदाः महर्षिभिः दृष्टाः किन्तु वेदाध्ययने सर्वेषाम् अधिकारः कालान्तरे लुप्तः। ततः मन्दाधिकारिणां हितार्थाय महर्षिभिः पुराणानि रचितानि। अष्टादशसंख्यायुतानि, चतुर्लक्षश्लोकात्मकानि पुराणानि अधिगन्तुं सर्वे शक्ताः न भवन्ति इति ऋषितुल्याः महाकवयः काव्यानि निर्मिमेरे कि बहुना एतद् क्रमम् अनपेक्ष्याऽपि 'श्रीमद्रामायणं 'लौकिकवाङ्मये आदिकाव्यं वेदानन्तरं मुनिना वाल्मीकिना रचितम्। ततः कालिदासादयः प्रसिद्धाः एव। वाङ्मयस्य प्रयोजनेषु उपदेशः मुख्यतमः। वेदकृतः उपदेशः प्रभोः आज्ञा इव लघयितुम् अशक्या, अकरणे च प्रत्यवायः दृष्टः। पुराणेषु दृष्टः उपदेशः सुहृदुपदेश इव मैत्रीपूर्वकः। तदाचरणे श्रोतुः स्वेच्छा भवति। एवं सत्कार्यानुष्ठाने कामचारित्वं माभूदिति काव्यानि कान्तासम्मितानि कविभिः रचितानि। यथा काचन प्रियतमा अनुनयालापैः प्रियम् अभिमुखीकृत्य रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवदिति उपदिशति अतः वेदपुराणेभ्यः अपि काव्यकृतोपदेशः आदरणीयः इति आलङ्कारिकाः स्पष्टम् ऊचुः।

सु इति उपसर्गात् भाष वक्तायां वाचि इत्यस्मात् धातोः क्त प्रत्ययेन निष्पन्नोऽयं सुभाषितम् इति शब्दः। सुन्दरवचनं ,मधुरवचनं च तदर्थो। संस्कृतसाहित्ये नैकानि सुभाषितानि वर्तन्ते। येषाम् अध्ययनेन मानवाः आदर्शमार्गजीवनं, धार्मिकजीवनं, उत्तमजीवनं च यापयन्ति। लोकोपकाराय, लोककल्याणाय जनान् प्रेरयन्ति सुभाषितानि।

गोपालचिरतकाव्ये सुभाषितानि

√ सज्जनानां महत्त्वम्-

¹ म.भा., शा.प., अ .232, श्लो . 30

समाजः जीवबद्धः इत्युच्यते। समाजे च समये समये बहवः आपदाः आगच्छन्ति। ताश्च समाजे कुप्रभावं जनयन्ति। तमेव प्रभावं निराकर्तुं मध्ये मध्ये सज्जनाः आविर्भवन्ति।

महात्मा पुरुषः स्वेच्छया जीवोद्धराय स्वशरीरं धृत्वा समाजे निस्वार्थभावेन वासं करोति। तेन परोपकाररूपपुण्येन ते परमपदम् अवाप्नुवन्ति। परमपदस्य अर्थः अस्माभिः मोक्षत्वेन स्वीकर्तुं शक्यते। यतो हि अस्मिन्नेव काव्ये कविना प्रोक्तम्-

सन्तो यथेष्टं भुवि जीव जातेः सन्तारणायैव धरन्ति देहम्॥
परोपकारान्विविधान्विधाय तदीयपुण्येन परं प्रयान्ति॥॥²
न वास्तवं जन्म सतां जगत्यां मृत्युर्नचैषां भिवतुं क्षमोऽस्ति॥
त्यागः शरीरस्य विधारणा वा लोकोपकाराय मतौ तु तेषाम्॥³
दशैव तु सदाऽऽचार्यः श्रोत्रियानितिरच्यते।
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान् पिता दश॥
पितृन् दश तु मातैका सर्वां वा पृथिवीमिष।
गुरुत्वेनािष भवित नास्ति मातृसमो गुरुः॥⁴

एताभ्यां श्लोकाभ्यां माता एव सर्वश्रेष्ठा इति प्रतिपादितम्।अतः गुरुः एव परब्रह्म इति वाक्यबलात् च सर्वस्वसमर्पणेन स्वमातुपादाम्बुजं आर्चितव्यम्। ईश्वराराधनेन केवलं नैकानि शुभसाधनानि लब्धुं शक्यन्ते। न तु मातुसेवया प्राप्यमाणः बहूनां योगिनाम् इष्टकामः मोक्षः।

> विश्वेशमाराधयितुं लसन्ति शास्त्रेषु नानाशुभसाधनानि॥ सेवा जनन्याः सकलेषु तेषु सर्वोत्तमं साधनमभ्युपेतम्॥⁵

धर्मो रक्षति रक्षितः इति श्रुतेः अस्माभिः धर्माचरणमेव मुख्यात् सर्वदा धर्मम् आचिरतव्यम्। तस्य प्रयोजनत्वेन कविना प्रोक्तम्-

> धर्मोहि श्रेयसां मूलं पापं दुःखस्य कारणम्॥ धर्मेस्याद्वो मतिर्लोकाः न पापेषु कदाचन॥ ⁶

नरेषु बुद्धिमन्तः एव श्रेष्ठाः भवन्ति। बुद्धिरस्यस्ति स बुद्धिमान् इति कथ्यते। स एव विद्वान् इति लोकाचारः। विद्यायां प्राप्तायां स ब्रह्मणं साक्षात्करिष्यति इति प्रसिद्धाः बह्व्यः कथाः प्राप्यन्ते। अस्याः एव विद्यायाः महत्त्वविषये कविना उक्तम्-

भूतले यस्य विद्यायां प्रवृति नैव विद्यते॥

निष्फलः संभवस्तस्य यथाजाया गलस्तनौ॥⁷

² श्री गोपाल चरितं काव्यम्-2.19

³ श्री गोपाल चरितं काव्यम्- 2.20

⁴ महा.शान्तिपर्व: - 108,16-18

⁵ श्री गोपाल चरितं काव्यम्- 3.20

⁶ श्री गोपाल चरितं काळ्यम्- 5.33

⁷ श्री गोपाल चरितं काव्यम्- 6.6

आचार: मनुष्यजीवने बहु प्रभावं जनयति। तेषु संध्यावन्दनरूप नित्यकर्म अन्यतमं भवति। नित्यकर्माणि न आचरयन्ति चेत् उत्पद्यमाना: प्रत्यवाय दोषा: शान्तिमय जीवने बहु व्याघातं जनयन्ति। अत एव कविना समाजमुद्दिश्य नित्यकर्मविषये कथितम्-

सन्ध्यासु वन्दनं नित्यं कर्तव्यं नियतात्मिभः॥ जापश्चैव यथाशक्ति कर्तव्यः शांत मानसैः॥

असतां दर्शनात् स्पर्शात् संजल्पात् च धर्मचराः एव प्रहीयन्ते तत्र तु वयं मानवाः अतः किमपि साधियतुं न कर्तव्या दुर्जनसंगतिः। यतो हि दुष्टानां संगतिः हेया भवति। किञ्च ते नरकं प्रति गमयन्ति। तदेव प्राह-

दुष्टानां संगतिर्हेया विधेया साधुसंगति:। इमे हि नरक स्वर्गे बीज शास्त्रेषु भाषितम्॥°

इदानींतनकाले समाजस्य पुरुषाः सर्वे स्वार्थमेव चिन्तयन्तः सौत्कर्षं प्रापयितुं स्वजनमपि त्यजन्ति। तदेव प्रकटियतुं कविः प्राह-

न कस्यचित्कश्चिदिहास्ति लोके स्नेहो जनः स्वाख्य पराहि सर्वे। शक्तं प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुर्ये त्यजन्त्यशक्तं स्वजनं त एव॥ 10

जीवस्य अन्तिमसमये धर्मः एव सहायकः भवित न अन्यः कोऽिष। सर्वप्राणिषु दयां प्रदर्शयन्तु महिष् वाल्मीिकः दयागुणेनेव ज्ञानी अभवत्। एवं च रन्तिदेवः भगवतः दर्शनं प्राप्तवान्, युधिष्ठिरः भक्तपदं लब्धवान् आसीत्। सज्जनानां सेवया एव श्री नामदेवः भगवन्तं वशीकृतवान् अतः सर्वदा सज्जनानां सेवां कुर्वन्तु इति। दुष्टजनैः साकं संगितं मा कुरु-सर्वदा सत्यं वद यतो हि सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् इति महापुरुषाणां जीवनचरित्रपठनेन ज्ञायते– यथा सत्य हरिचंद्रः बिलचक्रवितं, भीष्मिपतामहः, प्रह्लादयः आदि। एवं चोरकर्म मा कुरु, ब्रह्मचर्यपालनं कुर्वन्तु इति। यथा– लक्ष्मण मारुतः वत्। आपदकाले धृतिं वहन्तु, मद्यपानं मा कुरु, अतिथि सत्कारं कुर्वन्तु, सर्वेभ्यः वस्तुभ्यः गुणग्राही भव। यज्ञयागादि कार्याणां द्वारा परमात्मा शीघ्रं प्रसीदित अतः यज्ञयागादि कार्यान् कुवन्तु। एवं प्रकारेण गोपालदासस्य मुखारविन्दात् अमृतोपदेशम् आकर्ण्य भक्ताः परमसन्तोषमनुभूय साष्टांगनमस्कारन् कृत्वा ततः निष्कान्ताः।

तस्य ध्यानं जीवाः जन्ममृत्यसंसारबन्धनात् मुक्त्यार्थं, मोक्ष प्राप्त्यर्थं च कुर्वन्ति। साकार उपासना नाम मन्दिरे स्थापिताः प्रतिमायाः विधिवत् पूजनम्।

वेदानां अध्ययेन परमपदस्य प्राप्तिर्भवतीति श्रुत्वा किश्चित् जनः अनुरागवसतः पप्रच्छ। यत् केवलं वेदेषु कर्मणः वर्णनं लभ्यते। न तु तत् ब्रह्मप्राप्तये समाधानं ततः मुनिभिः चतुर्णां साधनानां निर्देशः कृतः। तत्तु समादि सम्पत्तयः वैराग्यं मुमुक्षुता विवेकत्वेन कथ्यते। संसारिकभोगस्य परित्यागः वैराग्यम्। तथा विषयेभ्योः निवर्तनं कृत्वा इष्टेषु स्थापनं रामः। गच्छतां इन्द्रियाणां निरोधः दमः। प्राप्तेषु अनुकूलप्रतिकूलवस्तुषु हर्षः शोकः च न कुर्यात्। शीतोष्णादि द्वन्दं सिहिष्णिता तितिक्षा। विषयानां प्रति नैराश्यभावं प्रदर्श्य चित्तस्य स्थिरता समाधानम्। गुरुपदिष्टेषु वाक्येषु चेतसः भृति श्रद्धा। प्राप्तेषु विषयेषु मनसः रुचि उपरितः सम्पूर्णजगदिदं असत्यिमिति मत्वा सद्ब्रह्मचिन्तनं विवेकः। यथा हंसः मिश्रिते दुग्धपानिये दुग्धं विभजते तद्वद् विवेकवान् जनः सदसतः पृथकीकर्तुं शक्नोति।

⁸ श्री गोपाल चरितं काव्यम्- 6.40

⁹ श्री गोपाल चरितं काव्यम्- 6.76

¹⁰ श्री गोपाल चरितं काव्यम्- 14.44

मलिवक्षेण आवरणादि दोषै: जीवस्य मन: आवृतं भवित। एतेषां दोषानां परिहार: कर्तव्य:। कर्मोपासना ज्ञानं च एतेषां त्रयानां दोषानां परिहारोपाया: यथा मिलने दर्पणे प्रतिविम्बो न दृश्यते तद्धद् मिलने चेतिस ज्ञानं नोत्पद्यते। इयमिप लोकोक्तिः प्रसिद्धिति यत्– "बुद्धिः कर्मानुसारिणी" अतः कर्मणा मनुष्यः निर्मलं फलं भुक्ते। शास्त्रेषु विविध प्रकारकाणां कर्मणां फलं प्रतिपादतं वर्तते। यथा ब्रह्मचारिणां कृते वेदपाठ, गृहस्थानां कृते यागयज्ञाः कर्तव्यः इति प्रतिपादितम्। ततः परं सत्वगुणस्मर्णानां गनां महत्त्वं प्रतिपादितम्। गोपालनस्य सर्वोत्कृष्टता च समुपवर्णिता वर्तते। दुग्धं तक्रादिकं सात्त्विकत्वात् बुद्धौ अपि सात्त्विकता आयाति। सत्त्वगुणः ज्ञानस्य उत्प्रेरकः। अनेन अवश्यं ज्ञानं प्राप्यते। नरपश्वोः कर्माणि सर्वत्र समानानि। परन्तु विशेषता ज्ञानस्य वर्तते। अनेन प्रकारेण सर्वञ्च काव्यं पर्यालोच्य संक्षेपेण सुभाषितानि मया लिख्यन्ते।

सहायकग्रन्थसूची

- 1. अमरकोश: भारतीयविद्याप्रकाशनम्, नई दिल्ली
- 2. अलङ्कारशास्त्रस्येतिहास: डॉ. जगदीशचन्द्रमिश्र:, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, वाराणसी, 1986
- 3. अलङ्कारशास्त्रेतिहास: डाँ.जगदीशचन्द्रमिश्र. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन्, वाराणसी, 1999
- 4. आधुनिकसंस्कृतकाव्यशास्त्रम् डॉ आनन्दकुमार श्रीवास्तव:,ईष्टर्न बुक् लिकर्स, दिल्ली
- 5. पाणिनीशिक्षा पिङ्गलार्यसङ्कलिता, शिक्षाप्रकाश पञ्जिका सहिता, कलकाता
- 6. महाभारतम्, वेदव्यास पुने संस्करणम्,1961
- 7. मेदोनीकोश: भारतीयविद्याप्रकाशनम्, नई दिल्ली
- 8. रामायणं वाल्मीकि:, गीताप्रेस गोरखपुर, 1999
- 9. श्री गोपाल चरितं काव्यं, श्री वैष्णव वेदान्ताचार्य स्वामी रामदास, ऋषिपाणि नभोनेत्र, संख्येऽब्दे वैक्रमे परे।
- 10. संस्कृतसाहित्यस्य इतिहास: प्रो.हरेकृष्णशतपथी, किताबमहल, कटक -1998



India's New Education Policy: Impact and Challenges

Dr. Malti Verma

Assistant Professor A.N.D. Nager Nigam Mahila Mahavidyalaya, Kanpur, Uttar Pradesh, India

Abstract - Education is concerned with the physical, intellectual, emotional, moral and economic development of an individual. Education is the cornerstone of nation development. No nation or society can develop without education. Education not only helps in providing employment to the people but is also making a commendable contribution in providing new thinking and direction to the people. The committee constituted under the chairmanship of Dr.K. Kasturirangan presented the new draft of the National Education Policy to the government on 31 May 2019. The government approved this education policy in the cabinet meeting on July 29, 2020. This is the third education policy in India after the year 1986 which came into force in India. The objective of the new education policy is to make India a global superpower in the educational sector and to provide fair opportunities for education all over India, so that the quality of the educational sector can be developed. The aim of the new education policy is to make children aware of the importance of quality of education along with technology and creativity in India.

Keywords- Higher Education, Secondary Education, Education Policies, NPST ETC

Preface- Every student of the country should develop basic literacy and conceptual understanding while developing their all-round development with their unique ability, identity, with this goal, the Government of India had decided to implement the new education policy in 2020. This action plan, described as multidimensional, was made keeping in mind Goal of the Sustainable Development Agenda 2030 adopted in 2015, in which the Global Education Development Agenda is proposed. In this, it has been accepted to ensure inclusive and equitable quality education for all by 2030 and promote opportunities for lifelong education. Any healthy society can be assessed by the availability of accessible education system for the students in that society. The person who gave the world's largest written constitution to the country, Dr. Bhimrao Ambedkar had struggled with the crisis of this system in his student life. Despite this, famous personalities of the world became famous for their deeds. In the beginning of the new education policy, it has been clarified that in this, flexibility, multilingualism, ethics, humanism, constitutional values, life skills, connection to the roots of Indianness, etc. will be adopted prominently. This is the reason that along with Indian languages, there will also be arrangements for the study of Korean, German, Portuguese, Russian and other foreign languages, so that a student can understand the global scenario in the respective language. One of the things that has been kept prominently in the formulation of the New Education Policy, 2020 is to

give knowledge of words, sounds, colours, shapes, numbers etc. to the children from class one. It is possible for a school to teach a lot of this to its students in a smart classroom in lieu of expensive fees charged by private schools, but it should be clear how the government sees this point in the midst of the dilapidated system of a government school.

Now let's talk about the beginning of important activities related to the New Education Policy 2020. The school curriculum has been changed to meet the changing needs of the present era. Literature related to artificial intelligence and financial world has been included in the school syllabus. The New Education Policy 2020 has given special emphasis on mother tongue and local languages. In many states, teaching of these subjects in local languages has been started on an experimental basis. Many more programs related to the new education policy have also been started. These include Nipun Bharat Mission, Vidya Pravesh, Diksha and Nishtha. The goal of Nipun Bharat Mission is to improve reading, writing and arithmetic skills in children and sharpen their learning abilities by the time they complete the third grade. Vidya Pravesh has been designed keeping in mind the children of class I. In this course of three months, children are prepared for school education. DIKSHA is a program for providing e-content. In this, educational material is being made available through the portal. Whereas Nishtha is a program related to the training of secondary level teachers. As far as the introduction of new education policy and related programs in the states is concerned, so far it has been started in only a handful of states. In most of these states, the ruling party's government is at the center. Karnataka is the first state to implement the new education policy. The new education policy was implemented in Karnataka on August 24, 2020. After this, many programs related to the new education policy have been started in Madhya Pradesh and Himachal Pradesh too.

Education Policy is taking a very clear and well thought out approach to the issue of language learning and medium of instruction, taking into account the results of scientific research on language acquisition in children. Children learn language through interactions with their parents, other adults, and children. It is quite easy for a child to learn two or more languages—at the same time if they interact regularly with the speakers of those languages. Recent research also indicates that it is best for a child to start learning a second language at age 10 if they want to achieve perfect grammatical mastery like a native speaker.

These information about language learning by children, Dr. K. Kasturirangan Committee (Draft NEP 2019) and the Government of India to recommend continuation of the three-language formula adopted in the previous two education policies in NEP 2020, but also made two very important changes; First, that three-languages should be included at a more early stage—during the basic stage at 3–8 years of age, and carried forward at an early age of 8–11 years—so that young children can learn more about multiple languages. Second, that the choice of three languages should be left entirely to the parents and students.

These recommendations regarding medium of instruction and language learning are aligned with one of the key stated goals of NEP 2020, ensuring basic literacy and numeracy for all children up to grade 5 to correct poor outcomes in the ASER report. There is plenty of evidence to support the need for children to be educated in a language they understand until at least six years of age, but India has so far ignored this evidence. Many children today do not understand the language used as the medium of instruction in primary schools (whether regional or English), and their ability to learn is severely affected. This obstacle

remains with them as the teachers are continuously teaching beyond the initial reading. Very soon, within a few months, students fall behind and do not understand literacy and numeracy.

The phases of the New Education Policy are divided into 4 phases. After abolishing the 10+2 formula of the old education policy, the government is going to implement the new education policy in the formula 5+3+3+4. 3 years of free schooling and 12 years of schooling have been included in the new pattern of this new formula. It has been made mandatory to follow this formula by government and non-government institutions. Let us know the four phases of the new formula of the new education policy.

Foundation stage- Children in the age group of 3 to 8 years have been included in the foundation stage of the new education policy. In which 3 years of pre schooling has been included under which the language skills and educational level of the students will be assessed and the focus will be on its development.

Preparatory stage- Children of 8 to 11 years have been included in this stage, in which there will be children from 3rd to 5th grade. In this phase of the new education policy, special focus will be on strengthening the numerical skills of the students, where the children will also be given knowledge of the regional language.

Middle stage- Within this stage, children from class VI to VIII have been included, in which coding will be taught from the children of class VI. All the children will be provided vocational test as well as business internship opportunities.

Secondary stage- In this stage, students from class VIII to class 12 have been included. Within this stage, multiple elective educational courses have been introduced by eliminating the academic curriculum from class VIII to XII as well. Students can choose their subjects as per their choice and not within a specified stream. Under the new education policy, students have been given freedom to choose subjects; students can study science subjects as well as arts or commerce subjects simultaneously.

The New Education Policy-2020 will also fulfil the unfulfilled agendas of the old policies, in which their aim was to provide education to all and without any discrimination. The previous education policy came in 1986, which was revised in 1992. After the amendment the right to education became a fundamental right. For this the Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009 was made. The New Education Policy-2020, is the first education policy of the twenty-first century, has been prepared keeping in mind the 2030 development agenda. Its objective is to make India a superpower in the world by developing it into a knowledge based society. For this, school and college education has been made more inclusive. The new policy has been designed to have a more flexible and multidisciplinary education system keeping in mind the needs of the 21st century. Through this, the special potential of every student can be utilized properly.

The new curriculum has been designed in such a way that it can develop the intelligence of the child. The policy lays emphasis on raising the child on this basis from an early age. For this reason, instead of 10+2, the syllabus of 5+3+3+4 has been introduced. Under this, the curriculum has been designed based on the age of 3-8, 8-11, 11-14 and 14-18 years. With this change, children in the age group of 3-6 years will join schooling. This method is applicable all over the world and is believed to lead to better development of children.

In the new education policy, it has been said to make fundamental changes keeping teachers at the centre. Under this, such a selection process will be adopted, so that the best teachers at all levels are selected. In this whole process, the living, respect, prestige and autonomy of the teacher will also be taken care of. In the new system, emphasis will also be placed on the quality of education and accountability of teachers. In areas with very low literacy, the ratio of teachers to students is low. Teachers will be appointed there as soon as possible. We will use technology to understand the needs of teachers. Through this, each state will assess the need of teachers on a subject-based basis in the next 20 years. The appointments will be made on the same basis. In most developed countries, early schooling is imparted in the mother tongue of the children. The advantage of this is that along with the child, the parents also participate in his studies. The Right to Education Act 2009 states that the method of persuading and imparting practical knowledge to children should be in their mother tongue. According to the new education policy, the medium of instruction should be the mother tongue, local language or regional language in class VIII or, if possible, beyond that also. If it is not possible to do so, then till the fifth grade, every effort should be made that the medium of explanation should be the mother tongue. This arrangement will be for both government and private schools. On this basis, the central and state governments will be able to recruit teachers who know regional languages on a large scale. For this, different states can also make agreements among themselves for the recruitment of teachers. In this way their needs will be met on the basis of trilingual formula.

Board exams of class 10th and 12th will continue. But the method of examination and entrance examinations will be made such that the need for coaching classes will not be there. The student will have more subjects to choose from. They can study the subject as per their wish. The exam process will also become easier. It will be in such a way that even if a girl student takes a normal course on the basis of school education, she will do well in the examinations. He doesn't have to put any extra effort to get good marks. To reduce the exam pressure, the girl student will appear in the board exam twice in a year. One will be the main exam and the other will be taken for improvement if needed. A National Assessment Centre, PARKHA (Assessment, Review and Analysis of Knowledge for Holistic Development) will be set up which will set standards and guidelines for evaluation of students and all recognized boards. A National Testing Agency will also be set up which will conduct high quality Aptitude Test and Common Entrance Test for various subjects like Science, Language, Arts, Business and Humanities. On this basis, entrance examinations will be conducted in universities twice a year.

The vision of the new policy is to develop such an education system in which Indian traditions and values get a place, the education system gives a glimpse of India instead of India. Its objective is to create such an egalitarian and high quality education system that builds knowledge based society and establishes India as a superpower in the world. It will be the responsibility of the National Curriculum Framework Committee to incorporate these issues into the curriculum. The "Knowledge of India" will cover the contribution of people from ancient India to the times of modern India. We have to understand that its success will determine the direction of India's future hopes. This includes education, health and environment etc. In this, from the knowledge of tribal's to local and traditional methods will also get a place. These methods will be included in the syllabus only after understanding them in a scientific way. These methods will include in the fields of Mathematics, Astrology, Psychology, Yoga, Agriculture, Engineering, Language, Literature, Sports, Governance, Politics and Medicine etc. Necessary changes will

be made in all the courses from the introductory level itself. It will have a glimpse of Indian traditions, beliefs and locality. It will also include ancient and contemporary knowledge of culture, heritage, lifestyle, language, psychology. The curriculum will have examples of stories, art, games, etc., which will incorporate an element of Indian traditions and locality. Similarly, courses will be made for the medical system of tribal's, their forest conservation, traditional farming methods, natural farming etc.

The role of the states has been given importance in the new education policy. No part of the policy shall be imposed without the consent of the states. The thrust of the policy is to develop such a public education system which can provide quality education to all. A separate chapter has also been included in the Education Policy on how to stop commercialization of education. Apart from this, many such provisions have been made, which will stop commercialization. All educational institutions will be audited as a "non-profit" entity. If an institution earns extra income, then it will also have to spend in the development of education. A transparent disclosure policy will be adopted for all financial matters. The new education policy emphasizes on developing every language, art and culture equally.

New Education in India: Impact

- ✓ The biggest objective of implementing India's new education policy is to enable the students of India.
- Sanskrit and the ancient language of India will be given an important role in the studies. Sanskrit will also be taken forward in the field of IIT, as well as the students who want can study other subjects in Sanskrit language only.
- The board exam will also be made very easy. Earlier, the students who used to think that at the time of board examination only the preparation of the board should be done after studying in two-three months, this system will be abolished, now students will have to study throughout the year and the board examination can be taken in two phases.
- ✓ In order to make the studies easy, artificial intelligence software will also be used in the field of education to make the students understandable.
- In the new education policy, it has been said to keep the medium of instruction in the mother tongue, local or regional language till the fifth class. It can be extended to class VIII or beyond. Foreign languages will be taught from secondary level. However, in the new education policy it has also been said that no language will be imposed.
- ✓ A target of education for all has been set up to the secondary level with 100% GER in school education by 2030.
- At present, about two crore children living away from school will be brought back into the mainstream. For this, development of school infrastructure and establishment of new education centers will be done.
- The new curriculum structure of 5+3+3+4 will be replaced by the 10+2 structure of the school curriculum for children in the age group of 3-8, 8-11, 11-14, and 14-18 respectively. It has a provision

- to bring hitherto estranged children of 3-6 years of age under the school curriculum, which has been recognized globally as an important stage for the mental development of the child.
- The new education system will have 12 years of schooling with pre-schooling and three years of Anganwadi. Under this, three years of pre-primary and first and second classes have been kept for the initial stage studies of the students. The third, fourth and fifth classes have been kept in the next stage. After this, the introduction of the subject will be done in class 6-8 coming to middle school. All the girl students will appear for the examination only in class III, V and VIII. The 10th and 12th board exams will continue as before. But keeping in mind the goal of holistic development of the children, they will be redesigned. A new National Assessment Centre 'PARKH' (Performance Assessment, Review and Analysis of Knowledge for Holistic Development) will be set up as a benchmark-setting body.
- The emphasis will be on basic ability to read, write and add and subtract (numerical knowledge). Considering the acquisition of basic literacy and numerical knowledge as the most important and first requirement for proper learning, the Ministry of Human Resource Development (MHRD) in the New Education Policy 2020 laid special emphasis on setting up of a National Mission on Basic Literacy and Numerical Knowledge. has given.
- ✓ The NCERT will develop a National Curriculum and Educational Framework for Early Childhood Care and Education (NCPFECCE) for children up to the age of 8 years.
- ✓ No significant distinction shall be made between academic streams, extra-curricular activities and vocational education in schools.
- ✓ There will be special emphasis on the education of the marginalized groups from social and economic perspective.
- The National Professional Standards for Teachers (NPST) will be developed by the National Council for Teacher Education by the year 2022 in consultation with NCERTs, SCERTs, teachers and specialist organizations of all levels and sectors.
- ✓ To promote innovation, to inspire innovative ideas, to coordinate action between academia and industry, and to strengthen laboratories and research facilities, the Uchchatar Avishkar Yojana was launched in all Indian Institutes of Technology in the country.
- ✓ Under the National Institutional Ranking Framework, educational institutions are ranked by an independent ranking agency based on objective criteria.
- The Global Initiative of Academic Networks scheme facilitates partnerships between institutions of higher education in India and other countries to harness the international talent of scientists and entrepreneurs.

Thus changing the structure of the current teaching method, 5+3+3+4 has been included. As a result, a new complex will be created by including primary classes, which will create new standards in addition to

the existing school curriculum. Thus from the age of three, the child will become a part of the formal education system. This is the first phase of the education system. This education policy envisions a period of 3 to 8 years as the foundation stage before the start of actual education. During this period, effective teaching of values like physical and mental development, cleanliness, practical knowledge and co-operation is to be imparted through sports. The aim of the policy is to provide education for living, strengthen the link between education and life.

New Education Policy: Major Challenges- Another aspect of the new education policy is very worrying. Regarding the appointment of school teachers, it was clearly stated in the new education policy that people especially those from rural background should come into the profession of teaching. For this, a four-year B.Ed course will be started. In the country, lakhs of people are still roaming, protesting on the streets demanding the compulsory to become BEd, BTC and other teachers. In such a situation, the government seems to want to postpone this question for some time perhaps with another new qualification.

Five big challenges- The New Education Policy 2020 has gained momentum to some extent, but the path to its full implementation is full of obstacles. First, in view of the sheer size of a country like India and the diversity of its education sector, implementing any new initiative is like climbing a mountain. There are more than 15 lakh schools in India, more than 25 crore girl students and about 89 lakh teachers. The system related to higher education in the country is also very big. All India Survey of Higher Education's 2019 report has presented all the data related to higher education in India. According to the report, 3.74 crore girl students are pursuing higher education in India. There are about one thousand universities, 39,931 colleges and 10,725 independent institutions in the country. There are about one thousand universities, 39,931 colleges and 10,725 independent institutions in the country. It is clear that there is a huge scope for implementing the new education policy across the country. It includes various roles at the state, district, tehsil and block levels. There is a lot of diversity at the state and district level in India. Of course, creating a shared pattern of responsibilities and ownership status among all these characters along with the private sector is a huge challenge.

Number 3.74 crore girl students are pursuing higher education in India. There are about one thousand universities, 39,931 colleges and 10,725 independent institutions in the country. Obviously, the exercise related to the implementation of the new education policy across the country is huge.

Second, the entire exercise of achieving the goals of the New Education Policy is related to the capacity of the state. The chairman of the committee to draft the new education policy, K. Kasturirangan has also pointed this out. He is of the view that India's education system is a victim of scarcity. Here bureaucracy prevails. There is a lack of necessary capacity related to new experiments or innovations and raising their level. Therefore, under the new education policy, a target has been set for radical changes in the education world. The internal capacity within the education ministries (at the Center and in the states) and other regulatory bodies is grossly insufficient to cope with such changes. Under the new education policy, the goal is to move away from the existing education system based on pre-determined materials and rote-rote techniques, towards practical education and education based on deep thinking. For this, a revolutionary change will have to be brought in the thinking of the people who run the education world. Along with this, it is very important to bring changes in the behaviour of teachers, students and parents.

Number three, the implementation and success of the new education policy will largely depend on the cooperation between the Centre and the states. Even though the draft of the new education policy has been prepared by the central government (based on the suggestions received from all the concerned parties including the state governments), but its implementation will depend on the active participation of the states. This is because most of the service-based education is provided by the state governments. While initiating all the programs related to the New Education Policy, the Centre will have to proceed very efficiently according to the principles of cooperative federalism and decentralisation. However, this whole exercise is not easy. The process of political polarization has accelerated in recent years. At present, the door of trust between the Centre and the states has been seen to be breaking.

Fourth, the role of the private sector (especially in the case of the higher education system) is crucial in realizing the inclusive vision of the New Education Policy. Significantly, about 70 percent of the institutions (colleges and universities) associated with higher education are run by the private sector. About 65–70 percent of the girl students pursuing higher education are taking education in higher education institutions run by the private sector. In fact, the private sector operating in the field of higher education brings with it the necessary financial resources and innovation. Governments and regulatory bodies have to consider the private sector as their equal partner in the entire process related to the new education policy. Simultaneously, working institutional arrangements will also have to be made to facilitate the contribution of the private sector.

Finally, one important thing is that for the successful implementation of all the programs related to the new education policy, sufficient financial resources will be needed for the coming decades. In this regard, it has been clearly stated in the sixth that for the realization of the goals of the new policy, public expenditure in the field of education will have to be taken up to 6 percent of GDP. This is a tough challenge. At least it seems so in view of the promises made in the past and the actual successes. In this regard, we can take the example of the National Education Policy of 1968. In that policy also, it was recommended to allocate 6 percent of GDP for the education sector. However, even after so many decades, public expenditure on education has not been able to exceed 3 per cent of GDP. It is a strange irony that the year when the new education policy was launched, the allocation of education sector decreased in the same year in the Union Budget. The education budget of the Centre was Rs 99,311 crore in 2020-21, which was reduced by 6 per cent to Rs 93,224 crore in 2021-22. However, this year due to the Kovid-19 epidemic, the priorities of the government have changed. A large part of the country is struggling with the economic problems arising due to the pandemic. The reduction in the education budget is understandable due to the increase in the welfare expenditure of the government due to Kovid-19. However, to take the expenditure on education to 6 percent of GDP, huge financial resources will have to be juggled. However, the modalities of this entire exercise are not yet clear.6

Low Enrollment Rate: According to the All India Survey on Higher Education Report 2018-19, the Gross Enrollment Ratio in higher education in India is only 26.3 percent, which is much lower in other developing countries relative to developed countries.

Political interference: The increasing interference of politicians in the management of higher education threatens the autonomy of higher educational institutions. Apart from this, students organize political activities in universities and forget their objectives and start developing their career in politics.

Poor infrastructure and facilities: Poor infrastructure is a major challenge to the higher education system of India, especially the institutions run by the public sector suffer from poor physical facilities and infrastructure. Shortage of faculty and the inability of the state educational system to attract and retain qualified teachers has been posing a challenge to quality education for many years. A large number of NET/Ph.D. degree candidates are unemployed despite having a lot of vacancies in higher educational institutions.

Inadequate research: There is not enough focus on research in higher educational institutions. There are insufficient resources and facilities to mentor students, as well as a limited number of quality teachers.

Weak Administrative Structure: Management of the Indian educational system faces challenges such as hyper-centralized bureaucratic structures lack of accountability, transparency and professionalism. As a result of the increase in the number of affiliated colleges and students, the administrative workload of universities has increased significantly thereby reducing the focus on quality of academics and research.

Problem of Quality: Ensuring quality in higher education is one of the challenges facing the education sector in India today. However, the government is constantly focusing on quality education. Nevertheless, a large number of colleges and universities in India are unable to meet the minimum requirements set by the UGC, due to which our universities are not in a position to make their place among the top universities of the world.

Thus, there are many challenges in the new education policy, for which concrete steps need to be taken. Directly among the many positive and negative aspects of the New Education Policy, 2020, the policy-makers of the country should also include the current challenges. The condition is that despite having more than a hundred years of media education in the country, people start showing people involved in bloodshed with a well-publicized message.

Conclusion- The New Education Policy 2020 is truly a revolutionary document in every way. The policy emphasizes on addressing educational issues and structural disparities, among other issues. It has a blueprint to make education comprehensive and accessible, keeping in mind the needs of India in the 21st century and to prepare students for future demands. Along with this, there is also a difficult challenge in front of the new education policy to deal with many problems of the education world. Certainly India wants to take advantage of its young population. At the same time, we want to use the opportunities that arise in the fast-growing knowledge-based economy to our advantage. In such a situation, it becomes very necessary to effectively implement the new education policy. The new education policy is the garland of transformation of the country. This is the reason that despite all the challenges related to the epidemic, the Central Government, realizing its seriousness and purpose, has taken several steps immediately. Many programs related to the new education policy have been started by the government. This policy has been implemented in many states also. The process of adopting it is going on in many other states. However, the new

education policy has a long way to go. There will be a need for synergy and cooperation among various stakeholders, including the state, district and private sector. This is certainly a very difficult task due to the sheer size and complexities involved in execution. Along with this, the problems related to the weak capacity of the state and the availability of financial resources will also have to be overcome. India's educational system does not accept new ideas and innovations easily. Therefore, concrete initiatives will be required on this front as well. However, the biggest challenge is to build a consensus on the sixth. States will have to be prepared to join such a program for the first time since 1986. In short, the success of the new education policy largely depends on cooperative federalism. For this, the states have to lead the reform process.

References

- 1. Nandini, ed. (29 July 2020). "New Education Policy 2020 Highlights: School and higher education to see major changes". Hindustan Times. Retrieved 30 July 2020.
- 2. Vishnoi, Anubhuti (31 July 2020). "No switch in instruction medium from English to regional languages with NEP '20: HRD". The Economic Times. Retrieved31 July2020.
- 3. Gohain, Manash Pratim (31 July 2020)."NEP language policy broad guideline: Government".The Times of India. Retrieved31 July2020.
- Jebaraj, Priscilla; Hebbar, Nistula (31 July 2020). "Rigorous consultations done before framing new National Education Policy, says Ramesh Pokhriyal Nishank". The Hindu. ISSN 0971-751X. Retrieved 2 August 2020.
- 5. Rohatgi, Anubha, ed. (7 August 2020). "Highlights NEP will play role in reducing gap between research and education in India: PM Modi". Hindustan Times. Retrieved8 August 2020.
- 6. Radhakrishnan, Akila (16 September 2020)."Draft New Education Policy and Schools for the Skilling Age".The Hindu Center. Retrieved31 July2020.
- Srinivasan, Chandrashekar, ed. (29 July 2020). "National Education Policy, NEP 2020: Teaching in Mother Tongue Till Class 5: 10 Points On New Education Policy". NDTV. Retrieved29 July2020.
- 8. Kulkarni, Sagar (29 July 2020). "New policy offers 5-3-3-4 model of school education". Deccan Herald. Retrieved August 2020.
- 9. Kumar, Shuchita (31 July 2020). "New education policy: The shift from 10+2 to 5+3+3+4 system". Times Now. Retrieved August 2020.
- Kumar, Prakash (30 July 2020). "National Education Policy 2020 Proposes Breakfast For School Children, Besides Mid-day Meals". Outlook. Retrieved31 July2020.
- 11. Bhura, Sneha (30 July 2020). "In defence of MPhil: Why the degree should not be discontinued". The Week. Retrieved 30 July 2020.

- 12. Kumari, Anisha, ed. (30 July 2020). "National Education Policy 2020: UGC, AICTE, NAAC To Be Merged In A New Body".NDTV.com. Retrieved9 August2020.
- 13. Shukla, Amandeep (29 July 2020). "National Education Policy 2020: UGC, AICTE era over, NEP moots HECI, single regulator with 4 verticals". Hindustan Times. Retrieved31 July2020.
- 14. Shukla, Amandeep (29 July 2020). "New Education Policy 2020: NEP moots professional standards for teachers". Hindustan Times. Retrieved August 2020.
- 15. "National Education Policy: NTA to conduct common entrance exam for higher education institutes". The Indian Express. 29 July 2020. Retrieved 30 July 2020.
- 16. Krishna, Atul (29 July 2020). "NEP 2020 Highlights: School And Higher Education". NDTV. Retrieved31 July2020.
- 17. Rajeev, K. R. (31 July 2020). "Teacher education set for major overhaul". The Times of India. Retrieved31 July2020.
- 18. 4-year BEd degree to be minimum qualification for teaching by 2030, says new NEP.Livemint. PTI. 30 July 2020. Retrieved31 July2020.



आधुनिकसमाजे यागानां प्रासङ्गिकता

डा.सुधांशुशेखरमहापात्रः

सहाचार्यः, धर्मशास्त्रविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः।

सारांशः – यागो नाम देवता उद्देश्येन द्रव्यत्यागः। नानाविधफललाभाय यजमानेन यागानुष्ठीयन्ते। स च यागः श्रौतस्मार्तभेदेन द्विविधः। श्रौतयागोऽपि त्रिविधः इष्टिः पशुः सोमश्चेति। स्मार्त्ताश्च पुनः ऋष्यादि पञ्चमहायज्ञः। ऋषियज्ञः अथवा ब्रह्मयज्ञः, देवयज्ञः, पितृयज्ञः, नृयज्ञः अथवा अतिथियज्ञः, भूतयज्ञश्चेति। अत्र यज्ञशब्दः यागस्य पर्यायवाच्येव। पुनश्च नित्य नैमित्तिककाम्यभेदेन यागोऽयं त्रिविधः। यथा– सायं प्रातः अग्निहोत्रं जुहुयात्, वसन्ते वसन्ते सोमेन यजेत इत्यादिना विहिताः फलरिहता यागा नित्याः। ब्रह्महत्यादि पाप उपनोदायत्वानुष्ठीयमानाः अश्वमेधादियागा नैमित्तिकाः। वृष्ट्यादिकामेन क्रियमाणाः कारीर्य्यादियागाः काम्या एव इति नास्ति संशयः। तत्र शास्त्रनुसारेण प्रत्यवायनिवारणाय नित्ययागानां, पापानां क्षयाय नैमित्तिक यागानां विविध फललाभाय च काम्ययागानां अनुष्ठानं परम्परया अनादिकालात् लोके प्रवर्त्तते। यद्भवतु एतादृशानां यागानां आधुनिकसमाजे कीदृशी प्रासिङ्गकता अस्ति तद्विषये साम्प्रतम् आलोच्यते।

मुख्यशब्दाः – यागानां, यज्ञः, यज्ञार्थं, पञ्चमहायज्ञानाम्।

यज् धातोः घञ् प्रत्यये कृते यागशब्दो निष्पद्यते। वेदवोधितइष्टसाधनातको धर्म इति धर्मस्य लक्षणं कुर्वता कृष्णयज्वना यागादिरेव धर्म इति प्रतिपादितम् वस्तुतो यागो नाम देवता उद्देश्येन द्रव्यत्याग इति। यागोऽयं मानसव्यापारः, यः यजमानेन मनसा कल्प्यते। अग्न्यादि देवतामुद्दिश्य यदा किश्चद् यजमानः घृतादिकं वस्तु त्यजित तदा स मनिस कल्प्यति यत् इदं अग्नये स्वाहा न इदं मम इति। तावता यागः सम्पन्नः। तिस्मन् समये अध्वर्य्युः अग्नये स्वाहा इति मन्त्रं उच्चारयित। होता च स्रुवे विद्यमानं घृतमग्नौ निक्षिपित। तच्च निक्षिप्यमाणं कर्म यागस्य प्रतिपत्तित्वेन होमशब्देन कथ्यते। एतेन यागहोमयोर्मध्ये सामान्यतः भेदो वर्त्तत इति ज्ञायते। अतो यागः यजमानेन फललाभाय क्रियते। ऋत्विजः दिक्षणां प्राप्य तं सम्पादयन्ति। तेन यजनं यजमानस्य धर्मः कर्म च भवति। याजनं तु ब्राह्मणस्य ऋत्विजः कर्म भवति, येन असौ जीविकानिर्वाहं करोति। अत एव नानाविधफललाभाय यजमानेन यागानुष्ठीयन्ते।

स च यागः श्रौतस्मार्त्तभेदेन द्विविधः। अग्निहोत्रदर्शपौर्णमासादयः श्रौतयागोऽपि त्रिविधः इष्टिः पशुः सोमश्चेति। तत्र सायं प्रातः अग्निहोत्रं जुहुयादिति वचनात् प्रत्यहं सायं प्रातश्च नित्यत्वेन अग्नौ हवनं कर्त्तव्यं भवित। ओषधीप्रधानयागः इष्टिः, औषध्यः फलपाकान्ताः इति मनुवचनानुसारेण ओषधीभिः यवब्रीह्यादिभिः पुरोडाशं निर्माय तेन निष्पाद्यमानो यागः इष्टिः। सर्वासां इष्टीनां दर्शपौर्णमासौ प्रकृतिभूतौ। अन्याः सर्वाः आग्रयणेष्टि प्रभृतयः विकृतिभूता भविन्त। पशोः वपाहृदयादिना अङ्गविशेषेण क्रियमाणो यागः पशुयागः, सर्वेषां पशुयागानां प्रकृतिः अग्निषोमीयपशुयागः एव। अन्ये सर्वे निरुढ पशुबन्धादयो विकृतिभूताः। तदवत् सोमलताकुट्टनद्वारा रसं निष्पाद्य तेन क्रियमाणो यागः सोमयाग इति। सर्वेषां सोमयागानां प्रकृतिः अग्निष्टोमः। अन्ये च अग्निष्टोमादयो विकृतिभूताः परिकित्यताः स्मार्त्ताश्च पुनः ऋष्यादि पञ्चमहायज्ञः। ऋषियज्ञः अथवा ब्रह्मयज्ञः, देवयज्ञः, पितृयज्ञः, नृयज्ञः अथवा अतिथियज्ञः, भूतयज्ञश्चेति। तत्र ब्रह्मयज्ञो नाम वेदानां अध्ययनं, देवयज्ञनाम

देवतानां पूजनं, पितृयज्ञशब्देन पितृ उद्देश्येन क्रियमाणं श्राद्धं तर्पणादिकञ्च वोध्यते। अतिथियज्ञो नाम अतिथिसत्कारः, भूतयज्ञो नाम बलिवैश्वदेव कर्म इत्यादि। अत्र यज्ञशब्दः यागस्य पर्यायवाच्येव।

द्विविधोऽपि अयं यागः पुनश्च नित्य नैमित्तिककाम्यभेदेन त्रिविधः यस्य अकरणे प्रत्यवायः करणेऽपि फलं न श्रूयते स यागो नित्यः। यथा– सायं प्रातः अग्निहोत्रं जुहुयात्, वसन्ते वसन्ते सोमेन यजेत इत्यादिना विहिताः फलरहिता यागा नित्याः। ब्रह्महत्यादि पाप उपनोदायत्वानुष्ठीयमानाः अश्वमेधादियागा नैमित्तिकाः। वृष्ट्यादिकामेन क्रियमाणाः कारीर्य्यादियागाः काम्या एव इति नास्ति संशयः। एवं प्रकारेण शास्त्रनुसारेण प्रत्यवायनिवारणाय नित्ययागानां, पापानां क्षयाय नैमित्तिक यागानां विविध फललाभाय च काम्ययागानां अनुष्ठानं परम्परया अनादिकालात् लोके प्रवर्तते।

यागानाम् उपयोगिताविषये वेदवेदाङ्गादिषु वहु प्रमाणम् उपलभ्यते। वेदाङ्गज्योतिष शास्त्रानुसारेण सर्वेवेदा यज्ञार्थमेव सुष्टा:। अतएव उक्तं ⁱतत्र-

> वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः। तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेदसवेद यज्ञम्॥ इति॥

यजुर्वेदे सायणाचार्येण यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म इति प्रतिपादितम्। "श्रीमद्भगवत् गीतायां प्रतिपादितं यत्-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ इति॥

^{ііі}मनुनाऽपि यज्ञार्थमेव वेदानां उत्पत्तिरिति प्रतिपादितम्। तद्यथा-

अग्निवायुरिवभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्।।

पुनश्च ivतेन उक्तं- स्वाध्यायेन व्रतेर्होमेस्त्रैविद्येनेज्यया सुतै:।

महायज्ञेश्च यज्ञेश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

अतः शरीरस्य संस्कारार्थमिप यज्ञानां आवश्यकता विद्यते। एतावता यज्ञानां महत्ता सम्यक् प्रतिपादिता। यद्यपि धर्मशास्त्रे माहिंस्यात् सर्वभूतानीति वचनात् पशुवधो निषिद्धस्तथापि यज्ञार्थं पशुवधकरणे न दोष इति मनुना साक्षात् प्रतिपादितम्। यथोक्ते प्तेन स्वस्मृतौ–

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः। भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा।।

पुनश्च यज्ञार्थमेव पशुनां सृष्टि: साक्षादेव ब्रह्मणा कृता। तेन यज्ञार्थं पशुवध: अवध इत्यपि प्रतिपादितम्। viतद्यथा-

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा। यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥

यदा काले काले यज्ञा अनुष्ठीयन्ते तदा घृताहुतिभ्य समुत्थितो धूमः आकाशे गत्वा मेघं सृजित। मेघश्च वारि वर्षणद्वारा भूमौ अन्नानि सम्भावयित यद् भुक्त्वा प्राणिनः जीवनधारण कुर्वन्ति। एतेन ज्ञायते यत् प्राणिनां जीवनधारणार्थं यज्ञानाम् आवश्यकता काले काले वर्त्तते। प्रसङ्गेऽस्मिन् उक्तं प्रांश्रीमद्भगवत्गीतायां यत्–

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः। यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।। कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। इति।।

अत्र अयम् अभिप्रायो यत् यदि यज्ञानाम् अनुष्ठानं न स्यात् तर्हि वृष्टिर्न सम्भवेत्। येन जगित शस्यमिप सञ्जायेत न वा जना अन्नगत प्राणाः जीवितुमर्हेयुः। अपि च प्रत्यहं पञ्चमहायज्ञानाम् अनुष्ठानाद् जनः विशेषेण सूनादोषग्रस्तो भवित। सूना नाम वधस्थानम्, गृहस्थः स्व गृहे पञ्चसूना स्थापयित, या विना तस्यकर्म कदापि न प्रचलेत्। ताश्च सूनाः का इति जिज्ञासायां प्रामनुना उक्तं यत्–

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्।।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लुप्ता महायज्ञः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्।।

अर्थात् गृहस्थ स्वगृहे पाकार्थं चुल्ली, पेषणार्थं पेषणी, सम्मार्जनार्थम् उपस्करं, धान्यानां वितुषीकरणार्थं कण्डनी, जलपानार्थं च जलकुम्भं न संस्थाप्य न चिलतुम् अर्हतीति हेतोः एतानि गृहस्थस्य गृहे अनिवार्यरूपेण तिष्ठन्ति। परन्तु तेषु प्रत्येकं एकैकं वधस्थान तुल्यं भवति यतो हि तद्वारा गृहस्थेन अनिच्छयापि प्राणबधः क्रियते। तस्मात् तत् पापं उपनोदाय गृहस्थः स्वगृहे प्रतिदिनं पञ्चमहायज्ञानाम् अनुष्ठानं कुर्य्यादेव येन सूनादोषेण असौ न लिप्यते। तत्र के तावत् पञ्चमहायज्ञा इति विक्षायां ixमनुना प्रतिपादितं यत्–

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिभौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। पञ्चेतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः। सगृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते।।

अतः प्रतिदिनं पञ्चमहायज्ञानाम् अनुष्ठानस्य महतो उपयोगिता वर्त्तते। पुनश्च यागानां अनुष्ठानकाले वैदिकमन्त्राणाम् उच्चारणं क्रियते। तेन देवानां स्तुतिर्भवति। देवाश्च सन्तुष्टाः फलदा भवति। अतएव ऋग्वेदे अथर्ववेदे च वहुनि सूक्तानि सन्ति। यासु जगतः कल्याणं काम्यते। *तद्यथा-

> शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्राबृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ शन्नो वातः पवतां शन्न स्तपतु सूर्यः। शन्नः कनिक्रदद् देव पर्जन्योऽभिवर्षतु॥ इत्यादि

परन्तु सम्प्रति भौतिकवादं प्रति आकृष्टा मानवा यागादिकं न अनुतिष्ठन्ति। अतो यागादिनाम् अभावे अद्यत्वे कुत्रचित् अतिवृष्टिः, कुत्रचित् च अनावृष्टिः, क्वचित् जलप्लावनं, गृहदाहः भूकम्पः, चक्रवातादि प्राकृतिक विपर्ययाः सर्वत्र प्रदृश्यन्ते। प्रसङ्गेऽस्मिन् ^{xi}कालिकापुराणे दृश्यते यत्-

> यज्ञाभावातु देवानामन्नं सर्वं क्षयङ्गतम्। पर्जन्यश्च ततो नष्टस्ततो वृष्टिर्न चाभवत्।। वृष्ट्यभावे तु लोकानामाहारः क्षीणतां गतः। दुर्भिक्षे व्यसनोपेते सर्वलोके द्विजोत्तमः।। इति।।

अतः आधुनिककालेऽपि दर्शपौर्णमासादीनाम् अनुष्ठानं कर्त्तुं न शक्यते चेत् केवलं न्युनातिन्यूनतया जनैरग्निहोत्रं कर्त्तव्यम्। तावताऽपि देवास्तुष्यन्ति। प्रसङ्गेऽस्मिन् ^{xii}विष्णुधर्मोत्तरपुराणे वर्णितं यत्-

विद्वतिन हिवषा तृप्तिमायान्ति देवताः। तास्तृप्तास्तर्पयन्त्येव नरं सौख्यसमृद्धिभिः॥ इति॥

एवं प्रकारेण साम्प्रतिक समाजे यागानां कियती प्रासङ्गिकता तद्बोद्धं शक्यते।

टिप्पणी-

ⁱ.सिद्धान्तशिरोमणि: −वासनाभज्यवार्तिकसहिता, ग्रहगणिताध्याय:, पृ.−11

सन्दर्भग्रन्थसूची-

मनुस्मृति: - मन्वर्थमुक्तावलीसहिता, मोतिलाल वनारसीदास, दिल्ली, 1990

कान्वसंहिता - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2002

कालिकापुराणम् - चौखम्बा संस्कृत सीरीज अफिस्, वाराणसी-1, 1972

विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् - नाग पब्लिसर, जवाहरनगर, दिल्ली-7, 1985

श्रीमद्भगवद्गीता - गीताप्रेस, गोरखपुर

सिद्धान्तशिरोमणि: - सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय:, वाराणसी, 1981

ii.श्रीमद्भगवद्गीता- 3/10

ⁱⁱⁱ.मनुस्मृति: - 1/23

iv.मनुस्मृति: - 2/28

v.मनुस्मृति: - 5/22

vi.मनुस्मृति: - 5/39

vii.श्रीमद्भगवद्गीता- 3/14-15

viii. मनुस्मृति: - 3/68,69

ix.मनुस्मृति: - 3/70,71

x.कान्वसंहिता- 36/1/9,10

xi.कालिकापुराणम्- 20/115,116

xii.विष्णुधर्मोत्तरपुराणम्, अध्याय:- 287, श्लोक: - 7



विचारधारा, आधुनिक हिन्दी कविता और निराला का शिल्प-सौन्दर्य

प्रशांत कुमार शोधार्थी, भारतीय भाषा केंद्र, भाषा, साहित्य और संस्कृति अध्ययन केंद्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सारांश - विचारधारा का यह दुर्भाग्य रहा है कि उसका प्रयोग नकारात्मक अर्थों में अधिक होता आया है। सन 1960 में डेनियल बेल की पुस्तक 'दि एंड आफ आईडियालॉजी' के साथ विचारधारा के अंत की घोषणा होती है। इसके साथ जब रोला बार्थ का 'लेखक की मृत्यु' का सिद्धान्त जुड़ता है तो साहित्य से भी विचारधारा को खदेड़ने की माँग होने लगती है। मलामें का एक प्रसिद्ध कथन है- काव्य की रचना विचारों से नहीं शब्दों से होती है। इस उक्ति का उपयोग साहित्य में विचारों की प्रतिष्ठा के विरोध में किया जाता है। विचारधारा के विरोध में भी एक विचारधारा काम करती है जिसका कुछ न कुछ व्यक्तिगत, कला-संबंधी, वर्गीय या दलीय प्रयोजन होता है। ध्यातव्य है कि जिस समय यूरोप एवं अमेरिका में विचारधारा के अंत की घोषणा की जा रही थी, उस समय कविता मनुष्य से अपना संबंध-विच्छेद कर शाब्दिक जालों में उलझी हुई थी। ई0ई0 कंमिग्ज या सैण्डबर्ग उस समय कविता की विषय-वस्तु एवं मानवीय संबंधों को नजरअंदाज कर रहे थे। सैण्डबर्ग ने घोषणा की थी कि कविता काव्यात्मक विषयों की आकांक्षिणी नहीं होनी चाहिए और वह 'स्टीम इंजन' पर लिखी जानी चाहिए। किमंग्ज शब्दों के अक्षरों को तोड़कर अर्थहीन या अर्थमुक्त उद्धावनाएं कविता के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। वस्तुतः विचारधारा को खारिज करने की वकालत साहित्य में मनुष्य की उपस्थित को एक हद तक अप्रकाशित रखने और साहित्य में कलावाद को जीवित करने का एक प्रयास थी। हिन्दी कविता में विचारधारा के बरक्स कवितायें लिखी गई हैं। निराला की कवितायें अपने विचारधारा के बरक्स विशेष शिल्प कला के लिए भी रेखांकित की जाती रही हैं। इस शोध पत्र में निराला के शिल्प सौन्दर्य को केंद्र में रखकर उनके विचारधारात्मक सौन्दर्य को रेखांकित किया गया है।

बीज शब्द: हिन्दी कविता, विचारधारा, निराला का साहित्य, भाषा, कविता का शिल्प पक्ष।

विषय-वस्तु के चयन एवं किवता के शिल्प-निर्माण में किव का आत्मपक्ष भी समाहित होता है। राजशेखर ने एक पुरानी कहावत का उदाहरण देते हुए लिखा है- "स यत्स्वभावः किवस्तदनुरूपं काव्यम" अर्थात जैसा किव-स्वभाव होता है, वैसी ही उसकी किवता होती है। अतः किव-स्वभाव या किव-व्यक्तित्व में भिन्नता के कारण एक ही युग में भाषा का एक सामान्य स्वरूप होते हुए भी किवता की विषय-वस्तु के चयन एवं उनके रूप-पक्ष के निर्माण में अंतर दिखाई पड़ता है। वस्तुतः किव द्वारा भाषा-प्रयोग के पीछे उपलब्ध भाषा से कहीं अधिक किव का रचनात्मक परिवेश, भाषा-संस्कार, अध्ययन क्षेत्र, व्यक्तिगत रूचि, उद्देश्य, किव-प्रतिभा, किव की विश्व-दृष्टि आदि दूसरे प्रभाव काम करते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो किव की विचारधारा का प्रभाव उसके रचना-शिल्प पर भी पड़ता है। प्रत्येक किव अपने व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा-शैली का उपयोग करता है। एडमंड विल्सन के शब्दों में कहें तो "प्रत्येक किव का अनूठा व्यक्तित्व होता है"। अतः वह उस अनूठे व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिए विशिष्ट भाषा खोज निकालता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसी संदर्भ में 'न्यूमन' के लेख 'लिटरेचर' का भावानुवाद करते हुए लिखा है- "कल्पना और विचार उसके (किव के) अतःकरण के निवासी हैं जो शब्दों के

SHISRRJ2033133 | Accepted : 14 Jan 2022 | Published : 10 Feb 2022 | January-February-2022 [5 (1) : 112-118]

रूप में परिवर्तित होकर, जैसे भाप जल के रूप में परिवर्तित हो जाता है, उसके मुख से निकल पड़ते हैं और उसके चित्त को एक तरह से हल्का कर देते हैं। उसके चित्त की अवस्था और प्रवृत्ति, उसका आतंरिक स्वभाव सौंदर्य तथा उसके विवेचन की सूक्ष्मता और शक्ति इत्यादि उसकी भाषा में प्रतिबिंबित हो जाते हैं।जब विचार और कल्पना किव की निज की वस्तु हैं तो कोई आश्चर्य नहीं जो उसकी स्टाईल अर्थात लिखने का तर्ज और उसकी भाषा भी केवल उसके विषय ही का प्रतिबिंब न हो, बल्कि उसके हृदय का भी प्रतिबिंब हो। ""

साहित्य और विचाराधारा का अभिन्न संबंध रहा है। किन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने 'आस्था और सौन्दर्य' में लिलत कलाओं को विचारधारा के रूपों में नहीं गिना है क्योंकि उनमें भाषा का प्रयोग नहीं होता और वे विचारों की व्यंजना के लिए भाषा को अनिवार्य मानते हैं। उनके अनुसार "साहित्य भी शुद्ध विचारधारा का रूप नहीं है। उसका भावों और इन्द्रिबोध से घनिष्ठ संबंध है।" यह कहना कि केवल भाषिक कलाओं की ही विचारधारा होती है, गलत है। रंगों में भी विचारधारा छिपी होती है। लाल झण्डा किस वर्ग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है, यह बताने की जरूरत नहीं है। प्रगतिवादी किव नरेन्द्र शर्मा ने तो 'लाल निशान' नामक काव्य-संग्रह ही लिख डाला था। उनका यह कहना- "लाल फौज के लिए कमर कस या लाल रूस है ढाल साथियों मार्क्सवादी विचारधारा को ही अभिव्यक्त करता है।"

डॉ. नंदिकशोर नवल ने संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रति एक विचारोत्तेजक प्रश्न उठाया है- ''यह दिलचस्प है कि भारतीय काव्यशास्त्र में सौन्दर्य और रस की चर्चा तो है, लेकिन उसमें विचारधारा क्या, विचार का भी कोई संदर्भ नहीं मिलता।"3 दरअसल, संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा शिष्ट समुदाय की वर्चस्वशील संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है और विचारधारा की बात न करना एक प्रकार से पौराणिक विचारलोक से पोषित वर्गीय स्थिति को बनाए रखना है। कभी रघुबीर सहाय एक जुमला बराबर दोहराया करते थे कि 'जहाँ कला अधिक होती है, वहाँ परिवर्तन भी नहीं होता।' यही कारण है कि फुरसतभोगी समाज कला-पक्ष पर अधिक जोर देकर साहित्य के बहाने समाज में यथास्थिति बनाए रखना चाहता है। यह आयास नहीं है कि संस्कृत कविता और रीतिकालीन काव्य-जगत में अतिशयोक्ति पर अधिक बल दिया गया है जो अधिकांशतः प्रभुता सम्पन्न वर्ग के रंजन एवं उसके वर्चस्व के संरक्षण का ही काम करती है। मुद्राराक्षस ने संस्कृत के कुछ कवियों पर आरोप लगाते हुए कहा था-'राजा लक्ष्मण सेन के राजकवि जयदेव ने गीतगोविन्द की रचना की थी। उन्हें मालूम था कि राजपुरूष स्त्रीकामी होता है। जयदेव भक्ति काव्य की मार्यादाएं लांघ कर भी राजपुरूष की स्त्रीलिप्सा पूरी करते हैं भले ही वे स्त्री के रूप में अपनी देवी की छवि क्यों न बिगाड़ रहे हों। कुमारसम्भवम् में पार्वती के साथ भी ठीक यही सुलूक किया गया है। वहाँ पार्वती की नग्नतम रति-क्रिया का ब्यौरा कालिदास ने इसलिए नहीं दिया था कि इससे उनके देवता प्रसन्न होते थे। वस्तुतः इससे उनका राजपुरूष आनन्द पाता था।"4 हिन्दी साहित्य का रीतिकाल भी इसी मान्यता का शिकार था। यही कारण है कि वहाँ नायिका-भेद, अलंकार, नखशिख और ऋतु वर्णन आदि वर्ण्य-विषय बने जो सामंती वर्ग के प्रमुख विषय हैं। काव्य में चमत्कार, अतिशयोक्ति, उक्ति-वैचित्र्य आदि की भरमार आ गई। शृगारिक काव्यों की बिंब-चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त होने लगी जो पहले भक्तिकाव्य में नहीं दिखाई पडती थी।

हिंदी आलोचना के क्षेत्र में विचारधारा शब्द का प्रयोग करनेवाले आचार्य शुक्ल संभवतः पहले आलोचक थे। अपने समय की कितपय रहस्यवादी किवताओं के संदर्भ में उन्होंने लिखा है- "आडम्बरी किवता की तह में विचारधारा का नाम तक नहीं रहता।" इन किवताओं में आचार्य शुक्ल ने दों बातें प्रमुख रूप से देखी थीं - भावों की सच्चाई का अभाव और व्यंजना की कृत्रिमता। व्यंजना की कृत्रिमता अर्थात बिना भाव-मग्न हुए शिल्प की गहन नक्काशी। यह बात भी प्रमुख रूप से देखी जाती है कि शिल्पकारी एवं कलावाद के समर्थक ही किवता में विचारधारा को निरर्थक मानते हैं। एक समय अज्ञेय भी विचारों को खारिज करने के लिए रसज्ञ शब्द का प्रयोग करते थे। ऐसे लोग यह विस्मिरत कर जाते हैं कि कला का रूप पक्ष भी

सर्जनाकार की विचारधारा से जुड़ा होता है। यहाँ तक बिंबों, प्रतीकों, अलंकारों आदि का भी अपना समाजशास्त्र होता है और इनके चयन में भी किव की विचारधारा प्रच्छन्न होती है। उदाहरण के तौर पर तुलसी के 'राम चरितमानस' के किष्किन्धाकांड में वर्णित वर्षा एवं शरद ऋतु वर्णन के ये दो प्रसंग देखिए -

"महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भएं विगराहिं नारी।"

 $f X \qquad f X \qquad f X \qquad f X \qquad f X$

"मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा।"

ध्यातव्य है, यहाँ प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के बहाने गाजें गिर रही हैं- स्त्रियों एवं ब्राह्मण-विरोधियों पर। यह तुलसी की अपनी विचारधारा है जो कविता में किसी न किसी रूप में प्रकट हो रही है। दूसरी ओर वर्णाश्रम व्यवस्था के घोर विरोधी कबीर अपनी कविताओं में जुलाहे एवं उसके कर्म का रूपक देना नहीं भूलते। कबीर की कविताओं में 'झीनी-झीनी बीनी चदिरया' या 'साहेब हैं रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी' जैसे रूपक आयास नहीं आए हैं। परमात्मा को जुलाहे या रंगरेज के रूप में देखना कबीर के जीवन के कर्मानुभवों से जुड़ा है और यह उस समाज के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को भी सूचित करता है। उसी प्रकार प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन की कविताएँ 'खुरदरे पैर', 'घिन नहीं आती है' या 'पैने दांतोवाली' आदि का अपना एक अलग सौन्दर्यशास्त्र है जिसमें नागार्जुन की विचारधारा और प्रतिबद्धता साफ झलकती है।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल पर गौर करें तो हम पाते हैं कि भारतेन्दु युग की कविता देश-दशा, समाज-सुधार आदि विषयों से अधिक आक्रांत थी। अतएव वहाँ भाषा का अभिधात्मक रूप अधिक मिलता है। किन्तु वहाँ व्यंग्य अधिक गहरा है। जिससे काव्य-भाषा की मारक क्षमता में इजाफा हो जाता है।

द्विवेदी युग के काव्य का मूलस्वर राष्ट्रीयता, समाज सुधार एवं नवीन ज्ञान-विज्ञान का दर्शन रहा। जिसका प्रभाव उनकी काव्य-भाषा पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। यही कारण है कि वहाँ काव्य-विन्यास, शब्द-विन्यास में नई बंदिशें खूब सूझा करती थीं।

छायावादी कविता शब्द के अभिधात्मक प्रयोग से आगे बढ़कर लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक प्रयोगों के कारण काव्यभाषा को अर्थगत तरलता एवं बहुस्तरीयता प्रदान करती है। इस युग में व्यक्तिवादी एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति अधिक गहरी थी। अतएव इस युग में नए बिंब, प्रतीक, अप्रस्तुत-विधान आदि मिलते हैं। छायावाद के पश्चात् प्रगतिवादी काव्यधारा ने व्यक्तिगत अनुभूतियों की जगह समाजिक भावबोध को, कल्पना की अपेक्षा वस्तुगत यथार्थ को, इन्द्रियबोध की अपेक्षा विचार को महत्व दिया। फलतः वहाँ अतिशय अलंकारिता की प्रवृत्ति समाप्त हो गई। पंत जी ने ग्राम्या में घोषण की-

"तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार

वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।"

ऐसी स्थिति में कितपय प्रगतिवादी किवता सपाट वक्तव्य बन गई। लोक-जीवन एवं यथार्थ के नाम पर वस्तु-बिंबों की भरमार लग गई। जिनमें कल-कालखाने, मोटर, ट्राम, रेल, भीड़ आदि सब थे। सबसे बड़ी बात है कि इस काल की किवताओं में शिष्ट जनोचित सौन्दर्यबोध के बजाय भदेस सौन्दर्य की भरमार होने लगी। दूसरी ओर वामपंथी विचारधारा से प्रभावित सैद्धान्तिक प्रतीक- हंसिया, हथौड़ा, लाल सेना आदि भी दिखने लगे। यथा-

''हंसिया और हथौड़ा अब तक हुआ नहीं पामाल,

यह पानी नहीं खून से ही झंडा है लाल।"

सामान्य जन के प्रति प्रतिबद्धता के कारण प्रगतिवादी काव्य की काव्य-वस्तु सामान्य जन के वास्तविक जीवन से गृहीत होने लगी। कहीं-कहीं जन-जीवन से गृहीत अप्रस्तुतों की एक सटीक शृंखला बन गयी है- "यह उदास दिन, पेंशन पाए चपरासी-सा, और जुए में हारे जन-सा, आपे में खोए गदहे-सा मौन खडा है।"

प्रयोगवाद एवं नई किवता के दौर में अनुभूति की प्रामाणिकता और विषयों के वैविध्य के नाम पर शिल्प के क्षेत्र में अत्यधिक प्रयोग हुए। प्रयोगवादी किवयों का व्यक्तिगत अहं एवं नई किवता के किवयों का लघुमानव के प्रित लगाव, सब कुछ उस समय की किवताओं के शिल्प को प्रभावित करता है। िकन्तु अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर सभी किवयों की रचना की अपनी काव्य-शैली है जिस पर उनके विचारों एवं संस्कारों की छाप है। अज्ञेय शब्दों के प्रित अत्यधिक सचेत और सतर्क हैं जिसके अर्थगर्भ उपयोग की चरम परिणित अर्थगर्भ मौन पर होती है। दूसरी ओर मुक्तिबोध की किवता में प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का रासायिनक मिश्रण है। यही कारण है कि उनमें द्वंद्व कहीं अधिक ज्यादा है। वर्ग-संघर्ष उनके यहाँ मौजूद है। वहाँ प्रयोगवाद की आत्मग्रस्तता भी दिखती है। वे आत्ममंथन के किव हैं। उनके यहाँ सभ्यता-परीक्षा, आत्मालोचन, आधुनिक बोध, रचना-प्रिक्रिया सब कुछ मिलता है। यथार्थ चित्रण वहाँ कभी-कभी फैंटेंसी शिल्प में सामने आया है। किसी किवता में बाहर और अंदर के वैविध्य, अंतर्विरोध, बिखराव को फैंटेंसी के माध्यम से एक सूत्र में पिरोना आसान होता है। यही कारण है कि मुक्तिबोध ने कहा -

"मैं विचरण करता हूं एक फैंटेसी में, यह निश्चित है कि फैंटेसी कल वास्तव होगी।"

फैंटेसी में मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष बोलता है। यह आत्मसंघर्ष सामाजिक विद्रूपताओं की देन है। इसलिए किव आत्मालाप की शैली अपनाता है और अंत में वहीं भाषा की नाटकीय बिडंबना सहज सामने आ जाती है। इसके विपरीत शमशेर का आत्मसंघर्ष नितांत निजी संघर्ष है और उनकी किवताओं में मानसिक जिटलता व अचेतन मन की सीमाओं में परकाया प्रवेश भी खूब मिलता है। वे बिंबों, शब्दों को विराम, अर्द्धविराम, डैस, डाट से निंयत्रित करते हैं। इसके साथ-साथ उनकी किवताओं में उनका इम्प्रैशनिस्टिक चित्रकार बोलता है। यही कारण है कि उनकी किवताओं में विशाल चित्रशाला का आयोजन होता है-

'पूरा असामान का आसमान है एक इन्द्रधनुषी ताल नीला सांवला हल्का गुलाबी बादलों का धुला पीला धुआँ।"

कहना ना होगा कि कवि के चुनाव और उसकी अभिव्यंजना पद्धति पर उसके व्यक्तित्व, विचारधारा और सामाजिक संघर्षों का प्रभाव पड़ता है। वस्तुतः कवियों की भावधारा उनकी भाषा में भी देखने को मिलती है।

जहाँ तक निराला के शिल्प-सौन्दर्य का सवाल है, उस पर विचार करने से पहले निराला के युग और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक बुनावट पर विचार कर लेना आवश्यक है। निराला के व्यक्तित्व और विचारधारा का विश्लेषण किए बिना उनके काव्य कि गहराई और बुनाबट का पता लगाना टेढ़ी खीर है। जिस युग में निराला ने काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था वह युग एक ओर सामाजिक एवं सांस्कृतिक सुधारवादी आंदोलनों का युग था दूसरी ओर स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी क्रान्तिकारी चेतना भी हिलोरें ले रही थी। निराला का काव्य युगीन भावधारा का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में क्रान्तिकारी चेतना का मृजन करता है। अपनी 'बहुस्पर्शिनी प्रतिभा' एवं 'विद्रोही व्यक्तित्व' का सहज विस्तार उन्होंने काव्य की नई भावभूमियों की स्थापना के रूप में किया है। वास्तव में निराला भक्तिकाल के बाद भारतीय साहित्य के सबसे बड़े राष्ट्रीय और संस्कृतिक उन्मेष के किव हैं जिनमें साहित्य अपनी तमाम शक्ति, उपादेयता, सीमाओं व सम्भावना के साथ उभर कर सामने आता है। छायावाद अपनी तमाम वैयक्तिकता के बावजूद राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन व मुक्ति की आकांक्षा से जुड़ा काव्य था। डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है- "वस्तुतः हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के दो मोर्चे थे। एक मोर्चा प्राचीन सामंती मर्यादाओं के विरूद्ध बड़ा कदम था।" अकारण नहीं कि निराला जहाँ पंचवटी प्रसंग में 'छोटे-से घर की लघु सीमा में बंधे हैं क्षुद्र भाव' की बात करते हैं तो दूसरी ओर 'जागो फिर एक बार' की भी अलख जगाते हैं। मुक्ति की यह आकांक्षा और विद्रोह का यह स्वर उनकी कविता के रूप-विन्यास पर भी प्रभाव डालता है। 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने लिखा है- 'मनुष्यों की मुक्ति तरह कविता की भी मुक्ति होती। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना।'' इस प्रकार कविता की बंधी-बंधाई परम्परा से मुक्ति और काव्य-अभिजात्य के बंधन तोड़ना निराला के लिए मुक्ति की आंकांक्षा ही थी। काव्य-रूढ़ियों के प्रति निराला में विद्रोह कुछ इस कदर भरा था कि वे अपनी कविता के लिए नई भाषा, नए मिथक, नई लय, नए छंद आदि की मांग करने लगे। किव वायदेवी सरस्वती से यह वरदान मांगता है-

"नवगति, नवलय, ताल-छंद नव, नवलकंठ, नव जलद-मन्द्र रव नव नभ के नव विहग-वृन्द को, नव पर, नव स्वर दे!"

निराला की सामाजिक एंव सांस्कृतिक चेतना के गठन के मुख्य तत्व हैं- भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, बंगाल का सांस्कृतिक जागरण, रवीन्द्रनाथ का मनावतावादी दृष्टिकोण, रामकृष्ण का वेदान्त और उनका स्वंय का जीवन संघर्ष। उनका काव्य-विकास उनके निजी जीवन के संपूर्ण आरोह-अवरोह की अभिव्यक्ति है। वे एकसाथ प्राचीन एवं आधुनिक परम्पराओं के निर्माता एवं विध्सवंक हैं। यही कारण है कि उनका काव्य किसी 'वाद' में बंधने का विशेष आग्रही नहीं है। निराला के छायावादी काव्य में भी प्रगतिवाद की सामाजिक-चेतना तथा प्रयोगवाद की शिल्प संबंधी अन्वेषणप्रियता की पूर्व अवस्थित सहज मिल जाती है। आरम्भ मे इनके काव्य में समकालीन रचनाकारों के समान भावाकुलता व कल्पनाप्रियता है तो आगे चलकर सामजिक जीवन के वैषम्य व विसंगतियाँ उनके काव्य में स्थान पाने लगती है। वे प्रगतिवादी दौर में प्रचारित मार्क्सवादी दर्शन का पृष्ठपेषण ही नहीं करते, वरन् निजी अनुभवों के आधार पर यथार्थ की वस्तुगत एवं व्यंग्यात्मक व्यंजना भी करते हैं। यहाँ आकर कि की छायावादी भाषा का अभिजात्य तथा कला-मुक्ति के आह्वान का ओजस्वी रूप समाप्त होकर जन सामान्य के धरातल पर उतर आता है। इस प्रकार बदलते हुए भावबोध के अनुरूप निराला के छायावादी एवं छायावादोत्तर काव्य में शिल्प-संबंधी कई परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं।

निराला की छायावादी रचनाएँ भाव संकुल तीव्र अनुभूमियों से ग्रंथित हैं, जहाँ गीतात्मकता अधिक है। निराला के कल्पनाप्रधान अतींद्रिय शृंगारिक, दार्शनिक, मानवीय प्रकृति, स्वंच्छंद, प्रणयादि विषयों से संबंधित गीतों का प्रणयन छायावाद के काव्य में प्रमुख रहा। इस युग में निराला, उत्कृष्ट गीतिकाव्य के रचयिता के रूप में दिखते हैं। कविता व संगीत 'गीतिका' में एकाकार हो उठे हैं। पंत ने भाषा को ध्वनिमय स्वरूप कहा है। निराला ने 'गीतिका' में लिखा है- ''वर्ण चमत्मकार/एक-एक

शब्द बंधा ध्वनिमय साकार ।" शब्द-संगीत पर आधारित ध्वन्यात्मक योजना के सर्वाधिक उदाहरण निराला के काव्य में ही मिलते हैं। कोमल ध्वनि का आवृत्तिमय सौन्दर्य यहाँ दृष्टव्य है-

"धंसता दल दल,

हंसता है नद खल् खल,

बहता, कहता, कुलकुल कलकल कलकल।"

निराला के गीतों में प्रेम-संबंधी गीत, आत्म-साक्षात्कार के गीत, मृत्यु-गीत, ऋतु-गीत, प्रपत्ति भाव के गीत, सभी मिलेंगे । प्रगीत की पाश्चात्य विधा के अनुरूप उसके आकारात्मक स्वरूपों को भी निराला ने अपनाया है जिसमें संबोधि-प्रगीत ('यमुना के प्रति', प्रपात के प्रति, 'खंडहर के प्रति', 'सम्राट एडवर्ड अष्टम् के प्रति'), 'पत्र-प्रगीत' ('महाराज शिवजी का पत्र'), 'नाट्य-प्रगीत (पंचवटी-प्रसंग) और शोक प्रगीत (सरोज-स्मृति) सभी मिलेंगे । छायावाद के सभी प्रगीतों में कल्पना एवं भावों की प्रसरणशीलता तथा विराट तत्व के दर्शन होते हैं, जो संकेतात्मकता, संश्लिष्टता एवं चित्रोपमता के गुणों से परिपूर्ण है । किन्तु प्रयोगधर्मिता यहाँ भी दिखाई देती है जहाँ मुक्त छंद, मुक्त गीतों का सृजन होता है और नवीन युगबोध के दर्शन होते हैं।

छायावादोत्तर काव्य में निराला के गीत सामान्य जनजीवन से सबंद्ध होकर लोकान्मुख बन जाते हैं जिनमें लोकजीवन में प्रयुक्त लोकधुनों का समावेश भी मिलता है। इसमें भारतीय शास्त्रीय संगीत के तत्व की जगह गेयत्व का ग्रामीण रूप, लोकगीतों की धुनों की अल्हड़-सी चाल एवं मस्ती है। दूसरी ओर तीव्र यर्थाथबोध से संपृक्त होकर किव हृदयगत क्रोध की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य-प्रगीत को उपयुक्त माध्यम बना देता है। यहाँ सामाजिक जीवन की करूणानुभूतियाँ तीखे कटाक्षों के रूप में व्यंग्य-प्रगीतों में उभरती हैं-

"आरे गंगा के किनारे/झाऊ के वन से पगडंडी पकड़े हुए रेतों की खेती को छोड़कर; फूँस की कुटी/बाबा बैठे झोरे बहारे। पंडों के सुघर सुघर घाट हैं। तिनके की टट्टी के ठाट हैं, यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं/ कहते हैं, कितने तारे।"

यहाँ आकर तत्सम शब्दों के प्रति विशेष आग्रह समाप्त हो जाता है और लोक-सामान्य की प्रचलित शब्दावली कविता में स्थान पाने लगती है। 'कुकुरमुत्ता' में तो निराला बोलचाल के सामान्य ग्रामीण शब्दों को अपनाते हुए उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत के शब्दों से मिली एक नवरूप भाषा का श्रीगणेश कर डालते हैं। निराला हिन्दी साहित्य में गजल-विधा के आविष्कारकर्ता भी हैं।

नवोन्मेषाशालिनी प्रज्ञा-संपन्न निराला आधुनिक हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े प्रयोगशील किव हैं। भारतेन्दु युग से लेकर समकालीन किवता तक की अधिकतर प्रवृत्तियों को उनके काव्य में देखा जा सकता हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- "निराला का सम्पूर्ण काव्य-व्यक्तित्व 'विरूद्धों का सामंजस्य' की उस अवधारणा से विकसित हुआ है जिसे किव के समकालीन और प्रसिद्ध समीक्षक रामचंन्द्र शुक्ल ने आनन्द की साधनावस्था की उच्चतम रचना-भूमि का कारक तत्व स्वीकार किया है।"⁸

निष्कर्ष - ध्यातव्य है कि एक ओर निराला 'जुही की कली' के रूप में मुक्त छंद का प्रवर्तन करते है तो दूसरी ओर 'तुलसीदास' में सबसे कठिन छंद तथा तुक-विधान का पालन करते हैं। जहाँ एक ओर 'राम की शक्ति पूजा' तथा अनेक गीतों में तत्सम शब्दावली का आग्रह है वहीं दूसरी ओर कुकुरमुत्ता जैसी कविताओं में 'अबे सुन वे, गुलाब' सदृश देसी भंगिमा भी है। एक ओर उनके गीतों में उद्वाम प्रणय-चेष्टाएं हैं तो दूसरी ओर 'जागरण वाणी' का स्वर भी प्रमुखता से सुनाई पड़ता है। निराला के

दीर्घ काव्य-विकास में छायावाद से लेकर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता के बीज मिल जाते हैं जिसका प्रभाव उनके काव्य-शिल्प पर भी मिलता है।

संदर्भ सूची –

- 1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चितामणि, भाग- 3, साहित्य निबंध, पृ. 29
- 2. रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, पृ. 16
- 3. नंद किशोर नवल, कसौटी- 3, 1999, (साहित्य का केन्द्र संवदेना या विचारधारा आलेख), पृ. 9
- 4. मुद्राराक्षस, तद्भव, अप्रैल, 2000: (साहित्य में विचारधारा विरोध की पड़ताल), पृ. 42
- 5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'चिन्तामणि' भाग-2, (काव्य में रहस्यवाद निबंध), पृ. 42
- 6. नामवर सिंह, आधुनिक हिन्दी सहित्य की प्रवृत्तियां: पृ. 39
- 7. निराला, परिमल (भूमिका), पृ. 2
- 8. रामस्वरूप चतुर्वेदी, 'प्रसाद-निराला- अज्ञेय' पृ. 50



भक्तिरसविमर्शः

राजश्री चट्टोपाध्याय

सहकारी अध्यापिका, संस्कृतविभागः, गुरुदासकलेजः, पश्चिमवङ्गः ।

सारांश: - अथ कोऽयं रसः, कथमास्वाद्यः इत्यपि मीमांसा आलङ्कारिकैः बहुधा कृता। लोके सर्वस्य मनुष्यस्य तत्तद्भावास्वादनयोऽयं कश्चन संस्कारो भवत्येव। स च लौकिकविषयैः आवृत्तः, बिहः न प्रकाशते। स एव संस्कारः आलङ्कारिकैः वासना शब्देन गृहीतः। काव्ये नाटके वा श्रुतौ दृष्टे सामाजिकः तत्तत्पात्रगताभिनयादिभिः साधारणीकरणं भजते। ततः आवरणभङ्गेन लौकिकवासनायां निवृत्ते अलौकिकसंस्कारः प्रकाशितो भवति। यथा शरावादिना पिहितः दीपः, तित्रवृत्तौ सिन्निहितान् पदार्थान् प्रकाशयित, स्वयं च प्रकाशते तथा भग्नावरणा चित्रसप्रकाशिका भवति। तेषु च भिन्तरसः भिन्नः देवादिविषयसम्बन्धः। अतः मया भिन्तरसिवमर्शः इति शीर्षोकोपेतः लेखः वितन्यते।

विशेषशब्दाः - रसः, आलम्बनविभावाः ,विभावः, उद्दीपनविभावः,अनुभावः, सात्त्विकभावाः , व्याभिचारिभावः , स्थायिभावः , भक्तेः रसत्वम्, भिक्तरसस्य प्रवर्तकाः आचार्याः, भिक्तरसस्थापनम्, भिक्तलक्षणम् इत्यादयः।

भूमिका- काव्यशास्त्रे रससम्प्रदायस्य प्रारम्भो भरतरससूत्रेण मन्यते। परवर्तिभिः काव्याचार्यैः रसिववेचनं रससूत्रमाधारिकृत्य कृतम्। साहित्ये रसशब्दस्य प्रयोगो विभिन्नार्थेषु जातः। वेदेष्विप भिन्नार्थेषु 'रस' शब्द: प्रयुक्तः। यथा - तं गोभिवर्षयणं रसं मदाय देववीतये सुतं भराय सं सृज॥ ऋग्वेदऋचायां सोमरससन्दर्भे रसो प्रयुक्तः। उपनिषदि रसः परब्रह्म प्रोक्तः। यथा रसो वै सः²। सन्दर्भेऽस्मिन् रसः परब्रह्म। तत् प्राप्य जीवः आनन्दमनुभवित। आचार्ययास्केन निरुक्ते 'अश्विन' इति शब्द निर्वचने वर्णितम् - यदव्यशन्धाते सर्व रसेनान्ये ज्योतिषान्यः³।

रसः स्वादे जले वीर्ये शृङ्गारादौ विषे द्रव्ये। बाले रागे गृहे धातौ तिक्तादौ पारदेऽपि च प्रेम्णि भावे ह्यात्मनि च सुपेये स्वरसे सुखे॥

रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। रसशब्दस्य बहवः अर्थाः निघण्टुषु दृश्यन्ते। तथाहि हेमकोशग्रन्थे रसस्यास्य अष्टादशार्थाः प्रस्तुताः। एतेषु अर्थेषु तिक्तादिरसः, जलम् इत्यादीनि साक्षात् रसनेन्द्रियेण आस्वाद्यानि भवन्ति। आत्मा, प्रेम इति द्वयं मनसा आस्वाद्यम्। मनः अपि इन्द्रियमेव। इन्द्रियास्वाद्यत्वं रसस्य प्रथमं लक्षणम्। किन्तु एतद् लौकिकविषयक रसलक्षणम्। परमात्मा पुनः न इन्द्रियलभ्यः। आदौ उपनिषत्सु रसशब्दः आत्मपर्यायतया प्रयुक्तः। रसो वै सः। रसं हि एवायं लब्धानन्दी भवतीति तैत्तीरीयोपनिषदि उक्तम्। अतो रसः इत्येव आनन्दसाधनम्। आनन्दः एव ब्रह्म। सोऽपि आनन्दः लौकिकानन्दात् अर्बुदाधिकगुणिकः अनन्तश्च।

सैषानन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात्साधुयुवाध्यायक:। आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठ:। तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुषानन्दः, ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः।

श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः। स एकः कर्म देवानाम्, देवानां ये कर्मणा देवानिपयन्ति, श्रोत्रियस्य चाकामरूतस्य। एतत्कर्मदेवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः।

एवं ब्रह्मानन्दस्य तुल्यरूपम् आनन्दं जनयतीति शृङ्गारादि रसोऽपि आलङ्कारिकै रसशब्देन व्यवहृत:। ब्रह्मानन्दः सब्रह्मचारी रसानन्दः इति आलङ्कारिकाः रसानन्दम् आमनन्ति। स्थायीभाव प्राप्तः आनन्दो रसः इति आनन्दप्राप्तस्थायीभावो वा रसः इति विशेषणविशेष्यभावविपर्ययेण मतभेदोऽपि वर्तते। तथापि आनन्दः एव रसः इति आलङ्कारिकाणां सिद्धान्तः। ब्रह्मानन्दः अलौकिककारणजन्यत्वात् अलौकिकः रसानन्दस्तु लौकिकवस्तुविषयकलौकिकः

 $SHISRRJ2033134 \mid Accepted: 01 \; Jan \; 2022 \mid Published: 16 \; Jan \; 2022 \mid January-February-2022 \; [\; 5 \; (1): \; 119-124 \;]$

^{1.} ऋग्वेद:-नवममण्डले षष्टमसुक्त:

तैतरीयोपनिषदि- 2.7.

³. निरुक्तं 12.1

^{4.} विक्रमोर्वशीयम् -पृ - 174

इति तेषां मतम्। किन्तु लौकिकस्यालौकिकस्य रसस्य च आनन्दाभिन्नत्वं सिद्धमेव। द्वयोः तुल्यलक्षणत्वं भेदश्च सप्रमाणं पूर्वालङ्कारिकमतसङ्ग्रहपूर्वकं जगन्नाथः संक्षेपेण एवमुक्तवान् –

वस्तुतस्तुवक्ष्यमाणश्रुतिस्वारस्येन रत्याद्यवच्छित्रा भग्नावरणाचिदेव रसः। सर्वथैव चास्या विशिष्टात्मनो विशेषणं विशेष्यं वा चिदंशमादाय नित्यत्वं स्वप्रकाशत्वं च सिद्धम्। रत्याद्यंशमादाय त्वित्त्यत्विमितरभास्यत्त्वं च। चर्वणा चास्य चिद्गतावरणभङ्गिलङगम् एव प्रागुक्ता, तदाकारान्तः करणवृत्तिर्वा। इयं च परंब्रह्मास्वादात्समाधेविलक्षणा, विभावादिविषयसंविलतिचदानन्दालम्बनत्वात्। भाव्या च काव्यव्यापारमात्रात्। अथास्यां सुखांशभाने किं मानिमिति चेत्समाधाविप तद्भाने किं मानिमिति पर्यनुयोगस्य तुल्यत्वात्, सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्ममतीन्द्रियम्। शब्दोऽस्ति तत्र मानिमिति चेत्। अस्त्यत्रापि रसो वैः रसं ह्ययं लब्ध्वानन्दीभवित इत्यादिश्चितः सकलसहृदयप्रत्यक्षं चेति प्रमाणद्वयम्। येयं द्वितीयपक्षे तदाकारचित्तवृत्यात्मिका रसचर्वणा उपन्यस्ता, सा शब्दव्यापारभाव्यत्वाच्छाब्दी। अपरोक्षसुखालम्बनत्वाच्चापरोक्षात्मिका। तत्त्वं वाक्यजबुद्धि तत्। इत्याह्राभिनवगुप्ताचार्यपादाः।

♦ रसनिष्पत्ति:- लोके कस्यापि कार्यस्य सिद्धये त्रीणि अपेक्षितानि तत्त्वानि भवन्ति। कारणं, कार्यं, सहकारी एवं रसविषयेऽपि विभाव: अनुभाव: सञ्चारीति त्रयम् अपेक्षते। अत: विभाव:-कारणम्, अनुभाव: - कार्यम्, सहकारी -सञ्चारी इति व्यविह्वयन्ते। तदुक्तं काव्यप्रकाशे-

कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि यानि च। रत्यादेः स्थायिनो लोके तानिचेन्नाट्यकाव्ययोः॥ विभावाअनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः। व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥⁵

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः इति भरतसूत्रमाधारीकृत्यैव सर्वोऽपि रसासिद्धान्तः प्रवर्तते।

❖ विभावादयः - आचार्यधनञ्जयमतानुसारे रूपके प्रधानतत्त्वत्रयेन वस्तु नेता-रसेषु रसः अन्यतमः। स च विभाव-अनुभाव-व्याभिचारीभावैः चर्व्यमाणः रत्यादिस्थायीभावः एव रसः इति व्यपदिश्यते।

एते विभावादयः के? इत्यस्यां जिज्ञासायां काव्यप्रकाशकारेण मम्मटेन काव्यप्रकाशे चतुर्थील्लासे उक्तं यत् -

करणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥

अर्थात् लोकदृष्ट्या रत्यादिः चित्तवृत्तिं प्रति यत् कारणम्, यत् कार्यम्, यच्च सहकारिकारणं तानि सर्वाण्येव काव्ये विभावादिशब्देन व्यपदिश्यते।

• विभावः- विभावो नाम विज्ञातार्थः। विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः। विभाव्यते आविष्क्रियते रत्यादिरिति विभावः। उक्तञ्च दशरूपककारेण –

ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावपोषकृत्। आलम्बनोद्दीपनत्वप्रभेदेन स च द्विद्या॥

सामाजिकं रसास्वादेः विशेषेण भवयन्ति ते विभावाः इति व्यवहारः। लोके यत् कारणं कथ्यते तत् काव्ये वर्ण्यते चेत् विभावपदेन व्यपदिश्यते। विभावः द्विविधः आलम्बनम् उद्दिपनञ्चेति।

- आलम्बनविभावाः यमालम्व्य रत्यादिराविर्भवित तदालम्बर्नावभावः। यथा शकुन्तलामालम्व्य दुष्यन्तिनिष्ठां रतिं प्रति शकुन्तला आलम्बनविभावः। दुष्यन्तमालम्व्य शकुन्तलिन्छां रतिं प्रति दुष्यन्त आलम्बनविभावः।
- **उद्दीपनविभावः** येन आविर्भूतस्य रत्यादेरूद्यीपनं भवति तदुद्दीपनविभावः। यथा शकुन्तलामालम्ब्य दुष्यन्तनिष्ठां रतिं दुष्यन्तमालम्ब्य शकुन्तलिनष्ठां रतिं वा उद्दीपयतीति कारणात् चन्द्रिकाभ्रमरझङ्कारप्रभृतयः उद्यीपनविभावाः इति।
- अनुभाव:- अनुभाव्यते प्रतिविषयिक्रियते रत्यादि येन कार्यरूपेणिति अनुभाव:। आचार्य: धनञ्जयमतानुसारम् –

अनुभावो विकारस्तु भावसंसुचनात्मक:।8

स्थायीभावम् अनुभावयन्ते सहृदयं प्रति नयन्ति ये ते अनुभावाः। अनुभावाः अभिनये काव्ये साक्षात् अनुभूयन्तेति उत्पाद्यमानस्थायीभावम् अनुसृत्य तिष्ठन्तीति अनुभावाः। आचार्यभरतेन उक्तम् –

> वागङ्गाभिनयेनेह यतोस्तर्थोऽनुभाव्यते। वागङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्तनुभावस्ततः रमतः॥

^{5.} काव्यप्रकाश:- 4/27-28

⁶. का. प्र- 4/27

⁷. द.र - 4/2

⁸. द.रु −4/6

• सात्त्विकभावाः - आचार्यधनञ्जयेन सात्त्विकभावविषये सुनिपुणतया उपस्थापयति -

पृथम्भावा भवन्त्यन्येऽनुभावत्वेऽपि सात्त्विकाः।

सत्वादेव समुत्पत्तेस्तच्च तद्भावभावनम्।।¹⁰

सत्वेन उत्पन्नः सात्त्विकाः भावाः अनुभूयमानत्वात् अनुभावा इति। सात्विकभावानां संख्या अष्टौ।

• व्याभिचारिभावः - विविधमाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः। एते रत्यादिस्थायीभावेषु बुदबुदवत् कदाचित् प्रादुर्भूताः भवन्ति कदाचिच्च तिरोभूताः मम्मटाचार्याणां लक्षणानुसारेण लोके रत्यादेः स्थायिनः यानि सहकारिणी भवन्ति तानि नाट्यकाव्ययोः निर्दिष्टानि चेत् व्याभिचारिभावपदेन उच्यते। सञ्चारयन्ति भावस्य गतिम् इति सञ्चारि। तदुक्तं दशरूपककारेण -

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्याभिचारिण:।

स्थायिन्युन्मग्रनिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ॥11

अर्थात् स्थिरतया वर्तमाने रत्यादौ निर्वेदादयः प्रादुर्भावितरोभावाभ्यां विशेषेण आभिमुख्येन चरणात् व्याभिचारिणः इति कथ्यन्ते। तथा च साहित्यदर्पणे उक्तम् –

विशेषादाभिमुख्येन चरणात् व्याभिचारिणः।

स्थायिन्युन्मग्रनिर्मग्नाः स्त्रयस्त्रिंशत् च तद्भिदाः॥12

विभावादिनां संख्या त्रयस्त्रिंशत्, अस्मिन् विषये आचार्यमम्मटः काव्यप्रकाशग्रन्थे सुनिपुणतया आलोचयति।

एतेषां विभावानुभाव्यभिचारिभावानां मिथ: संयोगे मिलने वा स्थायिभाव: रसरूपेण परिणतो भवति। विभाव: रसमुत्पादयित, अनुभाव: रसं प्रतीतिगम्यं करोति, अत: एतेषां त्रयाणां संयोगात् रस: उत्पद्यते।

• स्थायभावः - स्थायी नाम चिरम् इति। चित्ते चिरं वर्तमानत्वात् रत्यादिस्थायीभावः इत्युच्यते। आचार्यविश्वनाथेन साहित्यदर्पणग्रन्थे स्थायीभावविषये स्पष्टीकरोति -

अविरूद्धा विरूद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।

आस्वादं कुरकन्दोऽसौ भाव स्थायीति संमत:॥13

भरतमतानुसारेण रसादीनां संख्या अष्टौ भवति। तदानुसारं स्थायीभावानां संख्या अष्टिमिता अस्ति। तदाधारेण च अष्टौ रसा: स्वीकृता:। आचार्यविश्वनाथस्य मतानुसारे एक: विशिष्ट: स्थायीभाव: विशिष्टरूपेण परिणमते।

रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहमौ भयं तथा।

जुगुप्सा विस्मयत्तमष्टौ प्रोक्ताः शामोऽपि॥14

नवसंख्यकाः स्थायीभावाः यथा - रितः, हासः, शोकः, क्रोधः, उत्साहः, भयः, जुगुप्सा, विस्मयः, निर्वेदः इति।

रसभेदाः - रससंख्याविषये आलंकारिकाणां मतभेदाः दरीदृश्यन्ते तत्र भरतमहोदयेन अष्टावेव स्वीकृताः अन्ये केचन् नव केचन दश रसान् स्वीकुर्वन्ति ।
 दशरुपककारमते अष्टावेव रसाः इति प्रदर्शितम् । तत्र शृङ्गार – वीर – बीभत्स – रौद्राणां मुख्यत्वम् एभ्यो यथाक्रममुत्पन्नां हास्यादभूतभयानककरूणानां
 गौणत्वम् । प्रधानरसेषु चतस्रो मानसिकवृत्तयः । या प्रधानरसोत्पन्नगौणरसेषु तिष्ठिन्ति । एवं प्रकारेण मुख्यत्वं गौणत्वम् इति द्विधाऽपि कृतम् ।

भरतेन उक्तम् -

शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रद्रवीरभयानकाः। वीभत्सोऽदभृत इत्यष्टौ रसा नाट्ये इति स्मृताः॥¹⁵

⁹. ना.शा - 7.5

¹⁰. द.रू - 4.4

^{11.} द.रू - 4/7

¹². सा.द - 3/140

¹³. सा.द - 3/178

¹⁴. सा.द - 3/175

¹⁵. नाट्यशास्त्रम् - 6/15

रसभेदनिरूपणचक्रम्

क्र.सं	रस:	स्थायीभाव:	वर्णः	देवता
1.	शृङ्गार:	रति:	श्याम:	विष्णु:
2.	हास्य:	हास:	शुक्ल:	प्रमथ:
3.	करुण:	शोक:	कपोतः	यम:
4.	रौद्र:	क्रोध:	रक्तः	रुद्र:
5.	वीर:	उत्साह:	सुवर्णवत्	महेन्द्र:
6.	भयानक:	भय:	कृष्ण:	यम:
7.	बीभत्सः	जुगुप्सा	नील:	महाकाल:
8.	अद्भुत:	विस्मय:	पीत:	गन्धर्व:
9.	शान्त:	शम:	कुन्दपुष्पवत्	श्रीनारायण:

❖ भक्तेः रसत्वम्

मम्मटभट्टः काव्यप्रकाशे देवादिविषयिणीरतिं भावेषु अन्तर्भावयति। रतिः देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जितः, भावः प्रोक्तः इति। रूपगोस्वामिप्रभृतयः भिक्तरेव मुख्यरसः, इतरे गौणाः इति मम्मटमतं निराकृतवन्तः। भक्तेः नाम वेदेषु न दृश्यते इत्यपि वादः दृश्यते। कृष्णविहारिमिश्रैः "संस्कृतकाव्यशास्त्रे भिक्तरसिववेचनम्" इति ग्रन्थे भक्तेः वेदेषु दर्शनं पुराणेतिहासयोः तस्याः एव प्रामाण्यं विशेषतः श्रीमद्भागवतस्यैव भिक्तशास्त्रसर्वस्वत्वं विस्तरेण निरूपितम्। तत्रैव बहुनि प्रमाणानि भक्तेः स्थापकानि दर्शितानीति तैः उक्तं तद् उदाह्नियते।

भज्यते सेव्यते अनया इति भक्तिः इत्यत्र करणव्युत्पत्त्या भक्तिशब्देन साधनं गृह्यते। तदुक्तं भक्तिरसायने श्रीमधूसूदनस्वरस्वतीपदै:-

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।¹⁶ अकामः सर्वकामो मोक्षकामः उदारधीः। तीव्रेण भिक्तयोगेन यजेत पुरुषं परम्। केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः। अधं घन्वन्ति कार्त्स्थेन नीहारमिव भास्करः।¹⁷

भज देवायामित्यस्मद्धातोः क्तिन् प्रत्यये भक्तिशब्दोऽयं निष्पद्यते।¹⁸ भक्तिशब्दस्य शास्त्रेषु नैके अर्थाः विद्यन्ते। परन्तु काव्यशास्त्रे मुख्यरुपेण सेवा ईश्वरप्रीतिः, प्रभोः गुणकीर्तनम्, ईश्वरस्य सेवा, शरणागितः, ईश्वरिनकटे आत्मिनवेदनं दैन्यभावप्रकटनं तृणादिप आत्मानं तुच्छ इति चिन्तनं भक्तिरसान्तर्गतं भवति। अतः भक्तिशब्दंकथनेन प्रभोः समीपे सम्पूर्णरूपेण समर्पणता जायते।

श्री भगवान् रसस्याऽधारभूतो रसमयो रसस्वरूपश्चास्ति इति रसवादिनां स्वीकृति:। तस्य च रसत्वं मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदेषु स्पष्टं लक्ष्यते इति तावत् प्रथमाध्यायेऽपि प्रतिपादितम्। आर्तिहेतुकी, जिज्ञासामयी, कामनामयी, ज्ञानमयी चापि भिक्तिर्भगवन्तं प्रति क्रियते। परन्तु रसरूपिणी भिक्तस्तु रागमयमेव भवति। सा यदा सम्बन्धरिहताऽस्ति तदा शान्तभिक्तरसः सम्बन्धसिहता तत्तत्सम्बन्धमयीति कथ्यते। वेदेषु यद्यपि सहेतुकी भिक्तराधिक्येन दृश्यते परन्तु या भिक्तर्भिक्तरसाचार्यो रसरूपतया प्रतिपादिता सापि वेदेषु वर्तते एव। यत्र सांसारिकाः कर्माणि परित्यज्यार्थाल्लोकनिन्दस्तुती विहाय भगवद्भजनमेवप्रधानं दृश्यते तत्र या भिक्तः सा शान्तिमयी शान्तभिक्तरसो वा।

वेदस्य शब्दकोषो निघण्टुः प्रसिद्धः एव। तत्र निघण्टौ रसशब्दः वारत्रयं भिन्नेभिन्नेऽर्थे पठितः। प्रथमाध्याये एकोत्तरशतोधिकनामसु, द्वितीयेऽध्यायेऽष्टाविंशतिनामसु, तृतीयेऽध्याये चतुश्चत्वारिंशदर्चानामसु च पठितः। तस्माद्वैदिककोशानुसारेण रसशब्दो जलवाचकोऽन्नवाचकोऽर्चावाचकश्च

¹⁸. भज इत्येष वै धातुः सेवायां परिकीर्तित:।

तस्मात् सेवा बुधै: प्रोक्ता भक्ति: साधनभूयसी। - गारुडेभक्तिविवरणम्-231

भज्यते सेव्यते पदार्थेन (अभिधेयेन) प्रसिद्धतयोत्प्रैक्ष्यते इति भिक्तर्धर्म (सम्बन्धः) - ध्वन्यालोकः-

¹⁶. श्रीमद्भगवद्गीतायाम्, 18.55

¹⁷. श्रीमद्भागवते 2.3.10

Volume 5, Issue 1, January-February-2022 | www.shisrrj.com

भवित। साधितं हि देवराजयज्वना तस्य टीकायाम् रसित शब्दार्थः पचाद्यच् (3-1-134) रसित हि तन्मेघपर्वतादिभ्यः पतत्। अथवा रसास्वादने पुंसिसंज्ञायां द्यः (2-3-119) रस्यते आस्वाद्यते जिह्नया लिह्यते इति रसः। यद्वा रसोऽपां गुणः गुणगुणिनोरमेवोपचारेणाख्यायते। यद्वा सितरचितिकर्मा (3-14) पचाद्यच् अर्च्यते देवातात्वात् अर्च्यतेऽनेन देवता इति वा। आत्वा विशन्विन्दवः (ऋ.सं.6-6-19-2) इति नियमः। अर्चा हि भक्तेः मुख्यमङ्गम्। नारदभिक्तसूत्रप्रत्येऽपि पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः इति सूत्रेण पूजार्थे अर्चार्थे वा भिक्तशब्दस्य सामर्थ्यं ज्ञायते। वेदेषु च रसशब्दोऽर्चावाचको अर्थात् भिक्तवाचको गृह्यते। एवं यदि रसशब्दः एव तत्र भिक्तवाचकस्तिर्हं कथं वेदेषु भक्तेरसत्वस्यानुपलब्धिः स्यात्। वस्तृतस्तु निश्चितरूपेण वेदा एव भिक्तरसस्य मूलभृताः।

• भक्तिरसस्य प्रवर्तकाः आचार्याः

भिक्तसम्प्रदाये बहवः भेदाः वर्तन्ते। तेषु मधुरभिक्तवादिनः गौडाः, तस्य सम्प्रदायस्य प्रवर्तकः चैतन्यमहाप्रभुः, किन्तु भिक्तरसविषये रसवादिनौ द्वौ आलङ्कारिकौ प्रसिद्धौ। मधुसूदनसरस्वती, रूपगोस्वामी च। मधुसूदनसरस्वती भगवद्भिक्तरसायनम्, उज्ज्वलनीलमणिं च भिक्तरसनिरूपकं ग्रन्थद्वयं रचयामास। तयोः भगवद्भिक्तरसायनं प्रचारविषये वर्तते। भगवद्भिक्तरसायने त्रयः उल्लासाः द्विशतंश्लोकाश्च वर्तन्ते।

रूपगोस्वामिनः भिक्तरसामृतसिन्धुः गुणेन **प्रामणेन** च बृहत्तरः। तत्र पूर्वविभागः, दक्षिणविभागः, पश्चिमविभागः, उत्तरविभागश्चेति चत्वारो विभागाः वर्तन्ते। पूर्वविभागे प्रतिविभागं पुनः अवान्तरिवभागाः लहरीनाम्ना विभागाः वर्तन्ते। पूर्वविभागे चतम्नः लहर्यः वर्तन्ते। प्रथमलहर्याम् उत्तमभिक्तलक्षणं, शुद्धभक्तेः गुणाः, पापस्य वैविध्यं, तन्मोचनमिति विषयाः प्रतिपादिताः। द्वितीयायां साधनलहर्यां साधनभिक्तः निरूपिता। भक्तेः साधनानि तीर्थयात्रासेवनं, स्तोत्रपठनादीनि तत्र निरूपितानि। तृतीयलहर्यां भावरूपाभिक्तः उदाहताः। चतुर्थलहर्यां प्रेमभिक्तः उदाहता। दक्षिणविभागे पञ्चलहर्यः। पञ्चसु अपि भिक्तरससामग्री विशेषाः विभावानुभावादयः वर्णिताः। पश्चिमविभागे शुद्धाभिक्तः वर्णिता। तत्रापि चतम्नः लहर्यः। शान्तभिक्तः, प्रोतभिक्तः, प्रयोभिक्तः, वत्सलभिक्तः, मधुरभिक्तः इत्यादयो भेदाः निरूपिताः। प्रत्येकं एकैकस्यां लहर्यां निरूपिता। उत्तरविभागे गौणो भिक्तरसः।

तत्र नवसु लहरीषु गौणभिक्तः वर्णिता। प्रथमलहरीसप्तके शान्तशृङ्गारौ विहाय इतरेषां सप्तरसानां मिश्रणं भिक्तरसेन क्रमात् उदाहृतम्। अष्टमलहर्यां रसविरोधमैत्री वर्णनम्, नवमलहर्यां रसाभासः इति विभागः दृश्यते।

• भिक्तरसस्थापनम्

मधुसूदनसरस्वितना काव्यप्रकाशोक्तलक्षणम् अनूद्य निराकृतम्। **दृतस्य भगवत् धर्मात् धारावाहिकगतां गता। सर्वेशे मनसो बुद्धिः** भिक्तिरित्यिभिधीयते इति भक्तेः लक्षणमुक्तम्। कान्तादिविषये लौकिकसुखेऽपि रसत्वम् अङ्गीक्रियते। अमोधस्य परमात्मनः वर्णनात्मकं तत् संयोगेन अनुभूतं सुखं कथिमिति न रसः इति प्रत्याख्येयः। अतः शाश्वितिकः आनन्दः रसः इति अङ्गीकारात् भिक्तिरेव मुख्योरसः। अन्ये तस्यैव अङ्गभूताः इति मधुसूदनसरस्वितिभिः सिद्धान्तितम्।

निगमकल्पतोर्गलितं फलं, शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्। पिबत भागवतं रसमालयं, मुहरहो रसिका भुवि भावुकाः॥ १९

पद्यस्यास्य तृतीयचरणे पिबत भागवतं रसमालयम् इत्यत्र भागवतरसेन भक्तिरस एव गृह्यते।

अस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णो परमपूरुषे। भक्तिरुत्पद्यते पुंस: शोकमहोतमोपहा।।

भक्त्यर्थमेव भागवत्संहिताया प्रणयकथनात् अत्र प्रतिपाद्यमानस्य भागवतरसस्य भिक्तरूपता सिद्ध्यति। अत एव भिक्तरसः शृङ्गाररसाद् भिन्नतयानुभूयते रसिकै:।

भगवद्विषयिनी संयोगविप्रलम्भाद् विविधत्मिका या रितः सा निरुपाधिका सती अलौकिकी, अत एव तत्र मुख्यरसत्वं रसो वै सः इति श्रुतैः सारस्यात्। लौकिकी रितस्तुपाधिजन्यत्वात्तदाभासत्वम्। तेन भक्तिरसस्य तेभ्योऽतिरिक्तत्वं सिद्ध्यिति।

• भक्तिलक्षणम्-

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्। आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तम।।²⁰

`	· ·	_	
नारदन	सचित	भाक्तलक्षण	ाम-

अनन्यममता विष	णौ ममता प्रेम	सङ्गता।	
भक्तिरित्युच्यते			ll ²

¹⁹. भागवते- 1.1.3

²⁰. भ. सि- 1/11

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भिक्तरुच्यते॥²² मनागेव प्ररुढायां हृदये भगवद्रतौ। पुरुषार्थस्तु चत्वारस्तुणायन्ते समन्ततः॥²³

भिक्तः अखण्डानन्दरूपादिरसान्तरमिश्रणेन अमिश्रणेन च गौणः शुद्धः चेति भिक्तरसं प्रथमं द्विविधो भवति। मुख्यभिक्तरेव शुद्धाभिक्तः।

मुख्यभक्तिः पञ्चधा। शान्तः, प्रीतः, प्रेयान्, वत्सलः, मधुरः च।

गौणभिक्तः सप्तधा। हास्यभिक्तः, अद्भृतभिक्तः, वीरभिक्तः, करुणभिक्तः, रौद्रभिक्तः, भयानकभिक्तः, बीभत्सभिक्तश्च।

एवमाहत्य भिक्तिरसः द्वादशधा भवित। किन्तु पुराणादौ शुद्धाभिक्तः एवेति पञ्चधैव व्यवहारो दृश्यते। करूणरसादाविप सुखविरोधिसुखानुभूतिः अलौकिककाव्यव्यापारमिहम्ना दृश्यते। लौकिकशोकः तु दुःखहेतुकः एव। अपि च तत्तद्रसानां वर्णाः शान्तरसस्य दैवतानि विकासिवस्तारादिचित्तस्य विशेषाः विश्वनाथिसिंहैराचार्यैः दिशिताः।

• उपसंहार:

तत्त्वसाक्षात्करणाह्णाविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्धरो।।
न परिलषन्ति केतिदपवर्गमपीश्वर ते।
सा ब्रह्मणि स्वमह्मिन्यप नाथ मा भूत्।।

इत्यादिना नानावचनैः ब्रह्मणः पारमार्थिकदृष्ट्या अनितशयत्वेऽपि विशुद्धशिक्तसाहचर्येण चमत्कृतितारतम्यास्यानुभवः सुतरां सिद्ध्यति। भिक्तरससमुद्रस्य सिवधे ब्रह्मानन्दः परमाणुतुलामपि नार्हति। सर्वेषां शुकसनकादीनां ब्रह्मविद्वरिष्ठानामत्रैकमत्यमेव नात्र काचन संशीतिः। अतो भिक्तः मुक्त्यपेक्षया सर्वथा गरीयसीति मनसि कृत्यैवेषा सदुक्तिश्चिरतार्थ्यं गता विमति।

परिशीलितग्रश्यसूची

- 1. काव्यादर्श:, दण्डी, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी, 1972
- 2. चरकसंहिता, कविराज श्री अत्रिदेवजी गुप्त, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, वनारस्
- 3. दण्डी, काव्यादर्श:, एस्. विश्वनाथन्, श्रीबालमनोरमा प्रेस, पुरी।
- 4. भरतमुनि:, नाट्यशास्त्रम्, भारतीयविद्या भवन,1985
- 5. भामहः, काव्यालङ्कारः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज् अफिस्, वाराणसी, 2002
- 6. मम्मटः, काव्यप्रकाशः, "आज" भवन् सन्त कबीर मार्ग, वाराणसी(221001 यू.पी), जुलाई, 2016
- 7. श्रीमद्भागवत-महापुराणम्, गीताप्रेस् गोरख्युर् विक्रम सं. 2010
- 8. श्रीमद्महाभारतम्, वेदव्यासः, गीताप्रेस् गोरख्पुर् विक्रम सं. 2010
- 9. श्रीमद्रामायणम्- वाल्मीकि: गीताप्रेस् गोरख्युर् विक्रम सं. 2010
- साहित्यदर्पण:, विद्यावाचस्पतीसाहित्याचार्यशालिग्रामशास्त्रिवरचितयिवमलाव्याख्या, मोतिलाल बनारसीदास, 2009

²¹.ना.स्- 11/634

²². ना.सू- 1/12

²³. भ.सि - 3/3



The Economic And Social Factors Causing The Migration Of Rural Labour to the Industrial Sector

Case Study of Large & Meduim Scale Industries

Dr. Khalid Anwar

Associate Professor, Department of Economics, J. V. Jain (P.G.) College, Saharanpur, India

ABSTRACT- The subject of migration has drawn considerable attention from the economists and policy makers as well. Most studies of migration from a rural area have been concerned with people not living there at the time of study; hence many of their characteristics are undetermined. The migrants have seldom been followed up at their destination; hence the possibilities of return migration, and the details of 'pull' factors are often unknown.

Keywords: the economic, social, factors, causing, migration, rural labour, the industrial, sector case, study, large, medium, scale industries.

INTRODUCTION - In an economy where most people earn their living from the land, its availability must be relevant in determining most village's rates of emigration. A number of studies have shown a positive relationship between high man/land ratios and a propensity to migrate. But that is not the sole issue. What is important is that in general, and certainly in the context of the economics of migrating villages, the significance of land availability lies in its income generating potential. Poor quality of land, or a low level of cash - cropping either because of low demand for cash crops reduces income, or because poverty compels peasants to play safe by growing subsistence crops - means that low levels of income prevail.

Inadequate access to income-generating land in a village also encourages migration. But the chance to Improve land may itself be created by. or expected from such migration. This may, after the event, suggest - in part misleadingly that cash cropping encourages migration. Bedford in a study of fifteen villages in the New Hebrides found a positive relationship between migration and the increase in cash cropping.

The nature of relationship between the village and a wider economic network appears, as development proceeds, Increasingly to determine the rate of migration. The impact upon migration of rural-urban income differentials has become the focus of many recent migration studies.

Some village situations encourage their inhabitants to seek work elsewhere during slack seasons only, owing to the ecological situations, agricultural labour demands are highly seasonal. Rural mobility generally increases in response to heavy labour demand at the time of harvesting;

labourers often take up harvest work outside their home villages. Such harvest migration was prevalent in nineteenth - century Ireland, and in the Mekong Delta in this century.

At the other extreme, some migrants go away from their home villages for major part of the year. In Kanther Terang, Assam, for example, shifting agriculture (JHUM) provides work for only six months of the year, hence the villagers work as causal labourers in the town for the rest of the year. Such migration patterns are cyclic rural-urban movements.

Growth of village industries and the occupational diversity that usually follows, createladditional work in the village, and can thereby reduce the impact on migration of factors like land scarcity, low land quality and concentration of land in a few hands. Migration from villages is affected not only by their transport links with other areas, which may facilitate and encourage the act of migration; but also by the extent to which the village is integrated into the urban network - the degree of commercialized farming and the general reliance on the non-subsistence, monetized economy which provide contacts and information, reduces risk and cost, and in general increases the disposition to migrate. Such a disposition to migrate is affected by historical factors. at both the rural and urban end.

In the context of the village, the traditional (push-pull) distinction between village-based and town-based factors, which has been popular in trying to explain and classify rural-urban migration, is worth mentioning. Some of the push-pull factors causy rural-urban migration are discussed below.

FACTORS AFFECTING THE MIGRATION

(a) ECONOMIC FACTORS

The migration due to lack of land in pre-industrial stage: The countries, which have not yet gone under industrial revolution and depend on agriculture for her livelihood, and who's population is increasing, face many problems like decrease in per capita availability of land, food, shelter, health services, and education. etc. Not only these, due to the decline in per-capita and per acre productivity and decline in employment facilities, people have to think to leave their lovely land for other places.

A huge number of persons migrated from Europe to U.S.A., Africa and Australia to cultivate the unlimited land of these countries, later on they became the resident of these countries. The persons from kerala in India also migrated throughout the country due to the lack of land. Today also, the U.P. government has an open offer to landless people to come to Saharanpur district of U.P. and to have own land for the purpose of cultivation on nominal rates. They also provide the agricultural facilities to the people of this area.

(b) The push factor is directly related to population pressure on the land. The greater the dependency on the land (Agriculture), the greater will be out migration/emigration for the

livelihood and employment. The wage-earners have accepted lesser payment in India due to this push factor.

- (c) Apart from the availability of land, migrants also keep in their minds, the availability of good climate and natural resources and its freedom of use, housing facility, healthy atmosphere and better socio-economic facilities (like education employment and transportation). This was the reason of migration from Europe to U.S.A., Australia and Africa. One third of Australia, today also, is barren, because it is very costly as well as difficult to cultivate this land.
- (d) The increase in numbers of landless people and frequent famines also become major push factor for out migration/emigration from the area. Sixteen lakhs citizens of Ireland had to leave their land because of "great potato-famine of 1847", as potato is their main food.

Migration due to industrialization the industrialization in a country increases the regional migratory flow and due to the increase in investment, more and more employment opportunities are created. Which attracts the people from the remote areas or from the areas where no industrialization has taken place. The place of industrialization attracts the businessmen, artisans and other persons from other states.

Not only this, agricultural labourers also come to the industrial areas due to the facilities related employment, education, housing, etc., available in these areas. The specific characteristics - like regular and cash payments, working facilities, etc., of industrial employments, also attract farm labourers to these areas.

(B) SOCIAL FACTORS

Besides economic factors, social and cultural factors also play vital role in internal and international migrations.

One of these factors, prevailing marriage systems, occupy important place. The girls are migrant for ever after marriage and have to go to the places where they are asked or accompanied by their husbands.

The dissolution of joint family system also is major reason for migration from villages to towns. The old traditions are breaking very fastly. Similarly, after being employed people stay in cities for months together and they only, come to villages, for participating in marriages and religious functions.

Rural people do want to settledown in cities after completing their education, as they become accustomed of the habits of education life and do not want to leave it which is not available in villages. They prefer to live in cities even at a meagre source of income. They prefer the freedom of

expression. They are admired/liked by people/colleague in cities, which is never found in villages. Thus, they prefer the recognition of their thoughts rather than static life of villages and move to cities. These are the reasons which attract any person interested in technical knowledge to leave his place for other place.

Today, individualism is occupying great importance in the life of people, due to which escapism is seen in plenty everywhere. People, instead of controlling their wants or changing it according to their needs or conditions, prefer to change the environment or place.

In 17th and 18th century, the greatest punishment for any crime was exile and sending the criminal to such a place from where he can not come easily. It was sometimes known as "Kala Pani Ki Saja". This was most popular in British Empirialism. Besides, the forced migration today is to avoid the punishment. It has been written by Thompson and Lewis in these words "The more recent forced types of migration are motivated chiefly by the desire to escape prosecution. In the recent authoritarian states people are forced to migrate abroad or are forbidden to migrate, according to the needs and purpose of the dictator".

OBJECTIVE - The objective of this paper is to study the economic and social factors causing the migration of rural labour to the industrial sector.

FACTORS AFFECTING MIGRATION OF VILLAGERS TO LARGE SCALE INDUSTRIES

Out of the 427 labourers interviewed, 3O (i.e., 72.13 percent) were migrated labourers and all migrants were male. Migrated labourers were mainly employed in the large scale industries due to the larger scope of employment in those industries.

It can be seen from the Table 1 that the respondent labourers preferred most to be employed in large scale industries in Saharanpur district, rather than staying in their native villages.

In Gangeshwar Ltd., out of the 30 respondent migrants, 28 (i.e., 93.3 percents) migrated because of better employment opportunity and out of the rest 2, one each (i.e., 3.33 %) for better income and children). Seducation respectively. This was followed by Kissan Sugar Mill Ltd. in which. out of the 10 respondent migrants 9 (i.e., 90 percent) labourers had migrated in the temptation of better employment and only one (i.e., 10 percent) for better income in Saharanpur district. The same reason was also observed in case of Star Paper Mill where out of 100 migrated labourers, that were interviewed, 90 (i.e. 90 percent) labourers had migrated to get better employment in Saharanpur district rather than better income in their native places and only 10 (i.e., 10 Percent). Labourers migrated due to the temptation of better incomelrather than better employment.

Table -1
Large Scale Industries
Economic and social Factors Affecting Migration

S. Name of Industries	Opportunities	Better	Children	Medical	total
No.	Of Better	Income	Education	facili-	
	Employment			ties and	
				Others	
1. L.K. Textile Mill	90(81.8)	10(9.0)	5(4.6)	5(4.6)	110
2. Star Paper Mill	90(90.0)	10(10.0)			100
3. Indian Tobacco	35(87.5)	5(12.5)			40
Co. Ltd					
4. Gangeshwar Ltd	28(93.3)	1(3.4)	1.(3.3)		30
5. Kissan Sugar Mill	9(90.0)	1(10.0)			10

SOURCE: Data collected through questionnaire.

NOTE: Bracketed figures are percentages to number of migrants.

Similarly. in case of Indian Tobacco Company out of 40 respondent migrant labourers, 35(i.e., 87.5 percent) had migrated to get better employment opportunity rather than better income and only 5 (i.e., 12.5 percent) has migrated due to attraction of better income rather than better employment opportunity. Last but not the least in the case of L.K. textile mill out of 110 respondent migrant labourers, 90 (i.e., 818 percent) labourers had migrated to get better employment in Saharanpur district rather than any other reasons, only 10 (i.e., 9 percent) had migrated to earn a better income in Saharanpur district rather than in their native place and only 5 labourers (i.e., 4.6 percent each) had migrated due to other reasons like children's education and better medical facilities.

FACTORS AFFECTING MIGRATION OF VILLAGERS TO MEDIUM SCALE INDUSTRIES

It can be seen from the Table 2 that the respondent labourers preferred to be employed in medium scale industries in Saharanpur district, rather than staying in their respective villages.

Among the medium scale industries, indana spices and food industry Ltd. accounted for the highest number and percentage of respondent migrant labourer.8 moving into Saharanpur district because of getting better employment opportunities rather than other economic and social factors, out of the 4 respodent migrants all 4 (i.e., 100 percent) had migrated in search of better employment

opportunity in Saharanpur district, next in orderThe cooperative Co. Ltd.:and U.Y. Cooperative Co. Ltd. where out of 2 respondent migrant labourers, 1 each (i.e., 50 percent) had migrated to get better employment in Saharanpur district and 1 each (i.e.,50 percent) had migrated to get better income in Saharanpur district.

Table-2
Medium Scale industries
Economic And Social Factors Affecting Migration

S. Name of Industries	Opportunities	Better	Children	Medical	Total
No.	Of Better	Income	Education	Facili-	
	Employment			ties and	
				Others	
1. Saharanpur Engg work	as 1(25.0)	3(75.0)			4
2. Indiana Spices &	4(100.0)				4
Food ind.					
3. Rakesh Chemicals	1(33.3)	2(66.7)			3
4. The Cooperative	1(50.0)	1(50.0)			2
Co. Ltd.					
5. Suraj Automobiles		1(50.0)	1(50.0)		2
6. U.P Cooperative 10	(50.0) 1	.(50.0)			2
Co. Ltd.					
7. Hari kishan Flour				1(100.0)	1
Mill					

Source: Data collected through questionnaire.

NOTE: Bracketed figures are percentages to number of migrants.

Out of the 3 respondent migrants. in Hakesh Chemicals only 1 (i.e., 33 percent) labourer had migrated to get better employment, 2 labourers (i.e. 67 Rercent) had migrated to get better income rather than better employment. Similar is the case with Saharanpur Engg. Works, where out of 4 respondent migrants 3 (i.e., 75 percent) labourers had migrated to get better income in Saharanpur district and only 1 (i.e., 25%) labourer had migrated in search of better employment opportunity.

The reasons for migration in the rest 3 medium scale industries were more of social nature than economic. Out of the 2 respondent migrant labourers in Suraj Automobiles, 1 each (i.e., 50 percent) labourer migrated to get better employment and better income in Saharanpur district.

Similarly, the only respondent migrant labourer from Hari Kishan flour mill had migrated to get better medical facilities rather than better employment and better income.

CONCLUSION

It may be concluded from the above analysis that the factors responsiblelfor migration from nearby villages around Saharanpur district were more of economic than social, more particularly, in large scale industries, the labourers had migrated to these industries to get better employment and income. This was due to the fact that they were tempted by the salary and permanent nature of the jobs in these industries. Although in some industries (particularly in medium scale industries) the jobs are not of permanent in nature, still there was assurance that the same persons would be aosorbed in the next year. So they preferred to work and stay in Saharanpur district rather than to go back to villages where there is little scope of getting work an Ithus to maintain their livelihood.

REFERENCES

- 1. Agro-Economic Research Centre for North-East India. Kanther Terang. Report of the Socio-Economic Survey in Assam (Mimeo)
- 2. Bedford, R.D., New Hebridean Mobility: A study of Circular Migration, Australian Nation University, Canberra, Research School of Pacific Studies, 1973, P. 57-68.
- 3. Henry. T., J.Polit. Eco. Feb 1990, 98(1), Fedral Reserve Bank of Dallas: Fedral home loan Bank of Atlanta, P- 28-44.
- 4. Johnson. J.H., Harvest Migration from Nineteenth Centuray Ireland, Trans of the institute of British Geographers, P. 41, 1967, P-97-112
- 5. Zacharia. K.C. and Nair, N.K., Demographic Aspects Bank Sector working paper No 414 (Washington: World Bank) Sep. 1980, P-111



A Study on the Effect of Socio-Economic Status on Self-Harming Behavior among Adolescents

Nivya Jain¹

¹Ph.D. Scholar, MLS University, Udaipur, Rajasthan, India **Prof. Kalpana Jain**²

²Head of Department, MLS University, Udaipur, Rajasthan, India

Abstract: Self-harm refers to a deliberate act of harming oneself physically or mentally. Selfharming behavior includes the act of cutting, self-injury, or self-inflicted violence etc. It is a recognized psychological illness that is not indicative of a life-threatening attempt. Any kind of act resulting to harm or hurt oneself is viewed as self-harming behavior. The people who cut themselves or self-harm are trying to get attention even though they do so in secret and may be crazy or dangerous, may have strong intention to end one's life. It has been noticed that there are a lot of factors and their combinations which results into self-harming behavior. One such factor is 'Socioeconomic status' which depicts about one's social and economic conditions. It is generally divided into three major parts i.e. low, middle and high status. As a result, there arises an absolute need to find out if there is any particular group which is more indulged in self-harming behavior as compared to others based on their lifestyle, background, amenities, exposure, living conditions etc. which are the parts of one's socio-economic status. The purpose of current research was to study the effect of socio-economic status on self harming behavior among adolescents. A self-designed sociodemographic profile consists of 11 items was used to take the responses. The responses were taken from purposively selected 120 adolescents of Udaipur city. It was found that there is no significant effect of socio-economic status on self-harming behavior as well as there is no significant difference of type of socio-economic status on self-harming behavior. This research study is found to be exclusive and useful in terms of gaining knowledge about different socio-economic status and their relation with self-harming behavior among adolescents.

Keywords: Socio-Economic Status, Self-Harming Behavior, Socio-Demographic Profile.

INTRODUCTION -

Self-harming Behavior

Self-harming behavior refers to the circumstances in which an individual attempts to hurt or injure oneself due to constant worry, trauma and anxiety in personal or professional life, regret, remorse, disgrace, embarrassment, failures etc. It consists of two types of behaviors: firstly, 'self mutilating

behavior without suicidal tendencies' which encompasses physically hurting oneself by cutting, intake of drugs, hitting, substance abuse etc. and secondly, 'self mutilating behavior with suicidal tendencies' which embraces life intimidating behaviors such as rigorous cuts, hanging oneself, jumping off from heights or in water, burning or shooting oneself etc. The earlier behavior gives a sense of contentment and pleasure for a short span of time whereas the later behavior leads to fatality.

Self-harming behavior refers to an act of persistently harming oneself that may or may not show an actual suicidal intent (Greydanus DE & Shek D, 2009). In other words, it is the intentional, direct devastation or alteration of frame tissue without aware suicidal motive however ensuing in harm intense sufficient for tissue harm to occur (Gratz, 2001).

Socio-Economic Status

Socioeconomic status (SES) is a measure of a person's overall social and economic standing and is often positively correlated with improved health. Given the strong positive association between socioeconomic level and health, socioeconomic status is a significant contributor to health disparity.

Socioeconomic status (SES) is a measure of a person's relative economic and social position to others based on factors including income, education, and occupation; however, SES is more frequently used to illustrate economic disparities in society as a whole. High, moderate, and low socioeconomic status levels are often used to define the three possible positions that a family or an individual may occupy in relation to others.

Adolescents and Self-harm

In present era, one of the most stressed or pressurized groups of people to self mutilating behaviors are 'Adolescents' or 'Teens'. It is due to numerous reasons such as biological (hormonal) changes, expectations from parents, family and society to perform as well as behave appropriately, peer pressure, competition, career selection, dilemmatic relationships etc. Adolescents generally lack awareness and experience to tackle the tough life situations and failure among any of such part leads to self mutilating behaviors which in the end may lead to bereavement.

Even when self-harm is not done with the intention of killing oneself, it can nonetheless have grave medical repercussions, even death. Women who self-injure frequently go to considerable measures to conceal their symptoms, much like women with eating problems, particularly bulimia nervosa. Therefore, it could be challenging to identify warning indications of a serious issue.

Self-harming behavior or self-harm is mainly adolescent phenomenon. It does influence all age groups but studies have constantly revealed a peak in middle adolescence (Hawton K *et al.*, 2012). The

majority of individuals who show self-harm are of age amid 11 to 25 years (Mental Health Foundation 2006).

Review of Literature

Lodebo and his colleagues (2017) conducted a study to ascertain the relationship between parental socioeconomic status and adolescent self-harm, with a focus on gender and degree of self-harm. Registers were used to track 165,932 children born in Stockholm between 1988 and 1994 from the time they were 13 years old until they reached 18. First-time self-harm was used to define self-harm, and hospitalization was used to determine whether or not self-harm was severe. Parental education and household income served as indicators of socioeconomic standing. In order to calculate hazard ratios (HR) with 95 percent confidence intervals, Cox proportional hazards regression was utilized (CI). A connection between parental socioeconomic status and self-harm was found through analysis. The HR was 1.10 (95 % CI 0.97-1.24) and 1.16 (95% CI 1.08-1.25) for adolescents whose parents had primary and secondary education compared to tertiary parental education, respectively. Adolescents from lower economic groups were 1.08 (95% CI 0.97-1.22) to 1.19 (95% CI 1.07-1.33) times more likely to selfharm than those from the highest income group. Only among girls was a connection discovered in studies that were gender-specific. Additionally, the association was abolished by restricting to severe instances. According to this study, teenage self-harm is more common in girls and is connected with low parental socioeconomic status. Children with poor parental socioeconomic status should be a possible target population for prevention efforts aimed at preventing self-harm.

Page and his colleagues (2013) administered a research study which show that parental social mobility and childhood socioeconomic position (SEP) are related to later health outcomes in adolescence and adulthood. The Avon Longitudinal Study of Parents and Children, which followed 14,610 births from 1991 to 1992 to age 16 to 18 (n = 4,810), provided the data for this study. Using logistic regression models, it was determined whether parental SEP that was recorded prior to conception and throughout childhood was associated with self-harm. Separate analyses were carried out for those who reported self-harm (a) with and (b) without suicidal intent. With less consistent associations seen for self-harm without suicidal intent, lower parental SEP was linked to an increased risk of offspring committing suicide-related self-harm. According to research, adolescents whose parents had continuously low economic levels while they were kids had a 1.5 times higher likelihood of participating in SH than kids whose parents had never reported having a low income. A higher risk of self-harm with suicidal intent in

adolescence is linked to lower SEP in childhood. Those who routinely have lower SEP are more likely to experience this relationship.

Objectives

Following are the objectives designed for current research study:

- To study the prevalence of socio-economic status on self-harming behavior among adolescents.
- To study the effect of socio-economic status on self-harming behavior among adolescents.

Hypotheses

"There is no significant effect of socio-economic status on self-harming behavior among adolescents."

Test Description

In order to find out the prevalence and effect of socio-economic status on self-harming behavior, a self-designed socio-demographic profile has been created and provided to the participants to fill their responses.

Variables of the Study

Independent Variables

Socio-economic status

Dependent Variable

• Self-harming behavior

Methodology

Locale

The locale of the present research is urban areas of Udaipur city, Rajasthan.

Sample

The sample will be consisted of 120 adolescents. Out of 120 subjects, 60 subjects with self-harming behavior were purposively taken from psychologists, psychiatrists and mental health professionals working in different hospitals and clinic of Udaipur district. The remaining 60 adolescents were selected from the same school and college where selected adolescents with self-harming behavior study. These non self-harming behaviors subjects were matched on age, class and gender with subjects

of self-harming behavior. The age group of sample was between **13 to 19 years**. Sample comprises of youth from both gender (Male & Female).

Method of Data Collection

Prior consent was taken from the selected participants regarding the responses to be collected. After rapport establishment, they were told about the purpose of the research. They were assured that their responses will be kept confidential and will be used for research purpose only.

Initially, the purposively selected participants (120 adolescents i.e. 60 adolescents with self-harming behavior and remaining 60 with non self-harming behavior) were given the socio-demographic profile. After giving necessary instructions about the responses to be filled, participants have completed their responses in socio-demographic profile in given time.

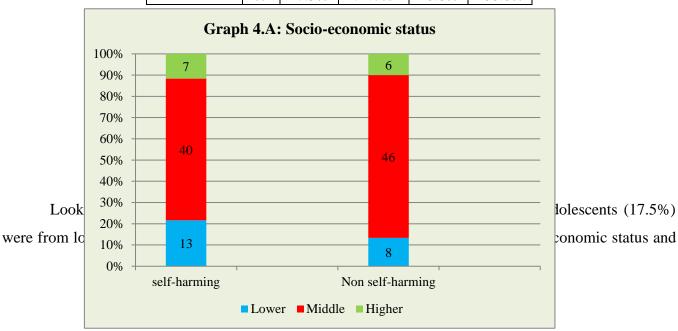
Statistical Techniques

The major statistical technique applied in the current research is Mean, Standard Deviation (S.D.), F-ratio (one-way ANOVA), Student 't' test and the analysis was conducted in SPSS (Statistical Packages for Social Sciences), version 21.0.

Analysis of Result and Discussion

4.A. Prevalence of the type of socio-economic status on self-harming behavior

<u> </u>					
		Socio-	Total		
		Lower	Middle	Higher	Total
Self-	F	13	40	7	60
harming	%	21.7%	66.7%	11.7%	100.0%
Non Self-	F	8	46	6	60
harming	%	13.3%	76.7%	10.0%	100.0%
Total	F	21	86	13	120
	%	17.5%	71.7%	10.8%	100.0%



13 adolescents (10.8%) were from higher socio-economic status in total sample size. In this, 13 adolescents (21.7%) from lower socio-economic status, 40 adolescents (66.7%) from middle socio-economic status and 07 adolescents (11.7%) from higher socio-economic status belongs to the category of self-harming behavior whereas 08 adolescents (13.3%) from lower socio-economic status, 46 adolescents (76.7%) from middle socio-economic status and 06 adolescents (10.0%) from higher socio-economic status belongs to the category of non-self-harming behavior.

4.B.1. Effect of socio-economic status of adolescents on their Self-harming behavior

Table 4.B.1 shows the effect of socio-economic status of adolescents on their Self-harming behavior through one-way ANOVA.

Table 4.B.1

Effect of socio-economic status of adolescents on their Self-harming behavior

Sources	Sum of Squares	Df	Mean Square	F	Sig.
Between Groups	70.919	2	35.460	0.836	0.439
Within Groups	2418.814	57	42.435		
Total	2489.733	59			

The above table signifies that the F-ratio for socio-economic status of adolescents on Self-harming behavior is found to be 0.836 which is *insignificant* at 0.05 level (p>0.05). It shows that there no significant difference between the type of socio-economic status among adolescents and their Self-harming behavior.

4.B.2 Comparison of scores of lower, middle and higher socio-economic status adolescents having Self-harming behavior

Table 4.B.2 shows the comparison of scores of lower, middle and higher socio-economic status adolescents having Self-harming behavior through 't' test.

4.B.2.a: Comparison of scores of lower and middle socio-economic status having Self-harming behavior

Table 4.B.2.a Comparison of scores of lower and middle socio-economic status having Self-harming behavior

	Lower SES	Middle SES
N	13	40
Mean	67.000	64.350

Standard Deviation	5.508	6.697	
Std. Error Mean	1.528 1.059		
Mean Diff	2.650		
't'	1.290		
P value	0.203		

The above table and graph shows that the mean scores of adolescents having lower socio-economic status was found to be 67.000 and for middle socio-economic status was found to be 64.350. The mean difference was found to be 2.650 and the 't' score was 1.290 which was found to be *insignificant* at 0.05 level (p>0.05). It shows that there is no significant difference between Self-harming behavior among adolescents belonging from lower or middle socio-economic status. Furthermore, the similar mean score suggests that adolescents of any socio-economic status (lower or middle) could indulge into Self-harming behavior and it has no relation with which socio-economic cadre they belong to.

4.B.2.b: Comparison of scores of lower and higher socio-economic status having Self-harming behavior

Table 4.B.2.b

Comparison of scores of lower and higher socio-economic status having Self-harming behavior

	Lower SES	Higher SES	
N	13 7		
Mean	67.000 64.429		
Standard Deviation	5.508 7.138		
Std. Error Mean	1.528 2.698		
Mean Diff	2.571		
"t"	0.899		
P value	0.380		

The above table and graph shows that the mean scores of adolescents having lower socio-economic status was found to be 67.000 and for higher socio-economic status was found to be 64.429. The mean difference was found to be 2.571 and the 't' score was 0.899 which was found to be *insignificant* at 0.05 level (p>0.05). It shows that there is no significant difference between Self-harming behavior among adolescents belonging from lower or higher socio-economic status. Furthermore, the similar mean score suggests that adolescents of any socio-economic status (lower or higher) could

indulge into Self-harming behavior and it has no relation with which socio-economic cadre to.	e they below	ng
olume 5, Issue 1, January-February-2022 www.shisrrj.com	139	

4.B.2.c: Comparison of scores of middle and higher socio-economic status having Self-harming behavior

Table 4.B.2.c

Comparison of scores of middle and higher socio-economic status having Self-harming behavior

	Middle SES	Higher SES	
N	40 7		
Mean	64.350	64.429	
Standard Deviation	6.697	7.138	
Std. Error Mean	1.059 2.698		
Mean Diff	0.079		
't'	0.028		
P value	0.977		

The above table and graph shows that the mean scores of adolescents having middle socio-economic status was found to be 64.350 and for higher socio-economic status was found to be 64.429. The mean difference was found to be 0.079 and the 't' score was 0.028 which was found to be *insignificant* at 0.05 level (p>0.05). It shows that there is no significant difference between Self-harming behavior among adolescents belonging from middle or higher socio-economic status. Furthermore, the similar mean score suggests that adolescents of any socio-economic status (middle or higher) could indulge into Self-harming behavior and it has no relation with which socio-economic cadre they belong to.

Conclusion

This part of the research work shows about an organized & collective ending where all the statistical analysis and their results are being concluded. It clearly depicts the calculations performed and outcomes for the same. All the concluding statements based on the findings are stated below:

Conclusion related to Demographic Prevalence

In socio-economic status, 13 adolescents (21.7%) from lower socio-economic status, 40 adolescents (66.7%) from middle socio-economic status and 07 adolescents (11.7%) from higher socio-economic status belongs to the category of self-harming behavior whereas 08 adolescents (13.3%) from lower socio-economic status, 46 adolescents (76.7%) from middle socio-economic status and 06 adolescents (10.0%) from higher socio-economic status belongs to the category of non-self-harming behavior.

Conclusion related to F-ratio (One way ANOVA)

The F-ratio for socio-economic status of adolescents on Self-harming behavior shows that there no significant difference between the type of socio-economic status among adolescents and their Self-harming behavior.

Conclusion related to Student's t-test

The t-score of socio-economic status (lower, middle and high socio-economic status) shows that there is no significant difference between Self-harming behavior among adolescents belonging from lower, middle or high socio-economic status. Furthermore, the similar mean score suggests that adolescents of any socio-economic status (lower, middle or high) could indulge into Self-harming behavior and it has no relation with which socio-economic cadre they belong to.

Hypothesis Testing

Consequently, on the basis of the analysis of results, the hypotheses, "There is no significant effect of socio-economic status on self-harming behavior among adolescents." is **accepted.** It can be clearly depicted with the help of table 4.A, 4.B.1, 4.B.2.a, 4.B.2.b, 4.B.2.c and their discussion showing that there is no significant difference of socio-economic status on self-harming behavior among adolescents.

REFERENCES

- 1. Gratz KL. (2001). Measurement of deliberate self-harm: Preliminary data on the Deliberate Self-Harm Inventory. Journal of psychopathology and behavioral assessment, 1;23(4):253-63.
- 2. Greydanus DE, Shek D. (2009). Deliberate self-harm and suicide in adolescents. Keio J Med.; 58(3):144–151.

- 3. Hawton, Keith; Saunders, Kate; O'Connor, Rory (2012). Self-harm and suicide in adolescents. The Lancet. 379 (9834): 2373–2382.
- 4. Lodebo, B. T., Möller, J., Larsson, J. O., & Engström, K. (2017). Socioeconomic position and self-harm among adolescents: a population-based cohort study in Stockholm, Sweden. Child and adolescent psychiatry and mental health, 11, 46.
- 5. Mental Health Foundation (2006). The Truth about self-harm: for young people and their friends and families. London: MHF.
- 6. Page, Andrew & Lewis, Glyn & Kidger, Judi & Heron, Jon & Chittleborough, Catherine & Evans, Jonathan & Gunnell, David. (2013). Parental socio-economic position during childhood as a determinant of self-harm in adolescence. Social psychiatry and psychiatric epidemiology. 49 (2).



भारत में विदेशी संस्थागत निवेश को निर्धारित करने वाले कारक डॉ उमेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, के.ए. महाविद्यालय, कासगंज, उत्तर प्रदेश।

शोधसार— भारत जैसा विकासशील देश विदेशी पूंजी के पर्याप्त प्रवाह से विकास कर सकेगा। विदेशी संस्थागत निवेशक घरेलू बचत को पूरा करने और पूंजी की जरूरतों को पूरा करने में मदद करते हैं। एफआईआई प्रवाह उतार—चढ़ाव प्रकृति के होते हैं, और भारत शेयर बाजार में सबसे अच्छा प्रदर्शन करने वालों में से एक है। भारत में विदेशी निवेशकों के लिए एक आकर्षक गंतव्य बनने के लिए कई कारकों को जिम्मेदार उहराया जा सकता है। यह पेपर पंद्रह साल की अवधि के मासिक डेटा लेकर भारत में एफआईआई के विकास को निर्धारित करने वाले कारकों की पहचान करने का एक प्रयास है। मैक्रोइकॉनॉमिक वैरिएबल के साथ एफआईआई निवेश के कारण और प्रभाव को खोजने के लिए ग्रेंजर करणीयता परीक्षण लागू किया गया था और यह पाया गया कि सीपीआई और मुद्रा आपूर्ति एफआईआई में एक प्रभाव का कारण बनती है और एफआईआई विनिमय दर और आईआईपी में बदलाव को प्रभावित कर रहे हैं।

मुख्य शब्दः एफआईआई, आईआईपी, मुद्रास्फीति, एमआईबीओआर, मुद्रा आपूर्ति आदि।

परिचय— भारत, पूंजी प्रवाह में बड़ा परिवर्तन (विशेष रूप से पोर्टफोलियो प्रवाह में), व्यापार और औद्योगिक नीति में सुधारों के कारण हुआ। एफआईआई ऐसी संस्थाएं हैं जो भारत के बाहर निगमित हैं लेकिन भारत में निवेश करती हैं। एफआईआई को ज्यादातर द्वितीयक बाजारों और दिनांकित सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने की अनुमित है। एफआईआई को अनुमित देने से बाहरी वाणिज्यिक उधार पर निर्भरता कम हुई। निजी विदेशी पूंजी 2001—02 में कुल शुद्ध पूंजी खाते का 70.29 प्रतिशत थी जबकी यह 1985—86 में 21 प्रतिशत थी। 2002—03 के बाद से एफआईआई में लगातार उछाल आया है। एफआईआई निवेश की आमद ने शेयर बाजार को काफी तेजी से बढ़ने में मदद की है। उदारीकरण और सुधारों की नीतियों ने अनुकूल वृहद—आर्थिक वातावरण का मार्ग प्रशस्त किया है। रिपोर्टों के अनुसार, शुद्ध एफआईआई निवेश ने देश के विदेशी मुद्रा भंडार में लगभग 28 प्रतिशत का योगदान दिया।

भारत सरकार द्वारा किए गए एफआईआई पर विभिन्न नीतिगत सुधारों के प्रयास ने एफआईआई की उपस्थिति को भारत के शेयर बाजार में महसूस किया। एफआईआई आमतौर पर पूंजी बाजार में निवेश करने में रुचि रखते हैं और यह पूंजी बाजार को तरलता प्रदान करता है और उच्च व्यापारिक टर्न ओबर की उम्मीदें बढ़ाता है। पूंजी के प्रवाह में वृद्धि से स्टॉक की कीमतों में वृद्धि होगी। एफआईआई द्वारा प्राथमिक बाजारों में निवेश के उच्च प्रवाह के साथ एक कंपनी के लिए पूंजी की लागत घट जाएगी। यह एक निगम को उच्च मूल्य आय अनुपात रखने में भी मदद करेगा। एफआईआई प्रवाह घरेलू बचत के लिए एक विकल्प है और अर्थव्यवस्था के विकास और प्रदर्शन के लिए प्रदान करता है।

साहित्य की समीक्षा- रीतिका गर्ग और पामी दुआ (2014) ने भारत में पोर्टफोलियो प्रवाह के व्यापक आर्थिक निर्धारकों का अध्ययन किया और पाया कि एफआईआई निवेश कम विनिमय दर अस्थिरता और जोखिम विविधीकरण के बेहतर अवसर से आकर्षित होते हैं। इसके अलावा एफआईआई घरेलू कंपनियों के प्रदर्शन, उच्च ब्याज दर और मेजबान देश की वृद्धि से भी प्रभावित होते हैं। अध्ययन बीएसई पर आयोजित किया गया था और एडीआर / जीडीआर प्रवाह पर भी विचार किया गया था। परिणाम बताते हैं कि भारत मजबूत घरेलू विकास, कम विनिमय दर अस्थिरता और घरेलू वित्तीय बाजार के प्रदर्शन को वैश्विक झटके के प्रति कम संवेदनशील बनाकर एफपीआई प्रवाह को आकर्षित करने में सक्षम हो सकता है और यह वित्तीय बाजारों में निवेशक आधार को बढाकर प्राप्त किया जा सकता है। सोनिया चावला और प्रियंका शर्मा (2014) ने एफआईआई पर अध्ययन की समीक्षा प्रस्तुत की। हालांकि विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि सेवा क्षेत्र में एफडीआई निवेश अधिक है, भारत में एफडीआई और एफपीआई की आवाजाही कई मैक्रोइकॉनॉमिक चर जैसे व्यापार संतुलन, मुद्रा आपूर्ति जो M_1 या M_2 या M_3 हो सकती है, से प्रभावित होती है, सीपीआई यज्ञ WPI द्वारा भारत में मद्रास्फीति का प्रतिनिधित्व किया जाता है, आर्थिक संकेतक जैसे GDP या IIP, विदेशी विनिमय दर, आदि, की इस अध्ययन के अध्ययनों ने समीक्षा की है ताकि भारत में व्यापक आर्थिक चर और FII के प्रवाह के बीच संबंध स्थापित किया जा सके। सुनील कुमार (2014) ने आर्थिक संकट के दौरान और उसके बाद संस्थागत निवेश में विदेशी प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया और पाया कि विदेशी मुद्रा भंडार और बाजार पुंजीकरण से प्रभावित एफआईआई का एक भिन्नता है। एफआईआई पर बाजार पूंजीकरण का प्रभाव लंबे समय में महत्वपूर्ण पाया गया। वनिता त्रिपाठी और शिल्पा मैगगो (2014) ने ऋण बाजार में एफआईआई के प्रमुख निर्धारकों की पहचान करने के लिए बहुभिन्नरूपी प्रतिगमन विश्लेषण और कारक विश्लेषण का उपयोग करके भारतीय ऋण बाजार में विदेशी संस्थागत निवेश के निर्धारकों की जांच की। यह पाया गया कि आईआईपी और विनिमय दरें भारत में ऋण बाजार में एफआईआई प्रवाह के प्रमुख निर्धारक थे। कृष्णन दंडपानी और एडवर्ड आर लॉरेंस (2013) ने भारत में शेयर बाजार पर एफआईआई के प्रभाव का अध्ययन किया और पाया कि एफआईआई का भारतीय स्टॉक के रिटर्न पर सीधा महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। उन्होंने भारत में एफआईआई निवेश को प्रभावित करने वाले कारकों का भी अध्ययन किया। विनोद के. भटनागर, (2011) ने 2004–2010 के दौरान भारत में एफआईआई निवेश के मासिक प्रवाह के रुझानों का विश्लेषण किया और पाया कि एफआईआई का निवेश व्यवहार भारत के आर्थिक कारकों में शेयर बाजार के रिटर्न और जोखिम से निर्धारित होता है। उच्च सेंसेक्स सूचकांक और उच्च पीई अनुपात भारत में एफआईआई को आकर्षित करने वाले देश स्तर के कारक हैं और भारत में एफआईआई निवेश में वृद्धि की प्रवृत्ति है। मिश्रा. पी.के (2010) ने एफआईआई निवेश प्रवाह और भारत में आर्थिक विकास के बीच संबंधों की गतिशीलता 1993—2009 की अवधि में, की जांच करने का प्रयास किया। यह पाया गया कि वास्तविक जीडीपी की वृद्धि भारत में एफआईआई निवेश को बढ़ावा दे सकती है। सांख्यिकीय परिणामों और व्याख्या को इस तथ्य से सीमित किया जा सकता है कि एफआईआई प्रवाह देश के आर्थिक विकास को भी प्रभावित कर सकता है। आशीष गर्ग और बोडला.बी.एस (2009) ने भारतीय शेयर बाजार में एफआईआई के निर्धारकों की जांच की और पाया कि भारतीय इक्विटी बाजार रिटर्न भारत में शुद्ध एफआईआई प्रवाह का प्रमुख प्रेरक है। निधि धमीजा (2008) ने एफआईआई निवेश को प्रभावित करने वाले व्यक्तिगत फर्म स्तर की विशेषताओं और मैक्रो स्तर की स्थितियों से संबंधित विभिन्न कारकों की भूमिका की जांच करने के लिए फर्मों में एफआईआई पैटर्न के निवेश का अन्वेषणात्मक विश्लेषण किया। यह पाया

गया कि मेजबान देश का नियामक वातावरण एफआईआई को प्रभावित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। त्रिपति राव और रुद्र सेन (2007) ने मौद्रिक नीति, शेयर बाजार और एफआईआई प्रवाह के बीच गतिशील संबंधों का अध्ययन किया और पाया कि पूंजी प्रवाह को आकर्षित करने के लिए विदेशी मुद्रा बाजार को स्थिर करने वाली एक अच्छी मौद्रिक नीति, स्टॉक मार्केट रिटर्न के साथ एफआईआई प्रवाह निर्धारित करती है। इंद्राणी चक्रवर्ती (2006) ने 1993 से 2003 के तिमाही आंकड़ों का विश्लेषण करके भारत में उदारीकरण के बाद की अवधि के दौरान पूंजी प्रवाह की जांच की। अर्थमितीय परिणामों ने संकेत दिया कि पूंजी के शुद्ध प्रवाह और भारत में वास्तविक विनिमय दर के बीच एक त्रुटि सुधार तंत्र काम कर रहा था। पुंजी के शुद्ध अंतर्वाह, वास्तविक विनिमय दर और ब्याज दर के अंतर के बीच एक सह एकीकरण संबंध मौजूद था और विदेशी मुद्रा बाजार में आरबीआई के हस्तक्षेप ने पूंजी प्रवाह में अस्थिरता के बावजूद वास्तविक विनिमय दर की अस्थिरता को रोकने में मदद की। पुष्पा त्रिवेदी और अबीलाश नायर (2006) ने भारत में एफआईआई निवेश प्रवाह के निर्धारकों का अध्ययन किया, उनके परिणामों से संकेत मिलता है कि भारतीय बाजारों में रिटर्न और अस्थिरता एफआईआई प्रवाह के प्रमुख निर्धारक के रूप में उभरे हैं। राम मोहन टीटी (2005) ने अस्थिरता के संदर्भ में एफआईआई का जायजा लिया और पाया कि एफआईआई के प्रवाह में भिन्नता के कारण वास्तविक समस्या शेयर बाजार की अस्थिरता के कारण नहीं थी, बल्कि मुद्रा आपूर्ति और विनिमय दर के प्रबंधन में उत्पन्न कठिनाई थी। कुलवंत राय और एन.आर.भानु मूर्ति (2004) ने एफआईआई के निर्धारकों के रूप में जोखिम, रिटर्न और मुद्रास्फीति की भूमिका का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि शेयर बाजार की अस्थिरता को स्थिर करने और भविष्य में अपेक्षित जोखिम को कम करने से अधिक एफआईआई को आकर्षित करने में मदद मिलेगी जिसका वास्तविक अर्थव्यवस्था पर सकारात्मक प्रभाव पडेगा।

अध्ययन की आवश्यकता— एफआईआई प्रवाह को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों के प्रभाव का अध्ययन निर्णय निर्माताओं, नीति निर्माताओं और निवेशकों की मदद करने में अधिक प्रभावी होगा। यह बाजार की ताकतों को समझने और एक व्यापक स्पेक्ट्रम का विश्लेषण करने में मदद करेगा जो केवल मांग और आपूर्ति के स्तर से परे है। यह मैक्रो आर्थिक कारकों (मुद्रास्फीति, शेयर बाजार में मासिक रिटर्न, शेयर बाजार में अस्थिरता जैसे मैक्रो कारक) को समझने में भी मदद करेगा जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बाजार के मूल्यहास को प्रभावित करते हैं और बदले में निवेश निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं। कुछ कारक अस्थिरता को प्रभावित करते हैं जिन्हें आक्सिमक कारक कहा जाता है। वे हैं वृहद—आर्थिक प्रभाव, वैश्विक बाजार, संस्थागत निवेशकों की भूमिका और उद्योग का प्रदर्शन।

अध्ययन का उद्देश्य— भारत में विदेशी संस्थागत निवेश की वृद्धि का अध्ययन करना। भारत में एफआईआई निवेश को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान करना।

कार्यप्रणाली— अध्ययन के लिए आवश्यक डेटा बीएसई, सेबी और आरबीआई की आधिकारिक वेबसाइटों से माध्यमिक स्रोतों से एकत्र किया गया है। चूंकि डेटा समय श्रृंखला है, इसलिए स्थिरता की जांच के लिए परीक्षण किए गए थे। अंतराल की लंबाई का पता लगाने के लिए जिस पर डेटा का विश्लेषण किया जा सकता है, ऑटो रिग्रेसिव डिस्ट्रिब्यूटेड लैग्स पद्धित का पालन किया गया था और ग्रेंजर कॉजिलटी टेस्ट का उपयोग करके एफआईआई के निर्धारकों के कारण और प्रभाव का पता लगाया गया था।

अध्ययन की अविध— अध्ययन 2001—2016 से 15 वर्षों की अविध के लिए आयोजित किया गया था और अध्ययन के लिए मासिक डेटा का उपयोग किया गया था। वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव का पता लगाने के लिए, अविध को अप्रैल 2001 से अगस्त 2008 और नवंबर 2008 से मार्च 2016 तक दो भागों में विभाजित किया गया है। सितंबर और अक्टूबर 2008 के महीने को संकट की अविध के रूप में लिया गया था और अध्ययन के लिए विचार नहीं किया गया था। संकट की अविध की पहचान करने के लिए एक प्रवृत्ति को फिट करने के बाद निर्णय लिया गया था।

भारत में एफ आई आई निवेश इक्विटी में (2001-2016) (करोड रुपए में) 160000 140000 111333 110121 120000 भारत में एफआईआई निवेश... 100000 79709 80000 48801 60000 40000 25236 21142.92 20000 -20000 -40000₁9 -60000

चार्ट 1: पंजीकृत एफआईआई की संख्या

स्रोतः SEBI

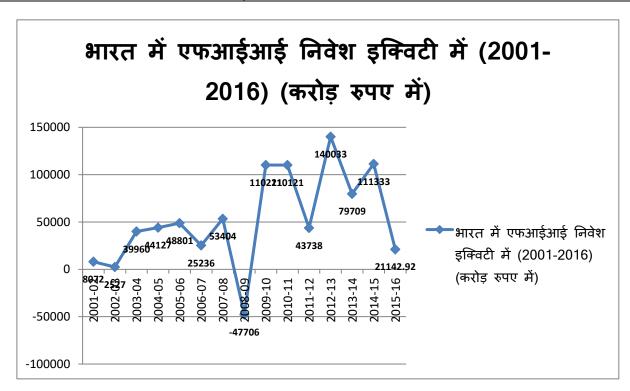
उपरोक्त चार्ट स्पष्ट रूप से भारत में व्यापार के उद्देश्य से सेबी के साथ पंजीकृत एफआईआई की संख्या में वृद्धि को दर्शाता है। पंजीकृत संख्या वर्ष 2012—13 में 1765 के शिखर को छू गई थी लेकिन वर्ष 2015—16 में धीरे—धीरे घटकर 1444 हो गई।

एफआईआई का विकास

तलिकाः 2

वर्ष	भारत में एफआईआई निवेश इक्विटी में (2001-2016)

	(करोड़ रुपए में)
2001-02	8072
2002-03	2527
2003-04	39960
2004-05	44127
2005-06	48801
2006-07	25236
2007-08	53404
2008-09	-47706
2009-10	110221
2010-11	110121
2011-12	43738
2012-13	140033
2013-14	79709
2014-15	111333
2015-16	21143



उपरोक्त चार्ट वर्ष 2001–02 से वर्ष 2015–16 तक FII निवेश में वृद्धि दर्शाता है।

2001—02 में रुपये 8072 करोड स्ने, 2007—08 तक क्रमिक वृद्धि हुई थी और निवेश रु. 53404 करोड तक पहुँच गया था।

वर्ष 2008—09 में वैश्विक वित्तीय संकट के कारण, निवल एफआईआई निवेश में अचानक गिरावट आई, जहां बहिर्वाह अंतर्वाह से रू. 47706 करोड़ अधिक था ।

वर्ष 2009—10 में अंतर्वाह में तीव्र वृद्धि देखी गई है और यह रु. 110121 तक पहुँच गया। और इसे एफआईआई द्वारा भारतीय शेयर बाजार में विश्वास के रूप् में पहचाना जा सकता है।

एफआईआई निवेश वर्ष 2012-13 में 140033 करोड़ रुपये के अपने चरम पर पहुंच गया।

वर्ष 2015-16 तक, प्रवाह में गिरावट आई है और यह रु. 21143 करोड़ था।

विदेशी संस्थागत निवेश प्रवाह के निर्धारक— एफआईआई के प्रवाह को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में कोई सहमित नहीं है। इसका कारण यह है कि एफआईआई को आकर्षित करने के लिए अनुकूल या प्रतिकूल होने वाले कारक उस देश में प्रचलित सूक्ष्म और मैक्रो—आर्थिक कारकों सिहत एक देश से दूसरे देश में भिन्न होते हैं। मोटे तौर पर, इस पहलू में पिछले अध्ययनों की समीक्षा के बाद एफआईआई निवेश को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों के रूप में निम्न को माना जाता है।

- 1. मुद्रास्फीति— मुद्रास्फीति का विदेशी निवेश प्रवाह के साथ विपरीत संबंध है, क्योंकि निवेशक हमेशा निवेश किए गए धन की क्रय शक्ति और मुद्रास्फीति में वृद्धि को ध्यान में रखेगा। जब मुद्रास्फीति दर में वृद्धि होती है, तो इससे निवेशक की क्रय शक्ति में गिरावट आती है। इसलिए, निवेशक निवेश किए गए अपने फंड को वापस लेना पसंद करेगा। इसी प्रकार, यदि विदेशों में मुद्रास्फीति बढ़ती है, तो विदेशों में निवेश किए गए धन की क्रय शक्ति घट जाएगी। यह निवेशक को उस देश में निवेश करने के लिए प्रेरित करेगा जहां मुद्रास्फीति कम है।
- 2. औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईआईपी)— आईआईपी भी एक अर्थव्यवस्था के विकास पर उतना ही महत्वपूर्ण प्रतिवर्त है। आईआईपी एक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे विनिर्माण, खनन, उत्खनन, बिजली, आदि के विकास को दर्शाता है। भारत में आईआईपी कुछ औद्योगिक उत्पादों के उत्पादन की मात्रा में अल्पकालिक परिवर्तनों को इंगित करता है। चूंकि एफआईआई उन कंपनियों / क्षेत्रों के विकास से प्रेरित होते हैं जिनमें वे निवेश कर रहे हैं, इसलिए भारत में एफआईआई प्रवाह को निर्धारित करने वाले कारक के रूप में आईआईपी उचित है।
- 3. भारत और अन्य देशों में ब्याज दरें— जब भारत में ब्याज दरें अधिक होती हैं, तो इससे कंपनी के लिए पूंजी की लागत बढ़ जाती है और बदले में कंपनी की लाभप्रदता प्रभावित होती है। कॉर्पोरेट लाभप्रदता में कमी, बदले में, कंपनी के इक्विटी शेयर के बाजार मूल्य को कम करेगी। यह घरेलू और विदेशी निवेशकों के लिए कम आकर्षक होगा। ऐसे में एफआईआई अपना फोकस इक्विटी मार्केट से हटाकर डेट मार्केट पर लगाएंगे क्योंकि उन्हें डेट मार्केट में ज्यादा रिटर्न मिलेगा। इसलिए, एक अर्थव्यवस्था में बढ़ती ब्याज दरें इक्विटी और इक्विटी से संबंधित उपकरणों में एफआईआई निवेश प्रवाह को प्रभावित करेंगी।

- 4. विदेशी विनिमय दर— मेजबान देश की मुद्रा के बीच प्रचलित विदेशी विनिमय दर निवेशक की घरेलू मुद्रा में एक दूसरे के खिलाफ मुद्राओं की मांग और आपूर्ति के आधार पर उतार—चढ़ाव होता है। विनिमय दर निवेश पर प्रतिफल की प्रभावी या अपेक्षित दर को प्रभावित करती है। जब घरेलू मुद्रा का मूल्य मजबूत होगा, तो निश्चित रूप से एफआईआई निवेश बढेगा।
- 5. धन की आपूर्ति— एक अर्थव्यवस्था में, एक निश्चित समय पर प्रचलन में धन की मात्रा को मुद्रा आपूर्ति कहा जाता है। इसमें व्यक्तियों और व्यावसायिक घरानों द्वारा रखे गए नकद, सिक्के, बचत खाते में शेष, अल्पकालिक निवेश आदि शामिल हैं। मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि से ब्याज दरों को कम करने में मदद मिलेगी और जब मुद्रा आपूर्ति कम हो जाएगी, तो अर्थव्यवस्था के विकास में गिरावट आएगी।
- 6. प्रभाव लागत— प्रभाव लागत को लेनदेन लागत कहा जाता है जो अनुबंध को निष्पादित करने के समय स्टॉक के खरीदार या विक्रेता द्वारा वहन किया जाएगा और यह बाजार की तरलता की जांच के लिए एक अच्छा उपाय है।
- 7. सरकारी नीतियां— एफआईआई का निवेश प्रवाह भी काफी हद तक उस देश की सरकारी नीतियों पर निर्भर करता है जिसमें निवेश किया जाना है। उदाहरण के लिए, जब भारत सरकार ने एफआईआई के लिए पूंजीगत लाभ कर और न्यूनतम वैकल्पिक कर की घोषणा की, जिसने एक बहुत ही नकारात्मक संकेत भेजा और एफआईआई ने अपने निवेश को बाहर निकालना शुरू कर दिया, जिससे शेयर बाजार में अस्थिरता पैदा हो गई। चूंकि सरकारी नीतियों को संख्यात्मक रूप से नहीं मापा जा सकता है, इसलिए इस अध्ययन में इस पर विचार नहीं किया गया है।

तालिका 1: स्थिरता परीक्षण- चयनित चर के लिए संवर्धित डिकी पूर्ण परीक्षण परिणाम

चर प्रपत्र	फॉर्म	टी- सांख्यिकीय	प्रोबेबिलिटी
एफआईआई अनुपात	मूल फॉर्म	-9.215674	0.0000
MIBOR [मुंबई इंटर बैंक की पेशकश की दर]	मूल फॉर्म	-2.896766	0.0477
	पहला अंतर	-51.74174	0.0001
	मूल फॉर्म	-0.146044	0.9414
FOREX	पहला अंतर	-10.95268	0.0000

उपभोक्ता मूल्य सूचकांक	मूल फॉर्म	-1.683589	0.4379
[सीपीआई]	पहला अंतर	-13.21869	0.0000
औद्योगिक उत्पादन सूचकांक	मूल फॉर्म	-2.341777	0.1601
[आईआईपी]	पहला अंतर	-18.56862	0.0000
धन की आपूर्ति [M3]	मूल फॉर्म	-0.937551	0.9483
	पहला अंतर	-1.961706	0.6414
	दूसरा अंतर	-12.07298	0.0000
इम्पैक्ट कॉस्ट	मूल प्रपत्र	-5.535268	0.0000

उपरोक्त तालिका FII अनुपात और अन्य चर जैसे MIBOR, FOREX, CPI, IIP, मनी सप्लाई (M_3) , और इम्पैक्ट कॉस्ट (लेन—देन की लागत) पर आयोजित यूनिट रूट टेस्ट के परिणाम प्रस्तुत करती है। ऑगमेंटेड डिकी फुलर (ADF) टेस्ट का उपयोग करके यूनिट रूट टेस्ट आयोजित किया गया है। परीक्षण की शून्य परिकल्पना यह है कि चर स्थिर नहीं है। यदि चर अपने मूल रूप या स्तर के रूप में स्थिर नहीं हैं, तो परीक्षण पहले अंतर स्तर या दूसरे अंतर स्तर पर तब तक आयोजित किया जाना चाहिए जब तक कि चर स्थिर न हो जाए।

परिणाम

एफआईआई अनुपात मूल रूप में स्थिर है[P<0.01]

MIBOR पहले अन्तर में स्थिर है।

विदेशी मुद्रा (FOREX) पहले अन्तर में स्थिर है।

सीपीआई पहले अन्तर में स्थिर है।

IIP पहले अन्तर में स्थिर है।

मुद्रा आपूर्ति [M3] दूसरे अन्तर में स्थिर है

प्रभाव लागत स्तर फार्म में स्थिर है।

चूंकि अध्ययन के लिए विचार किए गए चर अलग—अलग क्रम में स्थिर होते जा रहे हैं, ऑटो रिग्रेसिव डिस्ट्रिब्यूटेड लैग मॉडल (ARDL), लागू किया जाना है। इस मॉडल का उपयोग यह जांचने के लिए किया जाता है कि क्या लंबे समय में चर के बीच कोई संबंध मौजूद है।

तालिका 2: एआरडीएल मॉडल के परिणाम

चर	गुणक	Std. Error	टी-	->>
	(Cofficient)		सांख्यिकीय	प्रोबेबिलिटी
एफआईआई अनुपात (-1)	0.166511	0.071326	2.334498	0.0208
एफआईआई अनुपात (-2)	0.046201	0.071843	0.643082	0.5211
एफआईआई अनुपात (-3)	0.10563	0.07386	1.430137	0.1546
एफआईआई अनुपात (-4)	0.133086	0.067794	1.963103	0.0514
MIBOR	0.000271	0.008681	0.031193	0.9752
FOREX	-4.08718	0.66233	-6.17091	0
FOREX(-1)	3.991583	0.649841	6.142395	0
सीपीआई यूनिफ़ॉर्म बेस	0.083632	0.044424	1.882609	0.0616
आईआईपी यूनिफॉर्म बेस	0.333544	0.157824	2.113389	0.0361
आईआईपी यूनिफॉर्म बेस (-	-0.36616	0.160444	-2.2822	0.0238
1)				
LNM3	-0.0625	0.069726	-0.89629	0.3714
प्रभाव लागत	-0.14351	0.18847	-0.76142	0.4475
प्रभाव लागत (-1)	-0.21907	0.185652	-1.18001	0.2397
प्रभाव लागत (-2)	-0.35209	0.184025	-1.9133	0.0575
प्रभाव लागत (-3)	0.346688	0.186383	1.860083	0.0647
CRISS DUMMY	0.109333	0.063467	1.722675	0.0869
सी	1.453795	0.722144	2.013164	0.0458
आर-वर्ग				0.43751
समायोजित आर-वर्ग				0.381261
प्रतिगमन का एस.ई.				0.158966

लॉग संभावना		83.29834
एफ-सांख्यिकी		7.778093
Prob. (एफ-सांख्यिकी)		0.000000

एआरडीएल मॉडल के परिणामों से पता चलता है कि एक महीने के अंतराल वाले एफआईआई अनुपात का, समान चर के चालू महीने के मूल्यों पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। जबिक, दूसरे, तीसरे और चौथे महीने एफआईआई अनुपात से पिछड़ गया, हालांकि इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, यह सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं है।

MIBOR का FII अनुपात पर महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

चालू माह विदेशी मुद्रा का महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जबकि एक महीने के अंतराल में विदेशी मुद्रा का महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सीपीआई का एफआईआई अंतर्वाह पर मध्यम प्रभाव पड़ता है, लेकिन इसका प्रभाव 10% के महत्व के स्तर पर महत्वपूर्ण है।

वर्तमान माह आईआईपी का महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव पड़ा है जबकि एक महीने के अंतराल में आईआईपी का महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

मुद्रा आपूर्ति का एफआईआई प्रवाह पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रभाव लागत का भी एफआईआई के प्रवाह पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

'आर' वर्ग मूल्य दर्शाता है कि एफआईआई प्रवाह में परिवर्तन को उपरोक्त निर्धारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और यह 43.75% हो सकता है।

ग्रेंजर कॉजिलटी टेस्ट लागू करके एफआईआई अनुपात और विभिन्न अन्य चर के बीच कारण संबंध की जांच करना

तालिका 3: विभिन्न अंतराल में एफआईआई अनुपात और विनिमय दर सूचकांक में संबन्ध

शून्य परिकल्पना	अंतराल	एन	एफ-	प्रोबेबिलिटी
	लंबाई		सांख्यिकी	त्रावावालटा
FOREX का एफआईआई अनुपात पर		180	0.02542	0.8735
खास प्रभाव नहीं पड़ता है	1			
एफआईआई अनुपात का FOREX पर	1		8.13272	0.0049
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
FOREX का एफआईआई अनुपात पर	- 2	179	0.63132	0.5331
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का FOREX पर			2.75196	0.0666
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
FOREX का एफआईआई अनुपात पर	3	178	0.19539	0.8994
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का FOREX पर			1.93930	0.1251
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				

परिणाम

अंतराल –1(सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

5% सिगनीफिकेन्स के स्तर पर, एफआईआई अनुपात और विदेशी विनिमय दर के बीच एक—दिशात्मक कार्य—कारण है, जहां एफआईआई अनुपात विनिमय दर मूल्यद्वास का कारण है, लेकिन विनिमय दर प्रवाह में वृद्धि या कमी का एफआईआई पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है।

अंतराल –2 और अंतराल –3 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

5% सिगनीफिकेन्स पर, दूसरे और तीसरे अंतराल में यानी दूसरे और तीसरे महीने में, एफआईआई अनुपात और विनिमय दर के बीच कोई खास कारण नहीं है। दोनों चर परस्पर एक दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं।

तालिका 4: विभिन्न अंतराल में एफआईआई अनुपात और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में संबन्ध

शून्य परिकल्पना	अंतराल	एन	एफ-	प्रोबेबिलिटी
	लं बा ई		सांख्यिकी	त्रावावालटा
CPI समान आधार का एफआईआई	1	180	10.2255	0.0016
अनुपात पर खास) प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का CPI समान			0.34800	0.5560
आधार पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
CPI समान आधार का एफआईआई	- 2	179	4.60629	0.0112
अनुपात पर खास) प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का CPI समान			0.41456	0.6613
आधार पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
CPI समान आधार का एफआईआई	3	178	2.11544	0.1001
अनुपात पर खास) प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का CPI समान			1.74574	0.1595
आधार पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				

परिणाम

अंतराल –1 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

सीपीआई और एफआईआई अनुपात के बीच एक ही तरह के कारण है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक भारत में एफआईआई के प्रवाह में वृद्धि या कमी का कारण बन रहा है, जबिक एफआईआई अनुपात भारत में सीपीआई पर 5% के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं डालता है।

अंतराल –2 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

दूसरे अंतराल में भी, सीपीआई और एफआईआई अनुपात के बीच एक ही तरह के कारण है। जहां सीपीआई भारत में एफआईआई निवेश में बदलाव का कारण बन रहा है, जबिक एफआईआई निवेश भारत में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में कोई बदलाव नहीं करता है। अंतराल –3 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

5% के स्तर, तीसरे महीने में, यह पाया जाता है कि FII अनुपात और CPI के बीच कोई खास संबन्ध नहीं है, अर्थात् दोनों चर परस्पर दूसरे चर में कोई परिवर्तन नहीं कर रहे हैं।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 5% के सिगनीफिकेन्स के स्तर पर केवल पहले दो महीनों में प्रभावशाली है, जहां, सीपीआई एफआईआई निवेश को आकर्षित करता है।

तालिका 5 : विभिन्न अंतराल में एफआईआई अनुपात और औद्योगिक उत्पाद सूचकांक में संबन्ध

शून्य परिकल्पना	अंतराल लंबाई	एन	एफ-	प्रोबेबिलिटी
			सांख्यिकी	त्रावावालटा
IIP समान आधार का एफआईआई		180	0.77998	0.3783
अनुपात पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का IIP समान	1	100	0.00309	0.9558
आधार पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
IIP समान आधार का एफआईआई	- 2	179	1.48759	0.2288
अनुपात पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का IIP समान			2.87865	0.0589
आधार पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
IIP समान आधार का एफआईआई	- 3	178	0.56582	0.6383
अनुपात पर खास) प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का IIP समान			4.10727	0.0076
आधार पर खास प्रभाव नहीं पड़ता है				

परिणाम

अंतराल –1 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

प्रथम अन्तराल में एफआईआई अनुपात और औद्योगिक उत्पादन सूचकांक के बीच कोई खास संबन्ध नहीं है, क्योंकि 'पी' मान 5% के सिगनीफिकेन्स स्तर पर 0.05 से अधिक है।

5% के सिगनीफिकेन्स स्तर पर, दूसरे महीने में FII अनुपात और IIP के बीच कोई खास संबन्ध नहीं है।

एफआईआई निवेश पर तीसरे महीने में आईआईपी का प्रभाव पड़ता हैं, लेकिन एफआईआई प्रवाह पर आईआईपी के कारण कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

यह पाया गया है कि एफआईआई निवेश भारत में उनके निवेश के दूसरे और तीसरे महीने में औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में बदलाव का कारण बनता है।

तालिका 6 : विभिन्न अंतराल में एफआईआई अनुपात और धन आपूर्ति (M_3) में संबन्ध

शून्य परिकल्पना	अंतराल लंबाई	एन	एफ-	प्रोबेबिलिटी
			सांख्यिकी	त्रावावालटा
M3 का एफआईआई अनुपात पर खास	1	180	5.03930	0.0260
प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का M3 पर खास			0.03991	0.8419
प्रभाव नहीं पड़ता है				
M3 का एफआईआई अनुपात पर खास	- 2	179	2.92745	0.0562
प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का M3 पर खास			0.22159	0.8015
प्रभाव नहीं पड़ता है				
M3 का एफआईआई अनुपात पर खास	- 3	178	1.57470	0.1973
प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई अनुपात का M3 पर खास			0.38277	0.7656
प्रभाव नहीं पड़ता है				

परिणाम

अंतराल –1 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

पहले अंतराल में, मुद्रा आपूर्ति एफआईआई निवेश पर प्रभाव डाल रही है क्योंकि दोनों चरों के बीच एक संबन्ध है। दूसरी ओर, एफआईआई निवेश भारत में पहले महीने में 5% स्तर पर मुद्रा आपूर्ति पर कोई प्रभाव नहीं डाल रहा है।

अंतराल –2 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

दोनों चर दूसरे महीने में 5% स्तर पर एक दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं डाल रहे हैं। अंतराल –3 ख्महत्व का 5: स्तर,

तीसरे अंतराल में, दोनों चरों के बीच कोई खास संबन्ध नहीं है। 5% स्तर पर न तो एफआईआई निवेश और न ही मुद्रा आपूर्ति एक दूसरे से प्रभावित होती है।

यह पाया गया है कि एक अच्छी मुद्रा आपूर्ति स्थिति एफआईआई के प्रवाह पर पहले अंतराल में 5% महत्व के स्तर पर प्रभाव डाल रही है।

तालिका 7: विभिन्न अंतराल में एफआईआई अनुपात और प्रभावी लागत में संबन्ध

शून्य परिकल्पना	अंतराल लंबाई	एन	एफ-	प्रोबेबिलिटी
			सांख्यिकी	AIMIMICI
प्रभाव लागत का एफआईआई अनुपात पर	1	180	0.71358	0.3994
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई का प्रभाव लागत पर खास			3.24232	0.0735
प्रभाव नहीं पड़ता है				
प्रभाव लागत का एफआईआई अनुपात पर	- 2	179	0.75238	0.4728
खास प्रभाव नहीं पड़ता है				
एफआईआई का प्रभाव लागत पर खास			2.14253	0.1204
प्रभाव नहीं पड़ता है				
प्रभाव लागत का एफआईआई अनुपात पर			2.21624	0.0880
खास प्रभाव नहीं पड़ता है	2	170		
एफआईआई का प्रभाव लागत पर खास	3	178	2.22314	0.0873
प्रभाव नहीं पड़ता है				

परिणाम

अंतराल-1, 2 और 3 (सिगनीफिकेन्स का 5% स्तर)

तीनों अंतरालों में, 5% स्तर पर, FII अनुपात और प्रभाव लागत के बीच कोई खास संबन्ध नहीं है।

यह पाया गया है कि पहले महीने में विदेशी निवेश के प्रवाह और प्रभाव लागत का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। यह परिदृश्य धीरे–धीरे बदलता है और तीसरे महीने तक दोनों चर एक–दूसरे से प्रभावित होते हैं।

निष्कर्ष

किसी देश में FII का अंतर्वाह विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है और कुछ ऐसे कारक हैं जो बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं। इस अध्ययन में, यह पाया गया कि एफआईआई निवेश से भारत में विनिमय दर और आईआईपी पर प्रभाव पड़ता है। साथ ही यह भी पाया गया कि मुद्रा आपूर्ति और सीपीआई से एफआईआई निवेश पर प्रभाव पड़ता, और एफआईआई निवेशों के प्रति प्रभाव लागत और एमआईबीओआर के बीच कोई संबन्ध नहीं है।

अध्ययन की सीमा

एफआईआई निवेश को प्रभावित करने वाले कारक बहुत व्यापक हैं, लेकिन अध्ययन के लिए केवल मैक्रो आर्थिक चर पर विचार किया है।

आगे के अध्ययन की गुंजाइश

सूचकांक बनाने वाली कंपनियों के मूल्य आय अनुपात, रिटर्न और अस्थिरता जैसे सूक्ष्म आर्थिक चरों पर विचार करते हुए एक अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ

- 1. Ashish Garg & Bodla B.S (2009). "Determinants of Fiis Investment In Indian Stock Market". Abhigyan. Vol.XXVI.No.4. Pp 12-24.
- 2. Indrani Chakraborty (2006), "Capital Inflows During the Post Liberalisation Period". Economic and Political Weekly, January.14,2006, pp.143-150.
- 3. Krishnan Dandapani & Edward Lawrence (2013). "Foreign Institutional Investment In India". Finance India.Vol.XXVII.No.2 Pp 409-419.
- 4. Kulwant Rai & Bhanumurthy NR (2004) "Determinants of Foreign Institutional Investments In India: The Role Of Risk, Return And Inflation". The Developing Economies, Vol. XLII.No.4. Pp.479-493.
- 5. Mishra P.K(2010), "The Estimation of Relationship Between Foreign Investment Flows and Economic Growth In India". Asian Economic Review. Vol.52. No.3. Pp.521-531

- 6. Nidhi Dhamija (2008). "Foreign Institutional Investment In India- An Exploratory Analysis Of Pattern Across Firms". Margin-Journal Of Applied Economic Research.Vol.2.No.3 Pp 287-320
- 7. Pushpa Trivedi & Abhilash Nair (2006) "Determinants of FII Investments Inflow To India" ICFAI Journal Of Finance. Vol.12, No.4. Pp.5-20.
- 8. Ram Mohan.TT (2005), "Taking Stock of Foreign Institutional Investors". Economic and Political Weekly, Pp. 2395-2399.
- 9. Reetika Garg and Pami Dua (2014), 'Foreign Portfolio Investment Flows to India- Determinants and Analysis". World development. Vol. 59, pp 16-28,
- 10. Sonia Chawla and Priyanka Sharma (2014), "A Macroeconomic Approach to Foreign Investment Flows in India". Indian Journal of Finance, May, 2014. Vol.8, No.5. pp. 42-49
- 11. Sunil Kumar (2014). "Trends of Foreign Institutional Investments During and Beyond Economic Crisis". Indian Accounting Review. Vol. 18. No. 1 Pp 15-30.
- 12. Tripati Rao.D and Rudra Sensarma (2007). "Interest Rate Signals, Stock Returns and FII Inflows: Exploring The Inter Linkages". Metamorphosis, Journal of Management Research. Vol.6, No.1, Pp 54-68.
- 13. Vanita Tripathi and Shilpa Maggo (2014), "Determinants of Foreign Institutional Investment in Indian Debt Market". The Indian Journal of Commerce, Vol.67, No. 2, April-June 2014, pp. 1-12.
- 14. Vinod Bhatnagar (2010), "FIIs Investment In India: A Trend Analysis Of Monthly Flows During January 2004- August 2010". Vishwakarma Business Review. Vol.1 No.2. Pp.25-34

WEBSITES

- 15. www.bse.india.com
- 16. www.nseindia.com
- 17. www.rbi.org
- 18. www.sebi.gov.in



भारत में शारीरिक शिक्षा का उद्भव एवं विकास

डॉ. आरती शर्मा सहायकाचार्य (शिक्षापीठ)

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय), नई दिल्ली।

शोध सार (Abstract) - सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदण्डवत्। लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ (चरक)

अर्थात् मन आत्मा और शरीर ये तीनों (घड़ा रखने की) तिपाई के समान हैं। जीवसृष्टि इनके संयोग से खड़ी है और उसमें (कर्मफलादि, सुखदु:खादि) सर्व अधिष्ठित है। जिस प्रकार तिपाई के तीन पायों में से एक पाया न होने पर तिपाई खड़ी नहीं हो सकती, उसी प्रकार आत्मा, मन और पंचभौतिक शरीर इनमें से एक के न होने से जीव-सृष्टि उत्पन्न नहीं हो सकती। आत्मा एवं मन की स्वस्थता हेतु शरीर का स्वस्थ रहना नितान्त आवश्यक है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए शारीरिक शिक्षा भी जरूरी है। इस प्रकार प्राचीन काल से वर्तमान तक शारीरिक शिक्षा की विकास यात्रा की एक झलक इस पत्र के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही है। मुख्य शब्द – भारत, शारीरिक, शिक्षा, प्राचीन, वर्तमान, विकास, यात्रा।

भूमिका- प्राचीन काल से ही शारीरिक शिक्षा मानव समाज में चली आ रही है। आधुनिक युग में इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है क्योंकि आधुनिक युग यान्त्रिक है, प्रत्येक कार्य मशीन के द्वारा किया जाने लगा है। जिसके कारण व्यक्ति को बहुत कम शारीरिक शिक्ति के प्रयोग की जरूरत पड़ती है। इसी के साथ बच्चे भी खेल-कूद तथा अन्य शारीरिक क्रियाओं में भाग न लेकर टेलीविजन, मोबाइल इत्यादि से अपना मनोरंजन कर लेते हैं, इसलिए शारीरिक शिक्षा को आरम्भ से जरूरी मानते हुये 'पहला सुख निरोगी काया' कहा गया है।

प्राचीन काल में मनुष्य अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण के लिए शिकार करता था, जिसके लिए उसे कठिन मेहनत करनी पड़ती थी, इससे उनका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता था। शिकार को प्राप्त करने के लिए उसे शास्त्रों का निर्माण करना पड़ता था तथा शस्त्रों के निर्माण में मनुष्य के शरीर का अच्छा व्यायाम हो जाता था। प्राचीन समय में लोग कुश्ती (मल्ल-युद्ध) के शौकीन थे, जो कि उनके शारीरिक स्वास्थ्य का उत्तम साधन था। इस प्रकार हम देखते हैं कि शारीरिक शिक्षा का प्रारम्भ पुरातन काल से ही हो गया था।

भारत में शारीरिक शिक्षा का उद्भव—भारत में शारीरिक शिक्षा का उद्भव प्रायश: पत्थर युग से माना जाता है। सर्वप्रथम मानव ने अपने जीवन की सुरक्षा हेतु पत्थर के औजारों का निर्माण प्रारम्भ किया। औजारों का आकार तराशने एवं उन्हें सुन्दर बनाने में काफी शारीरिक श्रम लगता था, इस कारण इस पत्थर युग को विद्वानों ने दो भागों में विभाजित किया।

- 1. पालियोलिथिक युग (Paleolithic Age)
- 2. नियोलिथिक युग (Neolithic Age)

पोलियोलिथिक युग— इस युग में शारीरिक विकास हेतु अनेक कार्य िकये जाते थे, जिनमें पत्थर के औजारों का निर्माण भी प्रमुख कार्य था। इसी के साथ उस समय मानव हजारों मील तक पैदल चलते थे। तैरने की कला भी इसी युग में प्रारम्भ हुई। कूदने, पेड़ों पर चढ़ने तथा पहाडियों पर चढ़ने की कला भी इस युग में देखी गई। इन सभी शारीरिक कार्यों के द्वारा मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ रखते थे।

नियोलिथिक युग—नियोलिथिक युग को नवीन पत्थर युग कहा जाता है। मानव ने अपने बनाए औजारों के आधार एवं स्वरूप, हथियारों की सफाई, उनको चलाना सीखना, इन बातों पर ध्यान दिया। जिसमें शारीरिक श्रम काफी लगता था। तीर-कमान का निर्माण संगमरमर के खिलौनों का निर्माण, पत्थर के खिलौनों को अच्छा स्वरूप प्रदान करना इसी युग की

देन माना जाता है। एवं कहा जाता है कि मानव का उत्तम शारीरिक स्वास्थ्य इसी युग से प्रारम्भ हुआ। प्राचीन समय विशेषत: नियोलिथिक युग की अनेकों शारीरिक क्रियाएँ भारत में आज भी प्रचलित हैं, यथा– पतले बाँस में स्टिंग लगाकर कमान बनाकर (तीर-कमान) का प्रयोग करना एवं रस्सी से पत्थर को फेंकना (गुलेल) आदि।

भारत में शारीरिक शिक्षा का विकास— प्राचीन भारत में शारीरिक शिक्षा का कोई भी लिखित इतिहास प्राप्त नहीं होता है। केवल लोक-कथाओं, गाथाओं में अथवा मौखिकाभिव्यक्ति द्वारा यह ज्ञात होता है कि भारत भी शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में समृद्ध रहा। इसके विकास क्रम को समझने के लिए हम इसे सात भागों में विभाजित किया गया है-

- 1. सिन्धु घाटी की सभ्यता का काल (3250 ई.पू.-2500 ई.पू.)
- 2. वैदिक काल (2500 ई.पू.-600 ई.पू)
- 3. महाकाव्य काल (600 ई.पू-320 ई.पू)
- 4. ऐतिहासिक काल (320 ई.पू-1000 ई.पू)
- 5. मध्य काल (1000 ई.पू-1775 ई.पू)
- 6. ब्रिटिश काल (1947 ई. से पूर्व)
- 7. स्वतन्त्र भारत में शारीरिक शिक्षा (1947 ई. से अब तक)
- (1) सिन्धु घाटी सभ्यता का काल- सिन्धु घाटी सभ्यता के पुरातात्त्विक, मोहनजोदड़ो तथा हडप्पा की खुदाई से स्पष्ट होता है कि इस काल में युद्ध शास्त्रों, औजारों, उपकरणों के अध्ययन से पता चलता है कि इस काल में शारीरिक अभ्यास दैनिक कार्यों, खेलों और मनोरंजन द्वारा किया जाता था। इस काल में तीर-कमान, घुड़सवारी, रथ सवारी, निशानेबाजी तथा नृत्य करना, पत्थर के औजार बनाना, मिट्टी के खिलौने बनाना आदि प्रमुख शारीरिक क्रियायें की जाती थी। पर्वों पर सामुदायिक नृत्य भी किये जाते थे। उस काल में मानव आत्म निर्भरता में अधिक विश्वास करते थे। फल एवं सब्जियाँ उनका प्रिय भोजन होता था। शरीर ताकतवर होता है। शिकार उनका प्रिय शौक था। प्राप्त मुहरों से पता चलता है कि मुक्केबाजी भी बड़ी मात्रा में प्रचलित थी।
 - (2) वैदिक काल— वैदिक काल में धार्मिकता की अधिकता के साथ ही शारीरिक संस्कृति और बल को भी विशेष स्थान प्राप्त था।इस काल में योग की व्युत्पत्ति हुई, शरीर की सुदृढ़ता के लिए आसन, प्राणायाम का प्रयोग किया जाता था। वैदिक काल में आर्य जातियों के व्यायाम प्रणाली का मुख्य अंग था। वैदिक काल में लोगों की प्रमुख शारीरिक क्रियायों में जिमनास्टिक, आखेट, अश्वारोहण, शस्त्र विद्या आदि हैं।
 - (3) महाकाव्य काल— रामायण एवं महाभारत का काल महाकाव्य काल कहा जाता है। रामायण काल में मनुष्य शारीरिक व्यायाम द्वारा स्वस्थ रहने का प्रयास करते थे। इस काल में अनेक शारीरिक क्रियाओं का प्रचलन था। यथा— धनुर्विद्या, गदा युद्ध, मल्लयुद्ध, तलवारबाजी, भाला फेंकना, नृत्य एवं चौगान। महाभारत काल में भी शारीरिक सौष्ठव के कई सन्दर्भ हैं, जो कि भारत की शारीरिक संस्कृति के परिदृश्य को स्पष्ट करते हैं। इस काल में शारीरिक शिक्षा व्यक्ति को पूर्ण पारगंत कर युद्ध जैसी स्थिति से निपटने के लिए कारगर होती थी, महाभारत काल में अनेक व्यायामों एवं शारीरिक प्रशिक्षणों का वर्णन शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत वर्णित है। यथा— भाला फेंकना, धनुर्विद्या, मल्लयुद्ध, तलवारबाजी, गदायुद्ध, चौसर, तैरना, घुड़सवारी, नृत्य। गदायुद्ध, तीर, मल्लयुद्ध, तलवारबाजी एवं भाला आदि के लिए तक्षशिला में पढ़ाई के लिये विशेष विषय माना जाता था। उस समय इसके लिए विशेष प्रशिक्षक भी नियुक्त किये जाते थे।
 - (4) **ऐतिहासिक काल** पूर्व के तीन कालों की अपेक्षा ऐतिहासिक काल में शारीरिक शिक्षा के इतिहास मे काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। ईसा पूर्व 1560 में महात्मा बुद्ध के जन्म के पश्चात् भारत में प्रथम बार स्वशासन का समय आया था। इसीलिए इसे ऐतिहासिक काल कहा जाता है। उस समय शारीरिक क्रिया के रूप में- तैरना, कूदना, तीरंदाजी करना, तलवारबाजी करना,

हाथी की सवारी करना, रथ चलाना, कुश्ती करना, बॉक्सिंग करना, दौड़ना, घुड़सवारी आदि का प्रचलन था। योग विद्या का प्रचलन ऐतिहासिक काल में सबसे ज्यादा था। उस समय स्वयं गौतमबुद्ध दीक्षा लेने के लिए गए तो सर्वप्रथम उन्हें योग की क्रियाएँ सिखायी गयीं।

(5) **मध्य काल (मुस्लिम काल)** – मध्य काल में शारीरिक शिक्षा अत्यधिक विस्तृत हो गई। इस काल में प्रख्यात धर्मगुरू श्री समर्थ रामदास स्वामी ने शारीरिक शिक्षा का अत्यधिक प्रचार किया एवं जिम्नेजियम बनाने के लिए धनीवर्ग को प्रोत्साहित किया, इसी कारण उन्हें भारतीय जिम्नेजियम आंदोलन का पितामह कहा जाने लगा।

जिम्नेजियम में सूर्य नमस्कार, भारी झूले, तलवार बाजी, मलखम्ब आदि शारीरिक क्रिया संपादित की जाती थीं, इस काल में शिकार, तलवारबाजी, गदाबाजी, घुड़सवारी, योग, कसरत से अधिक महत्त्वपूर्ण शारीरिक क्रियायें थी। मांसपेशियों में ताकत विकसित करने व लचकता लाने के लिए दरबारियों एवं सैनिकों को दण्ड-बैठक कराई जाती थी। चौगान एवं कबूतरबाजी भी इस काल के प्रसिद्ध खेल थे।

(6) **ब्रिटिश काल**— इस काल में शारीरिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार का श्रेय पूर्णत: स्वयं सेवी संस्थाओं को जाता है उन निजी संस्थाओं ने व्यायाम शालाओं, क्रीडास्थलों, अखाड़ों ने इस क्षेत्र उत्थान के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, जैसे दंड-बैठक, कुश्ती, खो-खो, लाठी चलाना योगाभ्यास आदि। विद्यालय स्तर पर पश्चिमी खेलों एवं शारीरिक गतिविधियों पर ध्यान दिया जाता था, इनमें शारीरिक शिक्षा अनिवार्य रूप से संचालित होती थी, ट्रैक एंड फील्ड, स्वीमिंग, घुड़दौड़ पोलो, साइकिलिंग जैसे खेलों को प्राथमिकता दी जाती थी, और भारतीय खेलों को तवज्जों नहीं दी जाती थी।

भारत में शारीरिक शिक्षा का वैज्ञानिक रूप से पर्दापण स्वतन्त्रता से पूर्व 1920 में एच.सी.बक द्वारा स्थापित मद्रास वाइ.एम.सी.ए.कॉलेज ऑफ फिजीकल एजुकेशन से हुआ, इस आधारभूत संस्थान ने भारत में शारीरिक शिक्षा को एक नया आयाम दिया। बॉस्केट बाल, वालीबाल के खेल अमेरिका से भारत लाने का श्रेय इसी संस्था का जाता है। इसी क्रम में एच.वी.पी.मण्डल की स्थापना अमरावती में हुई स्वदेशी संस्था द्वारा कई प्रशिक्षण कोर्स, सिर्टिफिकेट कोर्स, डिग्री, डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ किये गए।

(7) स्वतन्त्र भारत में शारीरिक शिक्षा का विकास—15 अगस्त, 1947 को जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो भारत में शिक्षा के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ। इसके साथ-साथ शारीरिक शिक्षा का भी विकास हुआ। नए शिक्षक प्रशिक्षक के द्वार खुलने तथा खेलों और स्वास्थ्य के विकास के लिए नई-नई योजनाएँ बनीं। स्वतन्त्रता के बाद भारत वर्ष में निजी संस्थाओं तथा केन्द्रीय सरकार ने शारीरिक-शिक्षा के विकास के लिए बहुत प्रयत्न किये।

शारीरिक शिक्षा के लिए निर्मित प्रमुख समितियाँ निम्नलिखित है-

- (1) **डॉ. तारा चन्द सिमिति** स्वतन्त्रता के बाद भारत सरकार ने शारीरिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया और शारीरिक शिक्षा के लिए अनेक कदम उठाए। केन्द्रीय सरकार ने उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए स्थापित बोर्ड ने डॉ. ताराचन्द की अध्यक्षता में एक उपसमिति गठित की, इस समिति ने शारीरिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए-
- 1. शारीरिक शिक्षा के प्रशिक्षण के लिए एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना।
- 2. शारीरिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना।
- 3. एक वर्ष के स्नातकोत्तर अभ्यासक्रम (कोर्स) की स्थापना।
- 4. डॉ. ताराचन्द कमेटी के सुझाव के परिणाम स्वरूप ग्वालियर में 11 अगस्त 1957 को भारत सरकार की ओर से "लक्ष्मीबाई शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय" की स्थापना की गई। आजकल इस कॉलेज को भारतीय खेल प्राधिकरण संचालित करता है तथा इसका नाम "लक्ष्मीबाई राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षण महाविद्यालय" (LNCEP) है।
- 5. अभ्यासक्रम उन शारीरिक शिक्षा स्नातकों के लिए प्रस्तावित किया गया जिन्होंने शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में दो वर्ष तक कार्य किया हो। इस अभ्यासक्रम में चार निम्नलिखित विषय प्रस्तावित किए गए।
 - (1) अनुसंधान विधि

- (2) नाप तोल परीक्षण
- (3)विभिन्न देशों में शारीरिक शिक्षा की प्रगति का अध्ययन।
- (4) शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन का संगठन एवम् संचालन।
- 6. इन केन्द्रों में शारीरिक शिक्षा व्यवस्था तथा निरीक्षण के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की योजना रखी गई थी।
- 7. सरकार द्वारा शारीरिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक केन्द्रीय परामर्श समिति (Central Advisory Board of physical-Education and Recreation)

डॉ. ताराचन्द्र कमेटी के सुझाव पर भारत सरकार में "शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन का केन्द्रीय परामर्श बोर्ड" का गठन किया। इस बोर्ड के परामर्श से भारत सरकार ने शारीरिक शिक्षा की प्रशिक्षण संस्थाओं को मजबूत तथा स्तर के विकास के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में केन्द्रीय अनुदान की व्यवस्था की।

(2) अखिल भारतीय खेल सलाहकार सिमिति— भारत में खेलों के उत्थान के तथा उनको सुचारू रूप से चलाने के लिए मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने सभी खेल संघों के अध्यक्षों की एक सभा बुलाई। 1954 ई. में सभी खेल संगठनों के अध्यक्ष मौलाना अब्दुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में एकत्रित हुए। उन्होंने एक प्रस्ताव पारित करके भारत सरकार को खेल-सलाहकार सिमिति बनाने कि लिए आग्रह किया। इसके परिणाम स्वरूप भारत सरकार ने नवम्बर, 1954 में अखिल भारतीय खेल सलाहकार सिमिति का गठन किया।

उद्देश्य-

- (1) विभिन्न राष्ट्रीय खेल संघों तथा भारत सरकार में सामंजस्य पैदा करना।
- (2) भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलों के स्तर का विकास करना।
- (3) खेलों के स्तर के विकास के लिए भारत में प्रशिक्षण केन्द्र शुरू करना।
- (4) खेलों के तकनीकों का वैज्ञानिक तरीकों से अनुसंधान करना।

खेलकूद की तदर्थ-जाँच समिति (Ad-hoc Enquiry Committee On Games and Sports) की सिफारिशों पर सन् 1958 में अखिल भारतीय खेल सलाहकार समिति का पुनर्गठन किया गया। भारत की नई शिक्षा नीति 1986 में भी शारीरिक शिक्षा के लिए अनेक संस्तुतियाँ दी गईं तथा शारीरिक शिक्षा के लिए विशेष प्रशिक्षण देने पर बल दिया गया। इसके साथ ही भारत देश में शारीरिक शिक्षा के विकास के लिए समय-समय पर अनेक समिति एवं परिषदें बनायी गयीं। यथा-

- 3. कुंजरू समिति
- 4. राष्ट्रीय अनुशासन योजना
- 5. राष्टीय फिटनैस कोर
- 6. राष्ट्रीय कैडिट कोर
- 7. राष्टीय खेल-नीति

निष्कर्ष-राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी शारीरिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा हेतु विशेष ध्यान दिया गया है एवं लगभग दस बिन्दुओं में इस शिक्षा को प्रभावी बनाने हेतु संस्तुतियाँ दी गयी हैं। शारीरिक शिक्षा के विकास के लिए न केवल भारत देश अपितु सम्पूर्ण विश्व अधिकाधिक प्रयत्नशील है। जैसा कि कालिदास जी ने अपने मालविकाग्निमत्र में लिखा है- "शरीमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- 1. सिंह, धीरज कुमार (2012), स्वास्थ्य शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद, दया पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
- 2. डॉ, अरोड़ा, मन्जू (2019), स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
- 3. शर्मा, पी.डी., शारीरिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, उत्तरप्रदेश।
- 4. डॉ. पारेख, प्रियांशी, डॉ. जैन, वैभव (2018), स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा एवं योग, शिवालिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 5. शर्मा, डॉ.वी.के. (2018), स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, न्यू सरस्वती हाउस, नई दिल्ली।

- 6. शैदा, बी.डी., शैदा, ए.के. (2005), स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा, आर्य बुक डिपो नई दिल्ली।
- 7. डॉ. कंवर, रमेश चंद (2005), शारीरिक शिक्षा के सिद्धान्त एवं इतिहास, अमित ब्रदर्स पब्लिकेशन्स।
- 8. डॉ. भण्डारी, दीपक सिंह (2015), शारीरिक शिक्षा, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- 9. डॉ. डागर, आर.के.एस. (2009), शारीरिक शिक्षा का भारतीय परिदृश्य, स्पोर्ट्स एजूकेशनल टेक्नोलॉजीस, दरियागंज, नई दिल्ली।
- 10. घाणेकर, श्रीयुत्त भास्कर गोविन्द (1963), स्वास्थ्य शिक्षा पाठावली, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।



साहित्य एवं मनोविज्ञान का अंतर्संबंध

पुष्पा यादव शोध छात्रा, पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा,पंजाब।

शोधसारांश— साहित्य एवं मनोविज्ञान का संबंध बहुत गहरा है। ये एक दूसरे के साध्य एवं साधन बन गये हैं। साहित्य का अस्तित्व मनोविज्ञान के बिना संभव नहीं हो सकता, किन्तु मनोविज्ञान का अस्तित्व साहित्य के बिना भी हो सकता है। हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान दो रूपों में हमारे सामने उभरकर आता है। पहला, वे रचनाएं जिसमें प्रत्यक्ष रूप से मनोवैज्ञानिकता के तत्त्व दिखायी देते हैं। दूसरा स्वरूप उन रचनाओं का है, जिसमें मनोवैज्ञानिक तत्त्व अप्रत्यक्ष रूप से समाहित है। मुख्य शब्द – साहित्य, मनोविज्ञान, समाज, मार्मिक, अभिव्यक्ति, कलात्मक, मानवीय, सार्थकता।

साहित्य मानव-समाज की संचित आकांक्षाओं-अपेक्षाओं, स्वप्नों तथा संकल्पों की मार्मिक और शाब्दिक अभिव्यक्ति है, जिसके द्वारा समष्टि की आंतरिकता एवं सुख-दुख की अनुभूति होती है। जिस प्रकार जीवन को परिभाषित करना कठिन है उसी प्रकार साहित्य को भी परिभाषाओं की सीमा में बाँधना कठिन है। वस्तुत: साहित्य समष्टिगत आधार पर मानव-मन की रुचि से संबंधित सहजानभूति की आनंदप्रद और कलात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका प्रयोजन मानवीय जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करना है। मानव-जीवन, सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट प्राणी का जीवन है। मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण समाज में ही संभव है। व्यक्ति के मन-मस्तिष्क पर समाज में घटित घटनाओं का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। अपने मस्तिष्क पर पड़े इस प्रभाव को साहित्यकार, साहित्य के माध्यम से कृति के रूप में प्रकट करता है। स्पष्टत: कृति, भाव का कथ्य अथवा प्रस्तुति है। इस प्रस्तृति में सामाजिक तत्त्वों का समावेश अपने आप ही हो जाता है और वह सामाजिक जीवन के मानस व्यापार का प्रतिफल कहलाता है।साहित्य मानवीय संस्कृति का मूर्त रूप है। अपने अस्तित्व के आरंभिक क्षणों से लेकर आज तक मनुष्य और मानव-चेतना की विकास-यात्राओं से प्राप्त अनुभवों एवं उनके सत्यों में जो कुछ भी संरक्षण करने योग्य है-वह साहित्य है। किसी भी साहित्य की रचना का कोई न कोई आधार अवश्य होता है। साहित्य का प्रयोजन मानवीय जीवन को अर्थवत्ता प्रदान करना तथा मानव का हित करना है। जीवन पर आधृत होने के बावजूद यह रचनाकार की कल्पना पर आश्रित होता है। साहित्य के माध्यम से न केवल मनुष्य की ज्ञान प्राप्ति की इच्छा पूरी होती है, बल्कि यह मानव-जीवन को सरस, सुखी एवं सुंदर बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास भी है। साहित्य का उद्देश्य मानव-कल्याण है। मानव-कल्याण के इस स्वरूप में वैयक्तिक एवं सामाजिक, दोनों तत्त्वों के सामंजस्य का भाव निहित है। इस प्रकार साहित्य स्वांत सुखाय' और बहजन हिताय की पूर्ति करता है। साहित्य की मानवीय सार्थकता जीवन में आस्था रखते हुए विकास पथ पर निरंतर बढ़ते रहने में ही है। डॉ. श्याम सुंदरदास एक स्थान पर कहते हैं मनुष्य के भाव और विचार तथा उसकी कल्पनाएँ भी बड़ी विचित्र और अनोखी हुआ करती हैं। साहित्य मनुष्य की इन्हीं विचित्र भावों, विचारों तथा कल्पनाओं का व्यक्त रूप है। मनोविज्ञान मानव स्वभाव, -मानव व्यवहार का विश्लेषण करता है। साहित्य और मनोवैज्ञानिकता की आधारभूत सामग्री एक ही है। दोनों ही व्यक्ति को

SHISRRJ12033133 | Accepted : 01 Jan 2022 | Published : 16 Jan 2022 | January-February-2022 [5 (1) : 164-169]

समझने की चेष्टा में रत है। मनोवैज्ञानिकता का संबंध वास्तविक जीवन से है और साहित्य की अनुभूति जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति से होती है।

संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान किसी न किसी रूप में मानव व्यवहार से संबन्धित है। जन्म से ही मानव को सामजिकता का निर्वहन करना पड़ता है। इसके लिये उसे निरन्तर अपनी बुद्धि और ज्ञान का विकास करना पड़ता है। इस सतत प्रक्रिया के फलस्वरूप उसके व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन कब, कैसे, किस रूप में होता है? इसकी जानकारी मनोविज्ञान से मिलती है। मनोविज्ञान मानव मन का विशिष्ट विज्ञान है। मनोविज्ञान मन के भावों या मनोवेगों का समुच्च्य, मनोविकारों या अनुभूतियों का कोष है, इन्हीं भावों, अनुभूतियों, उद्वेगों की व्याख्या मनोविज्ञान में प्रस्तुत की जाती है। प्रारंभ से ही मानव मन की अपने और दूसरों के स्वभावों, गुणों, व्यवहारों, संबंधों, प्रयासों, सुख-दु:ख तथा अन्य अनुभवों में रूचि रही है। मानव स्वभाव से चितंतनशील, तर्कशील एवं जिज्ञासु प्राणी रहा है। अपने इसी स्वभाव के कारण वह आदिम युग से ही नवीन ज्ञान-विज्ञान को तलाशाता रहा है। जब मानव का ध्यान सर्वप्रथम जीवन और जगत् के रहस्य की ओर गया, तो उसने पहले जीवन और जगत् का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण एवं अवलोकन किया और फिर इसके अनेक रहस्यों का उद्घाटन किया। इसके अंतर्गत उसने आत्मा परमात्मा, मन, चेतना, ज्ञान, योग, समाधि जैसे अनेक स्वानुभूत तत्त्वों की खोज की उसकी इसी खोज ने दर्शन-शास्त्र को जन्म दिया। इसी दर्शन-शास्त्र के अंतर्गत जब उसने पहली बार स्वयं मानव जीवन से संबंधित कुछ क्रियाओं को लक्ष्य करके कुछ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, तो एक अलग शास्त्र का जन्म हुआ, जिसको कालांतर में मनोविज्ञान कहा गया। प्रारम्भिक विद्वानों ने मनोविज्ञान को अत्मा का विज्ञान व विचारों का विज्ञान कहा है।

व्यक्ति के व्यवहार पर सर्वप्रथम व सर्वाधिक प्रभाव उसके परिवार का ही पड़ता है सामान्यत: विक्षुब्ध एवं विघटित या असंतुलित परिवार का उसके सामान्य व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति ऐसे परिवार में भय, तनाव, विशाद, ऊब आदि मनोविकृतियों से ग्रसित हो जाता है, जिसके कारण वह लक्ष्यहीन दिशाहीन एवं असामाजिक होकर, अजनबीपन एवं एकाकीपन का जीवन व्यतीत करने को विवश हो जाता है। असामान्य-व्यवहार के प्रमुख उत्तरदायी कारणों में मद्यपानता भी एक प्रमुख कारण है। मद्यपानता से पीड़ित होकर व्यक्ति असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन करने लगता है। इसी प्रकार लैंगिक दुर्बलता, भाई-बहनों में प्रतिद्वंद्विता, कुसमायोजी या बुरे संगी साथी का संसर्ग और हिंसा एवं त्रासदी जैसे अनेक कारण ऐसे हैं, जो व्यक्ति के असामान्य-व्यवहार को विकसित करते हैं।

मनोविज्ञानशब्द अंग्रेजी के साइकोलाजी (Psychology)शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। साइकोलाजी (Psychology) शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों साइकी (Psyche)और लोगस (logos) से मिलकर बना है। Psyche+Logos. Psyche का अर्थ है 'आत्मा' (Soul) और Logos का अर्थ अध्ययन (Study) है। मनोविज्ञान का अर्थ पहले आत्मा से लिया जाता था, किन्तु बाद में आत्मा के स्थान पर आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने मन शब्द का प्रयोग किया। इसलिये मन के ज्ञान को मनोविज्ञान कहा जाने लगा। मनोविज्ञान के सिद्धांतो एवं मूल्यों का विकास करने का श्रेयिसगमंड फ्रायडको जाता है, जिन्होंने मनोविज्ञान को एक नयी दिशा प्रदान की एवं इसे उचित मार्ग की ओर प्रेषित किया। आधुनिक मनोविज्ञान का जनक विलियम वुण्ट(Father of modern psychology)को कहा जाता है। इन्होंने वर्ष 1879 में सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला का निर्माण किया था। सामान्यतः व्यक्तियों और पशु-पिक्षयों के व्यवहार एवं उनकी मानिसक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। अतः इनकी इस विशेषता से साफ हो जाता है कि इसका सीधा संबंध 'मित्तिष्क' से है। मानिसक क्रियाओं के अंतर्गत आने वाली समस्त प्रक्रिया जैसे–संवेदना, अवधान, प्रत्यक्षण, सीखना, स्मृित, चिंतन आदि इसके अध्ययन में सिम्मिलत की जाती है। मनोविज्ञान का चिन्तन–मनन करने के बाद मनोवैज्ञानिकों ने इसे निम्नलिखत रूप में परिभाषित किया है–

बोरिंग, लैंफेल्ड व वेल्ड:- "मनोविज्ञान, मानव प्रकृति का अध्ययन है।"1

स्किनर:- "मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।"2

वुडवर्थ:- "मनोविज्ञान वातावरण के संबंध में व्यक्तियों की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"3

वृहत् हिन्दी कोश के अनुसार:- "मनोविज्ञान मन की प्राकृत, वृत्तियों आदि का विवेचन करने वाला विज्ञान अथवा मानस शास्त्र है।"⁴

मानक हिन्दी कोश के अनुसार:- "मनोविज्ञान वह विज्ञान या शास्त्र है, जिसमें मनुष्य के मन, उसकी विभिन्न अवस्थाओं तथा क्रियाओं, उस पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन तथा विवेचन होता है।"⁵

डॉ. नगेन्द्र:- "मनोविज्ञान के अन्तर्गत मस्तिष्क की विविध क्रियाओं एवं शक्तियों का तथा मानव समाज स्वभाव एवं कार्यों की मूल प्रवृत्तियों एवं प्रेरणाओं का अध्ययन किया जाता है।"

'मनोविश्लेषण' शब्द अंग्रेजी के साइकोएनैलसिस (Psychoanalysis) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। मनोविश्लेषण का सामान्य अर्थ है- मन का विविध स्तरों पर विश्लेषण करना। मनोविश्लेषणवाद के जनक सिंग्डम फ्रायड मन की तीन अवस्थाएं मानते हैं- चेतन, अवचेतन (अर्द्धचेतन) तथा अचेतन।जहां चेतन का संबंध वर्तमान और वास्तविकता से होता है वहीं अवचेतन न ही पूर्णत: चेतन होता है और न ही पूर्णत: अचेतन। इसमें वे सभी भाव, विचार एवं इच्छाएं रहती हैं, जो हमारे चेतन या अनुभव में नहीं, लेकिन थोड़े से प्रयास के बाद हमारे चेतन मन में लौट आती हैं। अचेतन मन का वह भाग होता है, जिसमें भाव, विचार या इच्छाएं कभी स्पष्ट व सीधे मार्ग से चेतन में नहीं आती, अपितु वे स्वप्न, सम्मोहन, मनोविकृतियों आदि के रूप में पहुंचती है, जो व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं। अचेतन के भाव, विचार एवं इच्छाएं अधिकांशत: कामुक, असामाजिक, अनैतिक तथा घृणित होती हैं। फ्रायड का मानना है कि चेतन व अवचेतन की अपेक्षा हमारे व्यवहार पर सर्वाधिक प्रभाव अचेतन मन की अनुभूतियों एवं विचारों का ही पड़ता है इसलिये आकार की दृष्टि से अचेतन मन का सबसे बड़ा भाग है। फ्रायड के बाद एडलर तथा युंग मनोविश्लेषकों ने भी अचेतन मन पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। एडलर चेतन तथा अचेतन में कोई भेद नहीं मानते। वे व्यक्तित्व के विकास में दोनों को सहायक मानते हैं वहीं सी. जी. युगं चेतन और अचेतन की सत्ता तो स्वीकार करते हैं, किन्तु भिन्न रूप में युंग अचेतन का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए, इसके दो भाग स्वीकर करते हैं- पहला 'व्यक्तिगत अचेतन' और दूसरा 'सामूहिक अचेतन'। व्यक्तिगत अचेतन फ्रायड के अचेतन के समान है, जिसमें व्यक्तिगत कुंठित एवं दिमत इच्छाएं रहती हैं। सामूहिक अचेतन या जातीय अचेतन का संबंध व्यक्ति के संस्कारों तथा जातीय स्मृतियों के कल्पित भण्डार से है। मनोविश्लेषण को फ्रायड परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "मनोविश्लेषण ऐसी मानसिक प्रक्रियाओं के अनुसंधान की एक प्रणाली का नाम है, जो अन्य विधियों की पहुंच से परे है, इसके अतिरिक्त वह मानसिक उपचार की एक विधि और इन दिशाओं से उपलब्ध मनोवैज्ञानिक वस्तुज्ञान के ऐसे संग्रह का नाम भी है, जो क्रमश: एक नयी मनोवैज्ञानिक पद्धति से संचित होता जा रहा है।"7 फ्रायड मनोविश्लेषण को मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का एक शास्त्र एवं मनोरोगों के उपचार की एक पद्धति माना है। प्रसिद्ध मनोवौज्ञानिक जैस्ट्रो मनोविश्लेषण को परिभाषित करते हुए कहते हैं-"मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का वह अंश है, जिसका लक्ष्य मानसिक शक्ति के उद्गम और वितरण का अध्ययन करता है।"8 वहीं प्रमुख साहित्यकार धीरेन्द्र वर्मा भी मनोविश्लेषण को एक चिकित्सा पद्धति मानते हैं। उनका मानना है कि "यह अपने प्रमुख एवं प्रारम्भिक रूप के मानसिक और स्नायविक रोगों की चिकित्सा की विशेष विधि है, जिसके आस- पास मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का संघटन होता है।"9 उपर्युक्त कथनों के आधार पर कहा जा सकता है कि मनोविश्लेषण मूल रूप में मनोविज्ञान की ही एक प्रमुख शाखा है। इसमें मानव मन, इच्छाओं, कामनाओं, स्नायुविकृतियों एवं असामान्य व्यवहार का विविध स्तरों पर विश्लेषण किया जाता है और मानसिक व्याधियों का उपचार किया जाता है। वर्तमान संदर्भ में मनोविश्लेषण को 'चिकित्सा मनोविज्ञान' भी कहा जाता है।

मनोविश्लेषण की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसमें मनोरोगियों के संबंध में चिरकाल से चली आ रही असंगत धारणाओं, मान्यताओं एवं भ्रमों को तोड़ने का भी काम किया है। मनोविश्लेषण से पूर्व मनोरोगों को प्रेतात्मा के प्रभाव का परिणाम माना जाता था। इस प्रेतात्मा से छुटकारा दिलाने के लिए मनोरोगी को अनेक प्रकार के कष्ट व यातनाएँ दी जाती थी और उसके साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता था। मनोविश्लेषण ने इन मनोरोगों की पहचान की और इनका निदान खोजा। मनोविश्लेषण ने ऐसे मानिसक रोगियों के प्रति अपनी पूर्ण सहानुभूति का परिचय दिया और मनोविश्लेषण विधि से उनकी चिकित्सा करके, उन्हें सामान्य जीवन जीने के अवसर प्रदान किए। अत: मनोविश्लेषण की इस अपार सफलता के कारण ही आज यह संपूर्ण मनोविज्ञान का पर्याय बनता जा रहा है।

साहित्य और मनोविज्ञान का अन्योन्याश्रित संबंध रहा है। मनोविज्ञान सदैव किसी न किसी रूप में साहित्य के साथ गतिमान रहा है। साहित्य और मनोविज्ञान दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्य और मनोविज्ञान व्यक्ति की बौद्धिक सिष्ट है। साहित्य की प्रत्येक घटना या क्रिया- व्यापार बाह्य जगतु में न घटित होकर, साहित्यकार एवं पाठक के मानसिक जगत् में घटित होती है। अत: साहित्य सूजन और उसका आस्वादन दोनों ही मनोवैज्ञानिक अनुभूतियां हैं। डॉ.रामकुमार वर्मा साहित्य और मनोविज्ञान के इसी अंत:संबंध को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "मानव मन मनोविज्ञान का विश्लेष्य है। यही मन भावों या मनोवेगों का आश्रय, मनोविकारों का स्रोत एवं अनुभूतियों का कोष है। साहित्य इन्हीं मनोविकरों और अनुभूतियों की (रोचक) कथा है।"10 मन मानव की इच्छाओं या कामनाओं का उद्गम स्थल है। इसी मन का अध्ययन एवं विश्लेषण मनोविज्ञान करता है। मन में अच्छी और बुरी दोनों ही वृत्तियां मिलती हैं। संसार की जितनी भी अनिष्टकारी, अमंगलकारी, षड्यन्त्रकारी एवं विनाशकरी वृत्तियां मिलती हैं, वे सब मन की ही उपज है। यही मन सब समस्याओं का उदम स्थल है। इन्हीं समस्याओं एवं वृत्तियों का चित्रण साहित्य में किया जाता है। अत: साहित्य और मनोविज्ञान का प्रयोजन एक ही है- वह है, मानव जीवन को अधिकाधिक सरल, सहज व सुन्दर बनाना। मानव- जीवन को संचालित एवं जीवन्त शक्ति प्रदान करने वाला यही मानव- मन अपरिमित कामनाओं, इच्छाओं, आकाक्षाओं, भावनाओं, संवेदनाओं आदि विषय- वासनाओं का कोष होता है। इन्हीं विषय-वासनाओं की तृप्ति एवं शमन के लिये व्यक्ति आजीवन संघर्षरत है। उसका यह संघर्ष मानसिक स्तर से प्रारम्भ होता हुआ, सामाजिक स्तर तक पहुंच जाता है। इस संघर्ष में वह इतना थक, टूट एवं बिखर जाता है कि वह अनेक मनोव्याधियों से घिर जाता है। तदन्तर वह रुग्ण जीवन जीने के लिये अभिशप्त हो जाता है। उसकी इन्हीं मनोव्याधियों को जानने- समझने व उनके उनके उपचार के लिये मनोविश्लेषण की आवश्यकता पडती है। यह मनोविश्लेषण, मनोविज्ञान का ही एक संप्रदाय या उसकी एक चिकित्सा-पद्धति है। अत: जहां साहित्य मानव जीवन और उसके भावों और विचारों को चित्रित करता है वहां मनोविज्ञान उन भावों और विचारों का शास्त्रीय अध्ययन करता है। साहित्य में पात्रों का संघर्षों का वर्णन है तो मनोविज्ञान उन संघर्षों के मूल कारणों को व्यक्त कर देता है। इसी प्रकार पात्रों के आचरण संबंधी असंगतियों का स्पष्टीकरण भी हमें मनोविज्ञान से प्राप्त होता है।

साहित्य में मनोविज्ञान को दो रूपों में देख सकते हैं। पहला, वे रचनाएं जो मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को आधार बनाकर लिखी जाती हैं अथवा मनोवैज्ञानिक तत्त्व समाहित होते हैं। ऐसी रचनाओं के अध्ययन का विषय मनोविश्लेषणात्मक होता है। उदाहरण के लिये अज्ञेय की कविताएं इत्यादि। दूसरा, ऐसी रचानएं जिसमें मनोविज्ञान के तत्त्व अप्रत्यक्ष रूप में होते हैं। रचनाकार को रचना करने अथवा लिखने के लिए प्रेरित करने वाली प्रक्रिया का संबंध किसी न किसी रूप से मनोविज्ञान से है। वे रचनाएं चाहे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मार्क्सवादी, भाषिक अथवा अस्मितामूलक विमर्शों आदि से संबंधित क्यों न हों , अपितु उनका अप्रत्यक्ष रूप से संबंध मनोविज्ञान से होता ही है।

आधुनिक हिंदी साहित्य को मनोविश्लेषणवाद ने पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। साहित्य का संबंध मानव मन से प्रगाढ़ रूप में है।अत: साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत चरित्र-चित्रण पर आधुनिक मनोविज्ञान एवं मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है, क्योंकि आधुनिक काल में फ्रायड ने मनोविज्ञान को अचेतन मन की भूमिका पर कामवासना(लिबिडो) नामक ग्रंथियों के विश्लेषण द्वारा मनोविज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया है। फ्रायड के अनुसार -"चाहे प्रभाव की मात्रा से या उत्तेजना के योग से अलग करके ही इसे समझा जा सकता है, जिसमें मात्रा के सभी लक्षण विद्यमान हैं। भले ही उसे नापने का कोई साधन हमारे पास न हो, लेकिन ऐसा कुछ है, जो सहज घट-बढ़ सकता है या स्थानांतरित निर्धारित हो सकता है तथा किसी भी विचार बिंब के स्मृति अवशेषों पर उसी प्रकार फैल सकता है, जिस प्रकार विद्युत शक्ति किसी पदार्थ की सतह पर फैलती है।"11 फ्रायड के अतिरिक्त एडलर और युंग ने भी अपने मनोविज्ञान के सिद्धांतों का विवेचन करते हुए साहित्य को प्रभावित किया है। एडलर ने हीनता तथा मैकहम ने मनोविज्ञान जिजीविषा पर जोर देते हुए यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक व्यक्ति जीने की प्रबल इच्छा रखता है। इसलिए उसमें एक ऐसी शक्ति विद्यमान रहती है, जो उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, लेकिन युंग का मानना है कि जब मनुष्य की स्मृतियां मानसिक कार्य व्यापार कि चेतन मन में एकत्रित नहीं रख पाती और वे अचेतन मन में चली जाती है। अचेतन मन में रहने से दिमत रहने वाली अनुभूतियां एवं विचार अहं को स्वीकार्य नहीं हो पाते, परिणामत: यहां भय, आशंका, मृत्यु जैसी स्थितियां उत्पन्न हो जाती है, जिससे मनुष्य का जीवन प्रभावित होता है। पाश्चात्य विद्वानों में विश्लेषण की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलती है। वर्जीनिया वूल्फ, जेम्स ज्वारस, डी.एच. लॉरेंस, कोनार्ड जैसे उपन्यासकारों ने फ्रायड, युंग, एडलर के सिद्धांतों को अपनाते हुए मनोविश्लेषण का समावेश किया है। भारतीय कथा साहित्य में सर्वप्रथम बांग्ला कथाकारों में मनोविश्लेषण दिखाई देता है। बंकिमचंद्र के 'विष वक्ष', रविंद्रनाथ टैगोर के 'चोखेरबाली' में कलात्मक मार्मिकता के साथ मनोविश्लेषण का आश्रय ग्रहण किया है। हिंदी साहित्य में मनोवैज्ञानिक कथा साहित्य का उद्देश्य उन कथा साहित्य से है, जिनमें मनोविश्लेषण और आधुनिक मनोविज्ञान का प्रभाव दिखाई पड़ता है। मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है और साहित्यकार मानव व्यवहार का विश्लेषण करता है। हिन्दी के कथाकार यथा इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र एवं अज्ञेय में ऐसे पात्रों का सुजन किया है जो फ्रायड, युंग एवं अल्फ्रेड एडलर के सिद्धान्तों से परिचालित होते हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, सुखदा, व्यतीत तथा जयवर्धन आदि प्रमुख हैं। इन उपन्यासों में नारी की पीड़ा तथा मानव की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति तथा भारतीय दर्शन के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया है। इलाचंद जोशी का जहाज का पंछी तथा संन्यासी इत्यादि उपन्यासों ने भी अभृतपूर्व लोकप्रियता अर्जित की है। अज्ञेय द्वारा लिखित प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी' में नायक के अन्तराल की पीड़ा का सन्दर चित्रण पाठकों के सामने प्रस्तृत किया है। इन सभी उपन्यासों में नारी पुरुष पात्रों के अतरंग संबंधों, नारी की पीड़ा, सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ने का भय, निराशा, कुण्ठा, आन्तरिक द्वन्द का सुन्दर अंकन किया गया है। महत्वाकांक्षा की पूर्ति न होने पर हीनभावना, निराशा जनित पीडा तथा फलस्वरूप आक्रामक व्यवहार का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया गया है। इन उपन्यासों के पात्र कभी स्वयं पीड़ित होते हैं कभी दूसरों को पीड़ित करते हैं। ये सभी पात्र स्वयं का स्वयं से साक्षात्कार करते हुए दिखते हैं।

अन्ततः कहा जा सकता है कि साहित्य एवं मनोविज्ञान का संबंध बहुत गहरा है। ये एक दूसरे के साध्य एवं साधन बन गये हैं। साहित्य का अस्तित्व मनोविज्ञान के बिना संभव नहीं हो सकता, किन्तु मनोविज्ञान का अस्तित्व साहित्य के बिना भी हो सकता है। हिन्दी साहित्य में मनोविज्ञान दो रूपों में हमारे सामने उभरकर आता है। पहला, वे रचनाएं जिसमें प्रत्यक्ष रूप से मनोवैज्ञानिकता के तत्त्व दिखायी देते हैं। दूसरा स्वरूप उन रचनाओं का है, जिसमें मनोवैज्ञानिक तत्त्व अप्रत्यक्ष रूप से समाहित है।

-: सन्दर्भ सूची :-

- 1. शिक्षा मनोविज्ञान, के. पी. पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ. संख्या 6, वर्ष 2009
- 2. शिक्षा मनोविज्ञान, के. पी. पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ. संख्या 28, वर्ष 2009
- 3. शिक्षा मनोविज्ञान, के. पी. पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृष्ठ. संख्या 6, वर्ष 2009
- 4. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, अरुण कुमार सिंह(मोतीलाल बनारसीदास), नयी दिल्ली, पृष्ठ. संख्या 17, वर्ष 2002
- 5. शिक्षा मनोविज्ञान, एस. के. मंगल, पी. एच. आर्ट. लर्निंग प्रा. लि. नयी दिल्ली, पृष्ठ.संख्या 6, वर्ष 1990
- 6. शिक्षा मनोविज्ञान, एस. के. मंगल, पी. एच. आर्ट. लर्निंग प्रा. लि. नयी दिल्ली, पृष्ठ. संख्या 6, वर्ष 1990
- 7. कलेक्टेड पेपर्स, फ्रायड, पांचवां भाग, पृ.सं.107, उद्धत आधुनिक मनोविज्ञान और हिन्दी साहित्य, पृ.सं. 64
- 8. Freud: His Dream and Sex thoereis , Jastrow J., P. No. 50, Year 1950, उद्धृत- हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास, डॉ. मफतलाल पटेल, पृ.सं. 27
- 9. हिन्दी साहित्य कोश (भाग -1), सं. धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं. 475
- 10. साहित्य शास्त्र, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ.सं. 10
- 11. अज्ञेय एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ. ज्वालाप्रसाद खेतान, पृ.सं. 91



Indian Economic Planning

Dr. Kamal Singh

Assistant professor, Department of Economics, Nehru Memorial Shiv Narayan Dass P.G. College Budaun, U.P., India

ABSTRACT - India is a sizable nation with numerous issues that its people must deal with. The country was completely impoverished as a result of the British Empire's nearly 200-year reign and resource exploitation. Except for "independence," there was nothing to be glad or proud of when the British left India in 1947. Before the Indian government, there were numerous challenges. There were issues with food inflation and scarcity in addition to severe poverty. Other significant issues affecting the nation included illiteracy, a lack of access to healthcare, a lack of infrastructure, etc. as an extended strategy. The solution to these issues was to "plan" for economic development.

Keywords: Economic Planning, Labour Forces, Unemployment, Liberalization, Privatization, Globalization, Industrialization

The process of economic planning includes following –

- (i) Compiling a list of the problems the economy is now experiencing.
- (ii) Reordering list according to priority. Number one should be the most urgent issue that needs to be addressed right away, and so forth.
- (iii) The following stage is to determine which issues need to be resolved right away and which ones need to be dealt with over long term.
- (iv) Setting a goal to accomplish intended objective. The deadline by which the issue must be resolved could serve as the aim. How much of the issue will be resolved in the initial time frame (For example, 6 months or a year) must be made clear & so on, if issue is to be resolved over the long term. Second, the goal can be to reach a specific amount. The government may set a quantity objective, for example, in the case of production.
- (v) Making an estimate of the resources required to reach the goal. Resources include money, people, and physical things, among others.
- (vi) Another crucial step is gathering the resources. To arrange the necessary resources, the planners must be aware of the sources. For instance, if the strategy requires finance, the planners must create a budget and include all available funding options. When the government creates plans, tax money is one of its main sources of funding. A bank loan is one of the sources of funding for business owners.

When there are multiple sources of funding, the amount of money that will be acquired from all of these sources must also be determined by the planner.

Another crucial responsibility for carrying out the suggestion for the strategy is the use of human resources. The task's planner must make an estimate of the sort of labour and personnel needed to complete it. This requirement should be well estimated at the onset. Physical resources should also be properly estimated and given. Physical resources include things like offices, cars, furniture, and office supplies.

(vii) Following the organisation of the resources, the implementation and execution process begins in a planned manner in order to accomplish the intended result. Periodic reviews must be conducted until the desired outcome is realised to ensure that everything is going according to plan, to correct any errors that may have occurred, or to adapt the working style to account for any changes.

India created a five-year planning strategy to handle its many socioeconomic issues. The issues facing the Indian economy at the time of independence have already been discussed. In case you forgot, these problems include pervasive inequality and poverty ineffective food storage and agricultural output, a lack of infrastructure and industrial development, etc. Since it will take time to address these problems, the Indian government created a five-year plan, starting the first year plan in 1951–1952. Making a list of significant issues that needed to be resolved while taking into account the available resources and the ability to organise those resources was the goal. After five years, conduct an assessment of what has been accomplished and, as necessary, make corrections in the following five-year plan term.

The great Indian planners P.C. Mahalonobis, Jawaharlal Nehru, V.K.R.V. Rao & V.R. Gadgil are only a few of them. In 1950, Nehru, who had just been elected India's first prime minister, created Planning Commission, which had main responsibility was to make plans while taking the nation's resources into consideration and offering the best strategies for their efficient and balanced use. The first five-year plan (FYP) was created by the planning commission for the years 1951–1956. India had previously undergone more than 60 years of planning by 2014, with the completion of the eleventh and ongoing implementation of the twelfth five-year plans (FYP).

The many goals of economic planning in India are created with consideration for its socioeconomic issues. Consequently, the following goals:

- 1. Economic growth
- 2. More people are employed
- 3. Reducing Income Inequality
- 4. A decrease in poverty
- 5. Economic modernization
- 6. Ensuring equality and social justice.

Let's go over each of these goals individually.

1. Economic Growth: To achieve economic growth, there must be a specific rate of annual growth in per capita income & real national income. Real national income is the amount of money measured at a certain price or at a fixed price. Income per capita is the term used to describe the average annual income of the population. Both per capita income and national income are said to need to increase in real terms in order to

improve each individual's/and household's society's overall quality of life. Since income is a measure of purchasing power, an increase in income will boost people's and the nation's purchasing power. People can purchase more goods and services to fulfil their needs when their purchasing power grows. The entire nation may pay for its imports, or purchases made overseas. A rise in real income also indicates that output has increased in both quality and quantity. Here, output encompasses output from several economic sectors, including agriculture, industry, and services, in order to meet the demands of India's expanding population. A rise in output must be attained annually. The economy must invest more money to build infrastructure and capital stock in order to raise output rates. Infrastructure consists of building projects, roads, railways, ports, airports, and telecommunications systems, among other things. Plant, machinery, banking, insurance, and other capital assets are included. Investment in each of these areas is important to produce real earnings growth in the economy is what the nation's planners aim for in every five-year plan while taking population growth, demand for goods and services, etc. into consideration.

- 2. More people are employed: Employment is the term used to describe the participation of the working population engaged in economic activity that is profitable, such producing services and goods. As a result of the employment of production components that households supply, income is produced through the production process. You are aware that the four main production components are labour, land, business/entrepreneurship & capital. The households in the nation own these components. Since factors are limited resources that are required to generate services & goods, it is essential for government to establish possibilities for their efficient utilisation. The quantity of the factor resources that a country has affects how much it can produce. If these production factors are employed, the necessary amount of output can be produced. The output's worth can then be divided among the constituent parts as revenue in form of interest of capital owners, wages for labour, rent to property owners of land & buildings & profit of business owner. The requisite level of output and consequently money cannot be produced if the nation is unable to develop jobs available to profitably use the factor of production. Consider nation's labour supply as an example. You are aware that the country's population produces labourers between the ages of 15 and 59. Individuals working in the workforce as a percentage are growing annually as a result of population growth. Most of them have degrees as well. They will continue to be unemployed and underutilised if there are insufficient opportunities for employment. In truth, India has a terrible unemployment crisis. In addition to increasing consumption without increasing output, unemployment also contributes to a number of societal issues, including crime, poverty, and other issues. Therefore, the Indian economy's strategists made the creation of jobs a key goal of their five-year plans.
- **3. Reducing Income Inequality:** The people of India come from a variety of economic backgrounds. This implies that India lacks homogeneity with regard to income. While a huge portion of "India's population" is classified as poor and belongs to a lower income category, a small number of people are extremely wealthy and have high levels of income. Women, regardless of caste or religion, are the most severely impacted in terms of living standards, which is a big societal problem. Similar to how they are at the base of the development pyramid, members of scheduled castes and tribes are considered to be marginalised within Indian society. The uneven distribution of assets, like holding of moveable & immovable property through inheritance, per capita land ownership, etc., is one of the main causes of income inequality. The majority of

people in India are farmers and live in rural areas. But only a small percentage is large landowners, and the bulk is small or marginal farmers and agricultural labourers. Because they do not possess land on which to grow, agricultural labourers are defined as people who travel from moving from one place to another in search of work paying a weekly or daily income. Their lack of literacy and ability to organise themselves has made their position worse. Due to their low income, the next generation does not have anything to start with. In contrast, landlords receive higher returns from their properties and the property is passed down to subsequent generations due to the existence of the law of inheritance. Due to ownership and absence of private property, respectively, the rich stay rich and the poor stay poor in the nation. This inequality has a serious negative impact on India. Lack of purchasing power among the poor prevents them from supporting the market, whereas excessive purchasing power among the wealthy has led to a rise in wasteful consumerism. Inequality is the primary cause of the majority of social ills. As a result, our planners sought to lessen economic inequality through planning.

- **4.** A decrease in poverty: It is another important planning goal in India. More than 50% of Indians were living in poverty at the time of the country's independence. According to government forecasts, between 27 and 28 percent of Indians will be living in poverty by 2014. In the lesson on poverty and employment, you will learn about how poverty is measured in India. For the time being, let's limit our definition of poverty to the circumstance in which a person cannot meet even the most basic requirements for survival. Many citizens of the nation do not even receive a square meal each day. One of the main causes of poverty is a lack of job. Uneven national wealth and income distribution contributes to it. Poverty is referred to as a "curse on human dignity," & it has significantly damaged India's reputation abroad. India is not taken seriously by developed nations because it cannot end poverty. To entirely eradicate poverty from the nation is sound planning.
- **5. Economic modernization**: Foreign powers have continuously exploited India, among them were the Mughals, who governed for more than 2 centuries, as well as the British, who maintained power for another 2 centuries. The British particularly left the country in a state of acute underdevelopment and poverty when they handed over sovereignty to the Indian government in 1947. Due to historical factors, the Indian economy was unable to progress beyond its current state of operation. It continued to have a rural economy and a lagging industrial sector. Modern technology and technological advancement did not advance. One of the main causes of the Indian economy's poor industrial development and low agricultural production is a lack of contemporary technologies. Due to an underdeveloped industrial and service sector, it was a significant contributor to India's GDP during the independence period and for a long time following. Along with the population's lack of increased skill development & education, agriculture has continued to be favourably favoured in the occupational structure. As a result, improving human resource quality, extending the service sector & growing industries, are all important to changing the structure of India's GDP and reversing this trend. The economy can be modernised to achieve this.
- **6. Ensuring equality and social justice:** Socialistic societal patterns were another goal of Indian planning. By guaranteeing social fairness and equity for its populace, it can be accomplished. In actuality, achieving social justice requires achieving all of the aforementioned goals. To maintain social justice as well as a fair distribution of income, reforms must be implemented in a number of sectors by tearing down long-standing structures that have aggravated inequality and poverty prevented the development of the industrial as well as

service sectors, or caused low agricultural productivity. Therefore, the planners had the idea to implement changes to economic and agricultural policy in order to promote development and a fair distribution of its benefits.

The definition of planning as it is used here provides a significant portion of the answer to the question of whether planning is necessary. There, we stated that planning necessitates a number of actions for successful implementation and execution. In truth, there are a lot of issues with the Indian economy. Each issue is intricate in nature and cannot be resolved quickly. Consider the issue of poverty as an illustration. There isn't a procedure that can solve this problem right now. To determine the amount of people who are poor and the reasons why they are poor, the government must gather statistics. The collection of data is an extremely difficult task in and of itself, especially given the size of India's territory and the difficulty of accessing many places. Governments are essential to create policies in democracies, following thorough deliberation & discussion, which takes time. Then, the two most crucial steps in resolving the poverty issue are the mobilisation of sufficient resources and the availability of resources to sustain the programme over an extended period. It cannot be accomplished without careful planning. Planning is also required to save costs, meet deadlines, and make the most use of available resources.

Strategy is the appropriate course of action, procedure, or formula being used to reach the planned goal. No specific strategy was adopted during the 1951–1956 first plan period, but the Indian government did place a greater emphasis on agriculture because the majority of the country's population relies on agriculture and because there was a pressing need for a sufficient supply of food grains to alleviate the food deficit. The initial five year plans met with great success since it allowed India to embrace a long-term planning strategy because the desired growth rate was attained. Accordingly, the second plan era (1956–1961) specifically outlined the development approach. The plan was to put more of an emphasis on two things: industrialization and heavy industries inside it.

The nation's industrialization agenda was chosen by Indian strategists as a whole and the establishment of heavy and basic industries in particular to address the problems related to unemployment, poverty, self-reliance, economic development, etc. The following are justifications put up in favour of heavy industry strategy & industrialization:

- 1. Given that there is only a limited quantity of land accessible for farming, India's population is overly dependent on agriculture, which results in overcrowding in rural areas, fragmentation of land holdings, pressure on the land, unemployment & underemployment. As population increases, the amount of land available per person decreases or disappears entirely. This has had a negative impact on agricultural production in the long run by causing inequalities in the distribution of land. The only way to divert the extra labour from agriculture to other industries and relieve the strain on the environment is through industrialization.
- 2. Industrial rather than agricultural operations offer more employment chances. Therefore, industrialization will aid in providing jobs for the nation's unemployed.
- 3. Industrialization is essential to the expansion of agriculture. Agriculture provides the raw materials for industries, and the sector needs industrial machinery and equipment including pump sets, tractors, power, etc.

- 4. The development of heavy and basic industries must be prioritised. Aluminium, iron & steel, heavy electrical, heavy chemicals & other sectors are examples of basic and heavy businesses. These sectors produce capital goods. Such businesses are essential to every economy because they process the apparatus and equipment required to develop other sectors that may generate consumer items to satiate consumer demand. Therefore, heavy industries form the basis of the economy. It is important to note that Indian government established the public sector to construct and administer such industries after adopting the heavy industry policy. The Bharat Aluminium Company (BALCO), National Aluminium Company (NALCO), Steel Authority of India Limited (SAIL) & Bharat Heavy Electrical Limited (BHEL are a few examples.
- 5. The expansion of micro, small, & medium-sized firms has received significant attention from the Indian government in addition to the development of heavy & basic industries. These sectors can be started by private individuals and are determined based on the maximum investment. These industries have the following benefits: they encourage self-employment while also creating new jobs; they make use of local resources; they lessen income disparity because they can be held by private individuals; etc.

As was already said, the public sector owned and managed the heavy industry strategy's implementation. Budgetary allowances were granted by the government for the public sector to develop enterprises and build infrastructure. Over three decades were spent on the procedure. However, a government-run assessment of the public sector's performance revealed that, with a few exceptions, more than half of the units have been losing money. Gross mismanagement and labour issues plagued the public sector organisations. Finding all these shortcomings in the public sector came as a huge shock to the government. One of the main causes of the nation's lack of overall progress in the areas of industrialization, the eradication of poverty and unemployment, etc. was deemed to be the public sector's failure on a number of fronts. As a result, the central government released a new economic policy resolution in 1991. This policy's key characteristics are: Liberalization, Privatization & Globalization. It is also known as the LPG model of development.

The Purpose and Benefits of Liberalization- Liberalization entails the government's removal of restrictions on the formation and operation of industries in the nation. Even though they were referred to as autonomous agencies, all public sector organisations remained virtually under the government until 1991. The government's ministries frequently interfered with how the public sector operated. It led to politilization, a decline in professionalism, and inefficiency as a result. By ratifying an agreement in writing, the government decided to resolve this issue by putting an end to political interference in the management of the public sector organisations. In accordance with this, management in the public sector will have autonomy but also be held accountable.

Eliminating the licencing system is a crucial aspect of liberalisation. Before, any private person or group had to request authorization from the government before beginning any industrial operation. Prior to the applicable government department's door, there was a lengthy line and a frenzied rush to obtain a licence. Delays in obtaining a licence gradually increased under this method. Government employees began accepting bribes to have their files cleared. Such dishonest actions damaged the government's reputation. In order to let people who were interested to start their industrialization with no permission, the government agreed to abolish the licencing system in 1991. Only strategic enterprises like those in healthcare & defence, however, still need permission.

The Purpose and Necessity of Privatization- Privatization entails letting the private sector participate in industrial operations that were previously only available to the public sector, with the exception of nuclear defence and terrorism. There was no room for competition because the heavy and fundamental sectors were wholly governed by the governmental sector. Due to a lack of other businesses' rivalry, the quality of the goods and services declined. The main losers as a result were the consumers who did not receive high-quality products and who also had subpar shipping and other services. Therefore, the government made the decision to encourage and permit private sector participation into previously public sector-only domains. As a result, the private sector entered industries including civil aviation and telecommunication. The government also made the decision to sell a portion of the assets of some public sector firms.

The Purpose and Necessity of Globalization- Globalization is a process in which nations around the world work to promote free trade in commodities, labour, services, investments, technology, etc. India is a participant in the World Trade Body (WTO), the central organisation for advancing globalisation. To foster competition, India's industrial policy softened its stance toward foreign corporations doing business there in 1991. Additionally, it pledged to eliminating or lowering tariffs on the import of goods. India, on the other hand, also implemented policies to encourage exports. In order to allow international firms to collaborate with Indian firms freely and as owners, the government also permitted them to hold 51 percent or more of the total shares. Additionally, this will make it easier to introduce cutting-edge technology to India.

In 1951, India's economic planning process was launched- As was previously said, economic planning has specific goals, such as achieving economic growth as measured by a rise in the per capita & real national income, eliminating income inequality, increasing the level of employment, eradicating poverty, and ensuring social and economic fairness. India had been planning for 63 years by 2014, when the 12th plan period began. Understanding planning's outcomes while keeping its objectives in mind is essential. Let's talk about them.

1. Progress on Economic Growth- Economic expansion was one of planning's primary goals. In order to accomplish growth, it is required to raise per capita income, national income, as well as agricultural and industrial sector production. A comparison of many plans reveals that the first five-year plan was successful since it exceeded its aim of 2.1 percent national income growth by achieving a growth rate of 3.6%. With the exception of the sixth & fifth plans, the other plan periods, from the 2 to the 11 five-year plans, did not allow for the achievement of the desired growth rate in the national income.

Similar to this, although the rate of growth has been extremely modest, per capita income has increased. As an illustration, the annual rise in per capita income was quite low at 1.2% throughout the first 30 years of planning. This growth rate has somewhat accelerated recently. Agriculture-wise, 51 million tonnes were produced at the beginning of the first phase, and 257,4 million tonnes were produced in 2011–12. The yield of other crops such as pulses and oil seeds, however, has lagged behind that of rice & wheat.

The diversification of Indian industry has been a significant achievement in terms of industrial development. Transport and communications have grown, as have electricity production and distribution, and there has been significant advancement in the production of steel, aluminium, engineering items, chemicals, fertilisers, and petroleum products.

The per-person accessibility to consumer goods as well as other resources necessities has significantly grown during the planning period. Cereals, sugar, milk, eggs, edible oil, tea, clothing, and power are some of the products worth mentioning.

- **2. Development of Infrastructure-** India has made significant progress when it comes to building infrastructure. Road and railroad networks have undergone significant expansion. Domestic aviation travel has considerably increased. Increased irrigation and hydroelectric project development has increased agricultural output. Due to a rise in urban infrastructure, the number of towns and cities has grown. The internet and mobile telephone have both greatly increased the communication network.
- **3. Change in Education** The advancement of education in India has been one of planning's most notable successes. The number of students enrolled in schools has significantly increased. In India, there are 18 064 colleges and 378 universities, which is a positive trend for higher education. There are 10.43 million primary and upper primary schools and 1.52 lakh higher secondary institutions in India.
- **4. Science and technology development-** The advancement of science and technology, including the rise of the technical and skilled labour force, is another noteworthy accomplishment. The developed nations have taken note of India's advancements in space exploration. Additionally, it has had an effect on nuclear energy. India's reliance on outside specialists for advice has decreased today. On the other hand, it may now dispatch technical experts to a large number of foreign nations in the Africa, Middle East, etc.
- **5. Increased Foreign Trade** India's reliance on the import of capital goods has paid off as a result of the nation's industrialization. Many goods that were previously imported are now manufactured domestically. India is now able to export manufactured and engineering items as a result of its industrial development. In addition to the accomplishments already mentioned, there are still numerous tasks that India's planning has not fully completed.
- 1. The failure to totally eradicate poverty and inequality- India has attempted to end poverty for more than 60 years, but has not been totally successful. Official estimates place the number of people living in absolute poverty at about 240 million. Rural areas experience worsening conditions. Many anti-poverty initiatives have been launched by the government. However, they have not had much success thus far.

 Similar improvements in the distribution of income and asset ownership have not been made, leading to
- inequality. When compared to the population of landowners, the number of agricultural labourers without a licence is relatively large. Some large industrial houses have benefited from the industrialization process. As a result, economic power and wealth have been concentrated in a select few. If India intends to attain fairness and social justice, this trend must be reversed.
- **2. The Unemployment Issue Is Still an Issue:** India's employment situation has not significantly improved despite increases in revenue and output. The issue has gotten worse as a result of the population and labour force growing more quickly. The official estimates for India's jobless rate put it at 6.6%. Due to the failure to create the necessary number of new jobs each year, there is also a sizable backlog of unemployed people.
- **3. Failure to stop the flow of black money and corruption:** In India, the widespread corruption that exists in many governmental offices is a cause for serious worry. The average person has a difficult time getting things done without paying a bribe. In fact, during elections, corruption has emerged as a crucial political issue. Corruption can take many different forms, including as offering or taking bribes, failing to pay taxes to the

government, influencing politics to get contracts, hidden agreements between sellers to raise prices, etc. Black money, which is widely used but not accounted for, is a result of corruption. The GDP of India has a sizable unaccounted portion. Inflation and pressure in society are caused by black money. Additionally, it is the main driver of income disparity because those who have access to black money benefit at the expense of average citizens.

Conclusion- After India's independence, the condition of India's economy was very bad. The British had hollowed out India's economy. At such a time, the government of India was in great need of money for the development of the nation, whereas at that time agriculture was the main source of India's income. Gradually, after the formation of the government, the Government of India made an economic plan, only after which the wave of development started moving slowly in India. But then in 1991, India's economy faltered badly, for which India adopted the policy of liberalisation, privatization and globalization, after which there was a radical change in India's economy. In this way India's economy came back on track to a great extent. But even today black money, unemployment, etc. are prevalent in India, which needs to be curbed.

References

- 1. Planning and Economics of Cities: Shaping India's Form and Future Hardcover 1 December 2018, by Prasanna K. Mohanty, SAGE Publications India Pvt Ltd; First edition.
- 2. Economic Development and Planning in India Hardcover 30 January 2010, by V. Nath (Author), Concept Publishing Co.
- 3. Political Economics and Planning In India Paperback 1 January 2015, by D.D. Mishra, Vayu Education of India.
- 4. Urban and Regional Planning in India: A Handbook for Professional Practice Paperback 6 August 2012, by S K Kulshrestha, SAGE India.
- 5. The Economics of Development and Planning Kindle Edition, by M.L. Jhingan, Vrinda Publications P Ltd., India; 40e edition (20 February 2014).
- 6. Economic Development and Planning in India Paperback 1 January 2015, Hindi Edition by डॉ. चतुर्भुज ममोरिया (Author), SBPD publishing house.
- 7. Economic Development and Planning in India Paperback 1 January 2012, by I.C. Dhingra (Author), V.K. Garg (Author), Sultan Chand & Sons.



How far is LGBT Correct

Sonam Narayan Research scholar, M. J. P. Rohilkhand University, Bareilly, India

Abstract :- LGBTQ or commonly termed as LGBT is the study of works associated with sexual preferences and orientations different from heterosexuality. It is the part of Queer theory which gained popularity in 1990s and is taken from queer studies and women's studies. It has its affiliations with cultural criticism, women studies and postcolonialism as it studies the sexualities other than heterosexual as marginalized and oppressed. LGBT is not only about sexuality rather it is a point of view of the society towards sex and sexual preferences orientation; it is the study as what must be the factors that led people to adopt different sexual orientation and why some openly declare their sexual preferences and some conceal their sexual preferences and identities. Identity plays important role in the construction of social status. How society perceives one has been important from ancient times. It was the time when people were very much concerned their social status in comparison to the contemporary or modern scenario. LGBTs had not been given the due respect and honor in the society as they were considered against the set norms of the society because sexuality has been seen only in the form of man-woman relationship and if other type of relationship is there, it is considered wrong or forbidden. Hence, it was thought necessary by the authors to raise their voice and take up the issues related sexuality. Sex has always been considered as taboo and to talk about sex openly is not considered decent in Indian sub-continent compared to Europe or America. Since, English and American authors wrote the works related to homosexuality but Indian authors dared not to take up these issues for a long time. It became necessary to examine closely the socially constructed nature of sexual acts and identities in Indian society also. Vijay Tendulkar and Ismat Chughtai are some examples who dared to talk about the sex and sexuality but in limited manner. LGBT or queer theory is interconnected to feminism also and it provides a framework to explore these issues rather than as an identity to those in the community. 'Queer' is an umbrella term from those not only deemed sexually deviant, but also used to describe those who feel marginalized as a result of standard social practices. It is a "site of permanent becoming" (Giffney 2004). In addition, it is important to understand that this theory is not predominantly about analyzing the binary of the homosexual and heterosexual. There is an abundance of identities in which Queer theory not only recognizes but also breaks down in relation to other contributory factors like race, class, religion etc.I have tried to study the works of Indian authors from the perspective of LGBT to understand and bring out the dynamics of sex and sexuality with interconnected elements like feminism, culture and marginalization etc. Works of the writers like Manju Kapur, R. Raj Rao, Vijay Tendulkar and Abha Dawesar found relevant to study the Indian notion regarding the sex and different sexual preferences and orientations. It is not easy to choose contemporary writers because there is scarcity of critical studies on those writers. In this case critical material is available on Vijay Tendulkar in comparison to other writers. Scarcity of critical material is also a kind of advantage for a researcher. Researcher is given a chance to rely on his critical instincts. Something of this sort defines this study also. In this study I have relied on the close reading of the works. This is essentially a textual study though use of postcolonial critical tools can be detected at many places in the study. I have

mainly focused on text in this study considering that nothing is outside the text. A Rigorous analysis of texts was a very profitable experience for me.

Keywords: - LGBT, Queer, Sex and Sexuality, homosexual, heterosexual, Literature, GLF, GAA.

Introduction-Literature is the mirror of society and society must be reflected in the mirror. Keeping in mind the same idea, LGBT writers tried to treat the issues to sex, sexuality, sexual preference and orientation which used to be considered as taboo. Being a taboo, it has not been discussed openly in different literatures. It was 1960s and early 1970s which saw the movements related to same sex relations in the name of Gay Liberation Movement (GLF), Gay Activists Alliance (GAA) and other related movements for the cause of gays and lesbian who sought social freedom and rights. Before that gays and lesbian or same-sex relations or homosexuality remained closeted and the authors who tried to bring it to the public were blamed and action was taken against them. Ruchi Kumar argues regarding this as:

Simultaneously, the changing legal codes affected social ideas of morality, including literature. Despite colonial oppression and strong resistance, however, many local-language writers persisted, bringing LGBT and queer characters into fiction as far back as the freedom struggles of the 1920s. Prominent works from that era included books by Urdu writer Ismat Chughtai, which explore feminine sexuality and lesbian themes in 1941 Bihar, and Pandey Bechan Sharma, who in 1924, under the the pen name Ugra, published a book titled *Chocolate*, a reference to the term used for boys who had relationships with older men. These books created much furor among the public and the literary community. Sharma was arrested and charged with sedition shortly after the publication of *Chocolate*, though many suspected his nine-month prison sentence was related to his queer fiction writing. Later, in 1944, Chughtai was put on trail for obscenity charges stemming from her short story "Lihaaf," which depicted lesbian themes and was banned across South Asia. (Kumar)

It was the time which saw shift from body to sexuality as a discourse and culture. Sexuality is seen as an identity and it is the identity for which people live. Ruchi Kumar quotes the verdict:

The first major step for LGBT rights in India came in 2009, when a Delhi high court revoked Section 377, pushing the cause into the mainstream. In 2013, however, a judgment by a three-member bench of the Supreme Court set back progress by upholding the anti-LGBT law, an action that threatened the lives of those who came out after the 2009 judgment. This regressive move pushed the queer community and its allies to fight the law more aggressively, initiating stronger debates and discourse on LGBT rights in the mainstream. (Kumar)

Like other identities, sexual identity is not disclosed and remained closeted. It was 1974 when s special issue on gay writing and politics got published. Sexuality is not seen as taboo no more and it becomes the part of literature which focuses on many issues and it becomes one of them. Queer literature gives space to the homosexuals who are considered as marginalized and oppressed who demands social justice and it is the need of the hour to raise their issue and it was raised not only by British and American novelist but Indian novelists who were writing in English and other languages.

To discuss the issues related to homosexuals, the term now commonly used is LGBT. All the literature related to gays, lesbians, bisexual and transgender fall into this category. LGBT literature seeks to analyze the dark world of their own which is not common and their problems are different from the mainstream society. Like other marginalized groups, LGBT is one them which is being marginalized and is not considered as part of the mainstream. Homosexuals are treated as 'others' and not given respect due to their physiology and sexual orientations. LGBT literature seeks to give them space and discuss the problems from their point of view as what are the circumstances that led them to perform in different ways. Ruchi Kumar argues:

Today, LGBT literary makers and readers alike agree that literature representing the LGBT community in India is making strides. "There is interest in creating new content targeted towards LGBT consumers, but in the regular books and movies, there has been very little change in how LGBT characters are represented," Juneja points out. She urges publishers and content creators to embrace the changes and evolve with them. "Don't limit us and slot us in one box or category. LGBT stories don't have to only be a genre on its own, but can intersect with so many other [forms of] literature," she says.

Akansha also hopes that the 2018 decriminalization will encourage more publishers and content creators to explore characters that reflect South Asian queer identities. "Unfortunately, when we talk to my generation, a lot of our information and understanding of sexuality comes from the American pop culture that we've been raised on," she says. "It is always a welcome and refreshing change watching characters that we can relate to and, in many ways, help the movement that is still fighting for social acceptance." (Kumar)

Queer studies intersect with postcolonialism as it is concerned with women studies also. To study the works related to LGBT, one needs to understand that somewhere the people of different sexual preferences are considered as marginalized in the main stream society. It is not about looking at the way people indulge in sex with each other rather it is required as why people have different sexual relationships other than heterosexual relationships.

While going through the homosexuality, many factors come light regarding the different sexual orientation and preferences. Class is also one of the factors which describe sexuality and behind class there comes the economic condition which defines and determines the class. There is hegemony of sex over the economic and social conditions. All the homosexuals are not only because of their preferences rather their economic conditions forced them to be of different sexual preference.

It would not be out of place to discuss some other works related to LGBT. Unlike today, it was only hinted and used in disguise to show the relationship between same-sex. Some of the works are as follows.

Eminent Outlaws: The Gay Writers Who Changed America by Christopher Bram and the more academic The Cambridge History of Gay and Lesbian Literature are two important works related to LGBT.

Joseph and His Friend: A Story of Pennsylvania by Bayard Taylor (1870) probably the earliest gay novel published in USA. This novel describes the relationship between two men.

Imre: A Memorandum by Xavier Mayne (1906) is an early novel about the two men of 30 years old and another 25 year old. There is portrayal of sympathetic gay love who met in a café.

The Counterfeiters by André Gide (1925) is considered as the book that paved the way for post-modern by fiction because of its complex and multiple plots. It is about the gay characters and their relationships.

The Western Shore by Clarkson Crane (1925) is about gay university life, which is full of heterosexual romances and sports. It came out from the experiences of the Crane who attended Berkeley.

The Well of Loneliness by Radclyffe Hall (1928) remained in controversies for portraying lesbianism. It story revolves round and Englishwoman finds love with same sex while serving as a driver.

Orlando: A Biography by Virginia Woolf (1928) is related to gender. It is about the adventures of a poet who meets historical figures by changing his sex.

Strange Brother by Blair Niles (1931) is about the relationship between a gay man and a heterosexual woman. It also highlights the many issues that people face while revealing their sexuality.

The Scarlet Pansy by Robert Scully (1932) is about the character Fay who is a man but referred as 'her' throughout the novel because of feminine qualities and preferences. Fay had encounters at the nightclubs and street life.

Better Angel / Torment by Richard Meeker (1933) deals with the experiences of a young man's gay awakening who finds homosexuality rewarding than tragic.

Nightwood by Djuna Barnes (1936) is an example of early novel based on the theme of lesbianism and was critically acclaimed.

Two Serious Ladies by Jane Bowles (1943) is about two women who leave their traditional lives.

Quatrefoil by James Barr / James W. Fugaté (1950) portrays gay men in positive light as two men become lovers.

The Price of Salt / Carol by Patricia Highsmith (1952) is a novel concerned with the lesbian relationship of two women.

A Room in Chelsea Square by Michael Nelson (1958) based on real people and takes the issue of homosexuality. It is about the poet Stephen Spender.

The Keval and Other Gay Adventures by Harry Otis (1959) is about the organization that promotes homosexual literature through its periodical named ONE and other ventures.

Desert of the Heart by Jane Rule (1964) deals with the lesbian relationship of two women which later becomes complicated.

Mrs. Stevens Hears the Mermaids Singing by May Sarton (1965) deals with the difficulties that the writer faced after revealing her own homosexuality.

The Lord Won't Mind by Gordon Merrick (1970) a popular gay novel, listed as bestseller in New York bestseller list in 1970. This novel is about the love story of two men Charlie Mills and Peter Martin.

Maurice by E.M. Forster (1971) written in 1913 and 1914, but got published after Forster's death. This novel deals with the story of homosexual love in the early 20th century.

Conclusion- The term LGBT is nowadays appropriate for the literary description of homosexuals. Before the 19th century, sexuality and homosexuality were seen in a very bad view and people also considered it wrong

to talk on this subject, but nowadays the time has changed. Homosexuality has got legal recognition. Now people openly talk about it. Even today old people in India consider it wrong to talk about this subject. The first major strides for LGBT rights came in 2009, when the Delhi High Court struck down Section 377, pushing the cause into the mainstream. In 2013, however, a decision by a three-member Supreme Court bench upheld the anti-LGBT law halted progress, an action that put the lives of those who came out after the 2009 verdict at risk. This regressive move prompted the gay community and its allies to fight the law more aggressively, sparking stronger debate and discourse on LGBT rights in the mainstream. Sexuality is no longer seen as taboo and becomes a part of literature that focuses on many issues and this becomes one of them. Gay literature gives place to those homosexuals who are considered as marginalized and oppressed who demand social justice and raising their issue is the need of the hour and it was raised not only by British and American novelists but also by Indian novelists who work in English language. writing in other languages. Hence the term now commonly used to discuss issues relating to homosexuals is LGBT. All literature related to lesbian, gay, bisexual, and transgender falls into this category.

References:

- 1. A Lotus of Another Color: An Unfolding of the South Asian Gay and Lesbian Experience, edited by Rakesh Ratti. Alyson Publications, 1993.
- 2. A Member of the Family: Gay Men Write about Their Families, edited by John Preston. Dutton, 1991.
- 3. Barnard, Ian. Queer Race: Cultural Interventions in the Racial Politics of Queer Theory. Peter Land, 2003.
- 4. Clardy, Andrea. *Words to the Wise: a Writer's Guide to Feminist and Lesbian Periodicals and Publishers.* 3rd Ed. Firebrand Books, 1990.
- 5. Crisp, Quentin. The Naked Civil Servant. Holt, Rinehart and Winston, 1968.
- 6. Cruikshank, Margaret. Lesbian Studies: Present and Future, ed. Margaret Cruikshank. The Feminist Press, 1982.
- 7. Horner, Thomas Marland. *Homosexuality and the Judeo-Christian Tradition: an Annotated Bibliography*. Scarecrow Press, 1981.
- 8. Ridinger, Robert B. Marks, comp. *The Homosexual and Society: an Annotated Bibliography*. Greenwood Press, 1990.



जल—प्रबंधन में जल—निकासी सुविधाओं का महत्वः प्रयागराज जनपद (उ.प्र.) का एक भौगोलिक अध्ययन

देवेंद्र प्रताप सिंह

शोध छात्र, भूगोल विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

सारांश— तीव्र गति से वृद्धिशील आबादी, आर्थिक विकास तथा सामाजिक एवं पर्यावरणीय लक्ष्यों की सुरक्षा के लिए जल प्रबंधन अत्यंत ही आवश्यक घटक है। जलवायु परिवर्तन तथा मानव निर्मित अन्य परिस्थितियों के परिणामस्वरुप वर्तमान समय में जल संसाधनों का प्रबंधन एक प्रमुख मुद्दा बनकर सामने आया है। आवासीय क्षेत्रों तथा मानवीय गतिविधियों वाले स्थलों पर उपयुक्त जल निष्कासन प्रणाली के अभाव में जल प्रबंधन संबंधी चिंता और भी अधिक व्यापक हो जाती है। बेहतर भौगोलिक दशाओं में स्थित होने के कारण भारत में प्रतिवर्ष वर्षा द्वारा जल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त किया जाता है, साथ ही देश के अधिकांश भागों में भूमिगत जल का स्तर भी उच्च है। किंतु जल संग्रहण तथा जल निकासी प्रणालियों की अपर्याप्तता के कारण जल की अधिकांश मात्रा उपयोग के दौरान ही नष्ट हो जाती है। प्रयागराज जनपद गंगा के मध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित होने तथा जल संसाधनों में समृद्ध होने के कारण अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। जनपद में प्रवाहित होने वाली नदियों से लगभग प्रत्येक वर्ष यहां बाढ़ का सामना किया जाता है। उपरोक्त परिस्थितियों के संदर्भ में वर्तमान अध्ययन के अंतर्गत, जनपद में जल प्रबंधन के प्रयासों के अंतर्गत जल निकासी प्रणालियों के महत्व का मूल्यांकन किया गया है। यह अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है, जिन्हें भारतीय जनगणना कार्यालय, भारत सरकार तथा जिला सांख्यिकी पत्रिका, उत्तर प्रदेश जैसे स्रोतों से प्राप्त किया गया है। संकलित किए गए आंकड़ों को उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करके तथा सारणीयन एवं चित्र के माध्यम से अध्ययन को आसान बनाया गया है। अध्ययन में यह निष्कर्ष निकलकर सामने आया है कि जनपद में सभी विकासखंडों में जल प्रबंधन को बढावा देने के लिए जल निकासी प्रणालियों का विकास किया जाना अत्यंत ही आवश्यक है।

बीज शब्द : जल प्रबंधन, जल निकास प्रणाली, जल प्रदूषण, सीवर संयंत्र, जनसंख्या वृद्धि, ग्रामीण विकास।

भूमिका— मानव के अस्तित्व को बनाए रखने में सहायक विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों में जल सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जल को ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि कार्यों से लेकर शहरी क्षेत्रों, उद्योगों, घरेलू उपयोग, पेयजल संसाधन तथा अन्य अनेक उपयोगों में प्रयुक्त किया जाता है। इसके साथ ही, एक आर्थिक संसाधन के रूप में जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन प्रक्रियाओं में किया जाता है (मेरेट तथा अन्य, 1997)1। जल पारिस्थितिकी तंत्र और पर्यावरण सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला भी प्रदान करता है (फ्रेडिंरिक 1993²; सेक्लर तथा अन्य, 1998)3। पर्यावरणीय प्रदूषण के कारण अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में जल के वृहद मात्रा में उपलब्ध होने के बावजूद अनेक स्थानों पर उपयोग योग्य जल की कमी देखने को मिल रही है। यही कारण है कि, पर्यावरण की सुरक्षा करने से संबंधित अनेक संकल्पनाओं के साथ जल का प्रबंधन अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। जल प्रबंधन से तात्पर्य जल के उपयोग की उन विधियों को बढ़ावा देना है जो मनुष्य की अनेक आवश्यकताओं के साथ पीने एवं स्वच्छता तथा भोजन के लिए जल उपलब्धता को सुनिश्चित करने में मदद करें तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करते हुए सभी के लिए स्वच्छ जल उपलब्ध कराया जा सके। अतः जल प्रबंधन एक वृहद संकल्पना है; जिसके अंतर्गत खेतों, उद्योगों, घरेलू कार्यों तथा जल के उपयोग वाली अन्य क्रियाओं एवं स्थलों पर जल प्रदूषण तथा उसके अधिप्रयोग में कमी लाने का प्रयास किया जाता है।

SHISRRJ2033140 | Accepted: 01 Jan 2022 | Published: 16 Jan 2022 | January-February-2022 [5 (1): 184-191 }

पिछले कुछ दशकों में विभिन्न सामाजिक—आर्थिक प्रक्रियाओं और जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन के कारण भारत में जल की मांग में नाटकीय वृद्धि देखी गई है। जल की इस बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए सतही तथा भूजल स्रोतों का व्यापक उपयोग आरंभ हुआ है तथा आपूर्ति में भी कई गुना वृद्धि हुई है। परिणामतः देश के कई भागों में जल के अति—उपयोग के कारण भूमिगत जल के स्तर तथा गुणवत्ता में कमी देखने को मिल रही है। निदयों तथा अन्य सतही जल स्रोतों में गाद के जमाव, कृषि कार्यों में उर्वरकों के अत्यिधक प्रयोग, घरेलू मल तथा कचरे को खुले जल स्रोतों में प्रवाहित करना तथा औद्योगिक अपशिष्टों के स्वच्छ जल स्रोतों में प्रवाहित करने से जल प्रदूषण से संबंधित अनेक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। जल प्रबंधन के आधार पर इनके कारण होने वाले जल प्रदूषण को रोका जा सकता है।

किसी क्षेत्र के जल को प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ढंग से हटाना जल निकासी कहलाता है। घरेलू उपयोग, कृषि कार्यों तथा औद्योगिक गतिविधियों में उपयोग होने वाले जल के सुचारू प्रबंधन के लिए उचित जल निकासी सुविधाओं का होना अत्यंत ही आवश्यक है। भारत में हड़प्पा सभ्यता के समय से ही जल निकासी की उचित प्रणालियों का विकास किया जाना आरंभ हो गया था। किंतु, वर्तमान समय में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि तथा अपिशष्ट जल के स्वच्छ जल प्रणालियों में प्रवाहित करने से तकनीकी प्रगति के बावजूद जल प्रदूषण में तीव्र वृद्धि हुई है। जल निकासी की सुविधाओं का विकास करने के लिए जल उपयोग वाले स्थलों पर स्थलीय—ढाल का अनुसरण करते हुए नालियों का विकास, उनकी सफाई तथा निगरानी अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में, जल निकासी प्रणालियों के विकास के लिए अनुसंधान के माध्यम से गहरी जलनिकासी, जल—विभाजक, कुओं द्वारा जल निकासी, हाइड्रोलॉजिक इवैल्यूऐशन ऑफ़ लैंडिफल परफारमेंस (एचईएलपी), नलसाज़ी, सेप्टिक प्रणाली तथा अधःस्थल जल निकासी द्वारा मृदा लवणता के नियंत्रण को व्यापक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

उचित जल निकासी प्रणालियों के विकास के अभाव में वैश्विक स्तर पर अनेक शहरों में बाढ़ एक प्रमुख तथा विनाशकारी समस्या बन गई है। अनेक जलीय कारकों के साथ तीव्र शहरीकरण, जलवायु परिवर्तन तथा शहरी बुनियादी ढांचे की अपर्याप्तता शहरी बाढ़ के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदाई है। परिणामस्वरूप प्रत्येक वर्ष जनजीवन के प्रभावित होने के साथ शहरी संपत्ति का व्यापक नुकसान होता है। (मोरिता, 2014⁴; मुगुम एंड बटलर, 2017⁵; लियू तथा अन्य, 2016⁶)। इसी प्रकार, राजमार्गों पर जल निकासी को राजमार्गों की सुरक्षा के लिए आवश्यक माना जाता है। अमित (2016)⁷ ने अपने अध्ययन में यह बताया है कि, परिवहन सुविधाओं विशेषकर सड़क परिवहन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए सड़कों के साथ जल निकासी सुविधाओं को बेहतर रूप में विकसित किया जाना चाहिए। इनके अभाव में सड़कों की जीवन अविध कम हो जाती है तथा दुर्घटना की संभावनाओं में वृद्धि होती है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, जल प्रबंधन में जल निकासी सुविधाओं के महत्व को विश्लेषण करने के लिए प्रयागराज जनपद का चयन किया गया है। वर्तमान अध्ययन द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है, जिन्हें भारतीय जनगणना कार्यालय, जिला सांख्यिकीय पत्रिका तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त किया गया है। उपयुक्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करते हुए जनपद में विकासखंडवार जल निकासी सुविधाओं को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। विश्लेषण के इस क्रम में निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया है:

- जनपद में जल संसाधन प्रबंधन की स्थिति का अध्ययन करना।
- अध्ययन क्षेत्र में जल-निकासी सुविधाओं के विकास का विश्लेषण करना।
- जल-प्रबंधन में जल-निकासी सुविधाओं के योगदान का मूल्यांकन करना।

प्रयागराज जनपदः एक भौगोलिक चित्रण— इतिहासकारों के अनुसार, मुगल शासक अकबर द्वारा 1575 में अपनी यात्रा के बाद आधुनिक इलाहाबाद शहर की स्थापना की गई थी। अनेक लोग इसके नामकरण का संबंध ऐतिहासिक व्यक्तित्व 'इलावासा' तथा 'आल्हा' से जोड़ते हैं। पौराणिक काल से ही इलाहाबाद (प्रयागराज) को प्रमुख धार्मिक स्थल के रूप में मान्यता प्राप्त है। गंगा, यमुना और सरस्वती (एक अदृश्य धारा) के संगम पर स्थित

प्रयाग शहर, प्राचीन काल से ही हिंदुओं के सबसे महत्वपूर्ण पिवत्र स्थानों में से एक रहा है। पौराणिक धर्मग्रंथ रामायण में इसका संबंध राम के वन गमन तथा महाभारत में इस स्थान पर देवताओं द्वारा यज्ञ एवं बिल दिए जाने का वर्णन किया गया है। इलाहाबाद मूल रूप से एक प्रशासनिक और शैक्षिक शहर है। उत्तर प्रदेश के उच्च न्यायालय, महालेखा परीक्षक, रक्षा लेखा के प्रधान नियंत्रक (पेंशन), उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद कार्यालय, पुलिस मुख्यालय, मोती लाल नेहरू क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कॉलेज, मेडिकल एंड एग्रीकल्चर कॉलेज तथा भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, नैनी यहां स्थित कुछ प्रमुख प्रशासनिक एवं शैक्षिक केंद्र हैं।

जनपद का वर्तमान स्वरूप 4 अप्रैल 1997 को अस्तित्व में आया जब इसे विभाजित करके एक नया जिला कौशाम्बी बनाया गया था। प्रशासनिक कुशलता के लिए प्रयागराज जनपद को 08 तहसीलों— सोरांव, फूलपुर, बारा, करछना, इलाहाबाद, हंडिया, मेजा और कोरांव में विभाजित किया गया है। विकास योजनाओं के कुशल क्रियान्वयन के लिए प्रयागराज को 20 विकास खण्डों में बांटा गया है। जनपद के विकासखंडों के नाम हैं— कौड़िहार, होलागढ़, मऊआइमा, सोरांव, बहरिया, फूलपुर, जसरा, बहादुरपुर, शंकरगढ़, चाका, कौधियारा, करछना, प्रतापपुर, धनुपुर, सैदाबाद, हंडिया, मेजा, उरुवां, मांडा और कोरांव। प्रयागराज जनपद का कुल क्षेत्रफल 5482.0 वर्ग किलोमीटर है जिसमें से 5279.1 वर्ग किमी क्षेत्र ग्रामीण तथा 202.9 वर्ग किमी क्षेत्र शहरी क्षेत्र के रूप में वर्गीकृत है। जनपद में 1426 ग्राम पंचायतें और 3053 राजस्व गाँव हैं, जिनमें बसे हुए गांवों की संख्या 2809 तथा निर्जन गांवों की संख्या 244 है। शहरी क्षेत्रों में 11 सांविधिक करबे एवं 14 जनगणना करबे शामिल हैं। जनपद के सांविधिक करबों में 01 नगर निगम, 09 नगर पंचायत और 01 छावनी बोर्ड हैं। प्रयागराज जनपद इलाहाबाद राजस्व मंडल के पूर्वी क्षेत्र में (उत्तर प्रदेश राज्य के दक्षिणी भाग में) मध्य प्रदेश राज्य की सीमा पर स्थित है। इसका अक्षांशीय विस्तार 24° 47' से 25° 45' उत्तरी तथा देशांतरीय विस्तार 81° 45' से 82° 30' पूर्वी है। प्रयागराज जनपद पूर्व में संत रविदासनगर, भदोही और मिर्जापुर जनपदों से, उत्तर—पूर्व में जौनपुर जनपद से, पश्चिम में कौशाम्बी जनपद से, दक्षिण—पश्चम में चित्रकूट जनपद से, उत्तर में प्रतापगढ़ जनपद तथा दक्षिण—पूर्व में मिर्जापुर जनपद से, घरा हुआ है।

वर्ष 2011 में संचालित जनगणना प्रक्रिया के दौरान प्रयागराज की जनसंख्या लगभग 59.5 लाख दर्ज की गई थी तथा यहां का लिंगानुपात 901 था। जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों में लिंगानुपात 914 तथा शहरी क्षेत्रों में 862 पाया गया था। साक्षरता की बात की जाए जनपद की औसत साक्षरता लगभग 72.32% थी, जो कि पुरुषों तथा महिलाओं में क्रमशः 82.55% तथा 60.97% दर्ज की गई थी। प्रयागराज जनपद में उत्तर प्रदेश के वृहद भौगोलिक क्षेत्र की भांति तीन मुख्य ऋतुएँ— ग्रीष्म, शीत तथा वर्षा पाई जाती हैं। निदयों के एक विस्तृत जाल होने तथा वर्षा की उपयुक्त मात्रा प्राप्त होने के कारण प्रयागराज जनपद जल संसाधनों से समृद्ध है। जल निकासी प्रणालियों का सीमित विकास होने तथा उचित प्रबंधन न होने के कारण जनपद के अनेक क्षेत्रों को लगभग प्रतिवर्ष बाढ़ का सामना करना पडता है।

साहित्यिक पुनरावलोकन— जनसंख्या में वृद्धि के साथ, वैश्विक स्तर पर स्वच्छ जल संसाधनों पर तेजी से दबाव बढ़ रहा है (डब्ल्यूआरआई, 1995⁸; तथा ब्राउन एवं अन्य, 1998⁹)। फ्रेडरिक (1993)¹⁰ ने गहन अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि बीसवीं सदी के आरंभिक 8 दशकों में जल के उपयोग में 5 गुना वृद्धि हुई है, जिसमें से 75% वृद्धि उत्तरी गोलार्ध में स्थित देशों के कारण देखी गई है। सूक्ष्म दृष्टिकोण से देखने पर यह पाया गया है कि अति—दोहन तथा जल संतुलन में बदलाव होने के कारण तीसरी दुनिया के कई देशों को गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ रहा है (ब्राउन तथा अन्य, 1998¹¹; सेक्लर तथा अन्य, 1998¹²)। पोस्टेल (1996)¹³ ने अपने अध्ययन में बढ़ती वैश्विक जनसंख्या, पारिस्थितिक विघटन एवं पर्यावरणीय प्रदूषण, स्वास्थ्य तथा गंभीर सामाजिक एवं खाद्य समस्या के बीच में स्वच्छ जल संसाधनों में तेजी से होने वाली कमी को प्रमुख वैश्विक चुनौतियों में शामिल किया है।

भारत इस आसन्न संकट का अपवाद नहीं है। बढ़ती आबादी, जल गहन कृषि और तेजी से शहरी औद्योगीकरण की प्रक्रिया देश के स्वच्छ जल संसाधनों पर व्यापक दबाव डाल रही है (कुमार 1997¹⁴; विश्व बैंक 1998¹⁵)। भारत में स्वच्छ जल की कमी की समस्या पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन, सामाजिक स्थिरता और आर्थिक विकास के लिए गंभीर खतरा है। भारत में सामुदायिक भागीदारी पर आधारित सिंचाई, पीने तथा घरेलू आवश्यकताओं हेतु प्राचीन काल से ही स्वदेशी जल प्रबंधन प्रणाली विद्यमान है (अग्रवाल और नारायण 1997)¹⁶। फिर भी, देश में औद्योगिकरण के बाद उचित जल निकासी प्रणालियों का विकास न किए जाने के कारण जल प्रदूषण तथा कुप्रबंधन से संबंधित अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। देश में जल प्रबंधन की चिंताजनक स्थिति इस बात से उजागर होती है कि, जहां स्वतंत्रता के समय देश में प्रति व्यक्ति स्वच्छ जल की उपलब्धता 6008 क्यूबिक मिलियन प्रति वर्ष थी जो कि बीसवीं सदी के अंत तक कम होकर प्रति व्यक्ति 2200 क्यूबिक मिलियन प्रति वर्ष हो गई (एंगेलमैन और रॉय, 1993)¹⁷। 21वीं सदी में भी जल प्रबंधन के अभाव में जल जनित समस्याओं में तेजी से वृद्धि हो रही है।

दीपांजन (2014)¹⁸ ने राजमार्गों की सतही जल निकासी प्रणाली तथा जलभराव से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया है। उन्होंने सड़क दुर्घटनाओं के लिए अनेक कारकों को उत्तरदाई ठहराया है, जिनमें सड़कों के किनारे जल निकासी प्रणालियों का न होना भी एक प्रमुख कारण है। उन्होंने बताया कि, जल निकासी प्रणाली के विकास के अभाव में राजमार्ग समय से पहले टूटकर खराब हो जाते हैं। उपरोक्त संदर्भ में एक अध्ययन मुहम्मद (2014)¹⁹ द्वारा भी किया गया, जिसमें उन्होंने बताया कि राजमार्गों के साथ—साथ जल निकासी प्रणालियों के विकास के समय स्थलीय ढाल, भौमिकीय संरचना तथा मौसमी दशाओं का ध्यान रखना अत्यंत ही आवश्यक है।

शहरी क्षेत्रों में बाढ़ जिनत समस्याओं को ध्यान में रखते हुए टॉर्गर्सन तथा अन्य (2014)²⁰ द्वारा किए गए अध्ययन में बताया गया है कि, बाढ़ से होने वाले नुकसान को संबोधित करने के लिए शहरी जल निकासी प्रणाली में सुधार के साथ बाढ़ के समय तथा अविध की निगरानी किए जाने की आवश्यकता होती है। शहरी क्षेत्रों में अनेक जोखिमों के साथ बाढ़ एक प्रमुख घटक है, जिसके प्रबंधन के लिए परंपरागत जल निकासी प्रणालियों में सुधार करने तथा नवीन सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिए। चेन तथा अन्य (2016)²¹ बताते हैं कि, कुशल और प्रभावी बाढ़ जोखिम प्रबंधन को प्राप्त करने के लिए बाढ़ को उत्पन्न करने वाले कारकों को समझना अत्यंत ही आवश्यक है। उनके अनुसार एकीकृत जल प्रबंधन प्रक्रिया में जल निकासी सुविधाओं के विकास को भी शामिल किया जाना चाहिए।

जनपद में जल—संसाधन प्रबंधन की स्थिति एवं विकास— प्रयागराज जनपद में जल निकास सुविधाओं तथा जल संसाधन प्रबंधन की स्थिति एवं उनके विकास का अध्ययन करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में जल निकास प्रणाली की उपलब्धता, ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली तथा सीवर संयंत्र में जल निष्कासित करने वाली प्रणाली से संबंधित आंकड़ों को एकत्र किया गया है। उपरोक्त सूचकों से संबंधित आंकड़ों को सारणी 1.1 में प्रस्तुत किया गया है। जल निकासी प्रणाली की बात की जाए तो हम देखते हैं कि कौड़िहार विकासखंड के सर्वाधिक गांव (108) जल निकासी प्रणाली से जुड़े हुए हैं। विभिन्न विकासखंडों में संख्या की दृष्टि से जल निकास प्रणाली से जुड़े सर्वाधिक गांवों की संख्या वाले विकासखंडों में कौड़िहार के बाद बहरिया, शंकरगढ़, धनूपुर, कोरांव तथा फूलपुर शामिल है, जिनके समग्र गांवों के 80 से अधिक गांव जल निकासी प्रणाली द्वारा जुड़े हुए हैं। अनुपातिक दृष्टि से देखा जाए तो कौड़िहार (55.67%), फूलपुर (55.48%) सोरांव (55.43%) तथा जसरा (55.14%) विकासखंड के संदर्भ में अन्य विकास खंडों की तुलना में बेहतर स्थिति में हैं। दूसरी तरफ, उरुवा, मऊआईमा, होलागढ़ तथा कौंधियारा विकासखंडों के 35 अथवा उससे कम गांवों में जल निकासी प्रणाली की उपस्थिति दर्ज की गई है।

किसी भी क्षेत्र में जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता ही महत्वपूर्ण पैमाना नहीं होता है बिल्क उसकी बनावट एवं संरचना भी जल प्रबंधन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी को ध्यान में रखते हुए द्वितीयक सूचक के रूप में उन गांवों का चयन किया गया है, जिनमें ढंकी हुई जल निकास प्रणाली उपलब्ध है। जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता की तुलना में ढंकी हुई जल निकास प्रणाली की उपलब्धता को देखते हुए जनपद के लगभग सभी विकास खंडों में अत्यंत ही नकारात्मक स्थिति दिखाई देती है। सारणी 1.1 से हम देख सकते हैं कि माण्डा.

करछना, सैदाबाद, कौंधियारा, कौड़िहार तथा बहादुरपुर जैसे विकासखंड सर्वाधिक संख्या में ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता वाले गांवों की संख्या को धारित करते हैं किंतु इनमें भी विकासखंड में उपलब्ध समग्र गांव के केवल 3 अथवा 4% गांव ही इस प्रकार की सुरक्षित जल निकासी प्रणाली से संबंधित हैं। अन्य सभी विकासखंडों में तो और भी कम संख्या में गांव ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली के अंतर्गत आते हैं। मऊआईमा विकासखंड का कोई भी गांव ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली से नहीं जुड़ा हुआ है।

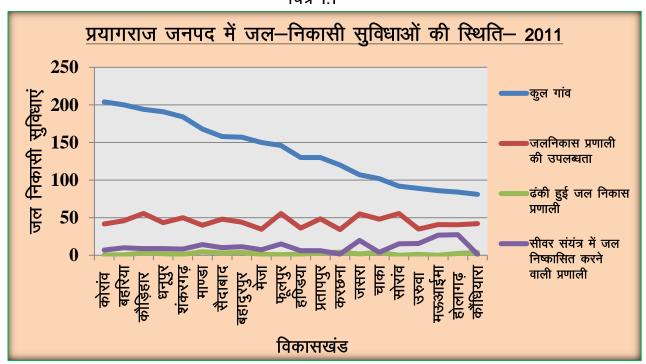
सारणी 1.1 प्रयागराज जनपद में जल—निकासी सुविधाओं की स्थिति— 2011

क्रम संख्या	विकासखंड	कुल गांव	जलनिकासी प्रणाली की उपलब्धता	विकासखंड के कुल गांवों से प्रतिशत (जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता	ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली	विकासखंड के कुल गांवों से प्रतिशत (ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली)	सीवर संयंत्र में जल निष्कासित करने वाली प्रणाली	विकासखंड के कुल गांवों से प्रतिशत (सीवर संयंत्र में जल निष्कासित करने वाली प्रणाली)
1	कोरांव	204	85	41.67	1	0.49	14	6.86
2	बहरिया	200	92	46.00	1	0.50	20	10.00
3	कौड़िहार	194	108	55.67	6	3.09	17	8.76
4	धनूपुर	191	83	43.46	4	2.09	17	8.90
5	शंकरगढ़	184	92	50.00	2	1.09	15	8.15
6	माण्डा	168	67	39.88	8	4.76	24	14.29
7	सैदाबाद	158	76	48.10	5	3.16	16	10.13
8	बहादुरपुर	157	69	43.95	6	3.82	18	11.46
9	मेजा	150	52	34.67	2	1.33	11	7.33
10	फूलपुर	146	81	55.48	1	0.68	22	15.07
11	हण्डिया	130	47	36.15	2	1.54	8	6.15
12	प्रतापपुर	130	63	48.46	4	3.08	8	6.15
13	करछना	120	41	34.17	5	4.17	2	1.67
14	जसरा	107	59	55.14	2	1.87	21	19.63
15	चाका	102	49	48.04	4	3.92	4	3.92
16	सोरांव	92	51	55.43	0	0.00	14	15.22
17	उरुवा	89	31	34.83	1	1.12	14	15.73
18	मऊआईमा	86	35	40.70	0	0.00	23	26.74
19	होलागढ़	84	34	40.48	2	2.38	23	27.38
20	कौंधियारा	81	34	41.98	3	3.70	1	1.23
योग		2616	1249	47.74	59	2.26	292	11.16

स्रोतः भारत की जनगणना— 2011, भारत सरकार

तीसरे तथा अंतिम महत्वपूर्ण सूचक सीवर संयंत्र में जल निष्कासित करने वाली प्रणाली को लिया गया है। इसमें भी प्रत्येक विकासखंड में उन गांवों का पता लगाने की कोशिश की गई है जिनमें प्रदूषित जल को किसी सीवर संयंत्र में निष्कासित किया जाता है। सारणी 1.1 के आधार पर हम देख सकते हैं कि, इस संदर्भ में भी एक चिंताजनक स्थिति दिखाई दे रही है। प्रयागराज जनपद के लगभग सभी विकास खंडों में अत्यंत सीमित संख्या में गांव अपने प्रदूषित जल को किसी सीवर संयंत्र में निष्कासित करते हैं। होलागढ़ (27.38%) तथा मऊआईमा (26. 74%) विकासखंडों को छोड़कर जनपद में कोई भी विकासखंड ऐसा नहीं है जिनके 20% गांव भी अपने प्रदूषित जल को किसी सीवर संयंत्र में निष्कासित करते हों। इस संदर्भ में सर्वाधिक खराब स्थिति करछना (1.67%), कौंधियारा (1.23%) तथा चाका (3.92%) विकासखंडों में दिखाई देती है जिनके 5% से भी कम गांव ऐसे सुविधाओं से जुड़े हैं, जिससे वे अपने प्रदूषित जल को किसी सीवर संयंत्र में निष्कासित कर सकें।

जल—प्रबंधन में जल—निकासी सुविधाओं का योगदान— सारणी 1.1 के आधार पर किए गए उपरोक्त विश्लेषण में हमने यह देखा है कि प्रयागराज जनपद के अधिकांश गांवों में जल निकासी प्रणाली का अभाव है। साथ ही, जिन विकास खंडों के गांवों में जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता है वहां भी ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली तथा प्रदूषित जल को किसी सीवर संयंत्र में निष्कासित करने की सुविधा अत्यंत कम गांवों में उपलब्ध है। इस संदर्भ में और भी अधिक बेहतर स्थिति तथा विभिन्न विकास खंडों के मध्य तुलनात्मक विश्लेषण चित्र 1.1 से प्राप्त की जा सकती है। चित्र में हम देख सकते हैं कि विभिन्न विकासखंडों में स्थित गांवों की संख्या अलग—अलग है। किंतु प्रत्येक विकासखंड में उपरोक्त वर्णित जल निकासी प्रणालियों की उपलब्धता अत्यंत ही सीमित है। जल निकासी प्रणाली की उपलब्धता, ढंकी हुई जल निकासी प्रणाली तथा सीवर संयंत्र में जल निष्कासित करने वाली प्रणाली से संबंधित प्रदर्शित की गई रेखाओं को देखने से हम यह आसानी से अनुमान लगा सकते हैं कि जनपद के लगभग सभी विकास खंडों में सुरक्षित जल निकासी प्रणाली सुविधाओं की व्यापक कमी है। प्रयागराज जनपद लगभग प्रत्येक वर्ष बाढ़ जैसी समस्याओं का सामना करता है। ऐसी दशा में उपरोक्त स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बाढ़ तथा संबंधित समस्याओं से निपटना तब तक संभव नहीं हो पाएगा जब तक विकासखंड के गांवों को उपयुक्त जल निकासी प्रणालियों से जोड़ा नहीं जाएगा।



चित्र 1.1

निष्कर्ष तथा सुझाव

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर प्रयागराज जनपद में जल प्रबंधन में जल निकासी सुविधाओं के महत्व के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलकर सामने आते हैं, जिनके आधार पर अनेक सुझाव दिया जा सकते हैं:

- जनपद में लगभग सभी विकाखंडों में आवश्यकता के अनुसार जल निकासी प्रणालियों का विकास नहीं हो पाया है। जनपद में प्रत्येक वर्ष आने वाली बाढ़ को उपयुक्त जल निकासी प्रणालियों के विकास द्वारा नियोजित किया जा सकता है।
- प्रयागराज में जल की पर्याप्त उपलब्धता होने के कारण जल प्रबंधन की एक लंबी परंपरा रही है। हालाँकि, आधुनिक समय में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि तथा उपयुक्त नियोजन सुविधाओं के अभाव में समय के साथ जल निकासी प्रणालियों का विकास नहीं किया जा सका है। अतः, आवश्यकता यह है कि जनपद की परंपरागत जल निकासी तथा जल प्रबंधन प्रणालियों को विकसित करने के साथ धन के उचित आवंटन द्वारा नवीन प्रणालियों का भी विकास किया जाना चाहिए।
- प्रयागराज जनपद विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं का केंद्र है। अतः शिक्षा के उच्च स्तरों पर जनपद की जल निकासी प्रणाली तथा जल प्रबंधन सुविधाओं के संदर्भ में सुलभ विकास कार्यों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। शिक्षा केंद्रों की निकट उपलब्धता इस कार्य को आसान बनाने में मदद कर सकती हैं।
- जनपद के सभी विकास खंडों के गांवों की संख्या भिन्न—भिन्न है। अतः इनकी आवश्यकताओं के अनुसार धन आवंटित करके जल प्रबंधन तथा जल निकासी सुविधाओं के विकास में एकरूपता लाई जा सकती है। जल निकासी प्रणालियों के विकास के समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि नवीन तकनीकी का उपयोग करते हुए ढंकी हुई जल निकासी प्रणालियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के प्रदूषित जल को सीवर संयंत्र में जल निष्कासित करने वाली प्रणालियों को विकसित किया जाना चाहिए। प्रत्येक गांव में निश्चित सीवर संयंत्र का निर्माण किया जाना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।
- किसी भी सरकारी योजना अथवा कार्य को जनभागीदारी के अभाव में सफल नहीं बनाया जा सकता है।
 अतः ग्रामीण क्षेत्रों में जल प्रबंधन सुविधाओं की देखरेख तथा उनके विकास में ग्रामीण लोगों को शामिल किया जाना चाहिए। ग्राम पंचायत को निगरानी संबंधी जिम्मेदारी प्रदान करके इस प्रकार की प्रणालियों की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है।

References:

- 1. Merrett, Stephen, (1997). "Introduction to the Economics of Water Resources: An International Perspective". London: UCL Press, p. 211.
- 2. Frederick, K. D., (1993), "Balancing Water Demand with Supplies: The Role of Management in a World of Increasing Scarcity," Technical Paper 189, Washington DC: World Bank.
- 3. Seckler, David, Upali A., David M., Radhika de S. and Randolph B., (1998). "World Water Demand and Supply, 1990 to 2025: Scenarios and Issues". Research Report 19, Colombo, Sri Lanka: International Water Management Institute.
- 4. Morita, M., (2014). "Flood risk impact factor for comparatively evaluating the main causes that contribute to flood risk in urban drainage areas". Water (Switzerland), Vol. 6(2), pp. 253–270. Available at https://doi.org/10.3390/w6020253
- 5. Mugume, S. N., & Butler, D., (2017). "Evaluation of functional resilience in urban drainage and flood management systems using a global analysis approach". Urban Water Journal, Vol. 14(7), pp. 727–736. Available at https://doi.org/10.1080/1573062X.2016.1253754

- 6. Liu, L., Li, X., Xia, G., Jin, J., & Chen, G., (2016). "Spatial fuzzy clustering approach to characterize flood risk in urban storm water drainage systems". Natural Hazards, Vol. 83(3), pp. 1469–1483. Available at https://doi.org/10.1007/s11069-016-2371-4
- 7. Amit, K. D., (2016). "Drainage system in highways". Term paper in transportation engineering. Lovely professional Univerity. Puniab-India. Available at https://www.scribd.com/doc/42527504/Drainage-System-in-Highways
- 8. World Resources Institute, (1995). "World Resources 1994-95: People and the Environment", Report prepared by World Resource Institute in collaboration with United Nations Environment Programme and United Nations Development Programme. Bombay: Oxford University Press.
- 9. Brown L. R., Christopher F., Hilary F. and Others (eds.), (1998). "State of the World 1998: A World Watch Institute Report on Progress Towards a Sustainable Society". Washington DC: World Watch Institute.
- 10. Ibid, 2.
- 11. Ibid,9.
- 12. Ibid, 3.
- 13. Postel, Sandra, (1996). "Dividing the Waters: Food Security, Ecosystem Health and the New Politics of Water Scarcity". Washington DC: World Watch Institute.
- 14. Kumar, M. D., (1997). "Water Use Study," Consultancy Report submitted to the technical assistance team of Water Resources Development and Management Project, VIKSAT, Thaltej Tekra, Ahmedabad, India, February.
- 15. World Bank, (1998). "Inter-Sectoral Water Allocation Planning and Management," World Bank-Government of India, India Water Resource Management Sector Review, Volume I-Main Report, New Delhi.
- 16. Agarwal, A. and Sunita N, (eds.), (1997). "Dying Wisdom: Rise, Fall and Potential of Traditional Water Harvesting Systems in India", 4th Citizen's Report. New Delhi: Centre for Science and Environment.
- 17. Engelman, R. and Roy P., (1993). "Sustaining Water: Population and Future of Renewable Water Supplies". Washington, DC: Population and Environment Programme, Population Action International 56.
- 18. Dipanjan M., (2014). "Highway Surface Drainage System & Problems of Water Logging In Road Section". The International Journal Of Engineering And Science (IJES), Vol. 3(11), pp. 44-51.
- 19. Muhammad, B. B., (2014). "Highway drainage system". Available at https://www.linkedin.com/pulse/20141125045254-112545392-highway-drainage-system
- 20. Torgersen, G., Bjerkholt, J. T., & Lindholm, O. G., (2014). "Addressing flooding and SuDS when improving drainage and sewerage systems-A comparative study of selected Scandinavian cities". Water (Switzerland), Vol, 6(4), pp 839–857. Available at https://doi.org/10.3390/w6040839
 - 21. Chen, A. S., Leandro, J., & Djordjević, S., (2016). "Modelling sewer discharge via displacement of manhole covers during flood events using 1D/2D SIPSON/P-DWave dual drainage simulations". Urban Water Journal, Vol. 13(8), pp. 830–840. Available at https://doi.org/10.1080/1573062X.2015.1041991.

शोधशौर्यम्



Publisher

Technoscience Academy (The International open Access Publisher) Website : www.technoscienceacademy.com

Email: editor@shisrrj.com